MATS UNIVERSITY

NAAC GRADE A+ ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

विश्व का इतिहास (साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध तक)

बैचलर ऑफ़ आर्ट्स (बी.ए.)

चतुर्थ सेमेस्टर

SELF LEARNING MATERIAL

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1- Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh
2- Dr. Sudhir Sharma , Subject Expert ,HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai
3- Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University ,Raipur, Chhattisgarh
4- Dr. Sunita Shashikant Tiwari Associate Professor, MATS University Raipur Chhattisgarh
5- Dr. Rajesh Kumar Dubey , Subject Expert, Principal , Shahid Rajeev Pandey Government College ,Bhatagaon , Raipur ,Chhattisgarh
6- Dr. Shashikala Sinha , Government Mata Shabri Naveen Girls College, Bilaspur, Chhattisgarh

COURSE COORDINATOR

Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

COURSE /BLOCK PREPARATION

Ms. Surbhi Singh Assistant Professor, MATS University ,Raipur, Chhattisgarh

March, 2025ISBN -

978-81-987917-6-4

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed & Published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhudu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer-Publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from contents of this course material, this is completely depends on AUTHOR'S MANUSCRIPT.
Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)

अनुक्रमणिका

माड्यूल	विषय- **विश्व का इतिहास**
माड्यूल 1	यूरोपीय संघ **इकाई**-1 पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना एवं इसका महत्व 2—12 **इकाई 2**- **1830** की फ्रांसीसी क्रांति **13-37** **इकाई**-3 पूर्वी समस्या **38-82**
माड्यूल 2	गृह-युद्ध **इकाई-4** अमेरिकी गृह-युद्ध 83—102 **इकाई-5** गृह युद्ध का आरम्भ, लिंकन की भूमिका एवं अमेरिकी गृह-युद्ध की प्रमुख घटनाएँ 103-111 **इकाई-6** राष्ट्रवादियों और देशभक्तों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम की तैयारियाँ 111-120
माड्यूल 3	**इकाई-7** गैरीवालडी का योगदान **121-129** **इकाई-8** इटली का एकीकरण गैरीवालडी का योगदान **130-136** **इकाई-9** जर्मनी के एकीकरण **137-139**
माड्यूल 4	**इकाई-10** मैटरनिस और जर्मनी **141-143** **इकाई1-1** फ्रैंकफर्ट संसद की सफलता 144-146 **इकाई-12** एकीकरण की पुनः चेष्टा **147-152**
माड्यूल 5	**इकाई** -13 बिस्मार्क का उदय 153-160 **इकाई**- 14 बिस्मार्क की रक्त और तलवार की नीति 161-165

Acknowledgement

The Material (Pictures and images) we have used is purely for educational purpose. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Sould any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future of this book.

इकाई.1 यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना एवं इसका महत्व ,
आलोचना तथा पतन

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था एवं इसकी कार्य प्रणाली समय–समय पर इस संघके हुए पाँच सम्मेलनों की कार्य प्रणाली

1830 की फ्रांसीसी क्रांति

पूर्वी समस्या

यूरोप का विस्तार

उदारवाद की विजय : इंग्लैण्ड ब्रिटिश साम्राज्य
अध्याय के उद्देश्य :

इस अध्याय केअध्ययन क`उपरान्त आप जान सकेंगे :

पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना एवं इसका महत्व

इस पवित्र संघ की आलोचना तथा इसके पतन के कारण जान सकेंगे

पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना एवं इसका महत्व
इस पवित्र संघ की आलोचना तथा इसके पतन के कारण जान सकेंगे

यरूोप की संयुक्तव्यवस्था एव ंइसकी कार्यप्रणाली समझ सकेंग`इस अवधि मं `हुए विभिन्न सम्मेलनो ंऔर उनसे उत्पन्न परिस्थितिया`से अवग हो सकेंगे

1830 की फ्रांसीसी क्रांति को जान सकेगें

पूर्वी समस्या को समझ सकेंगे

यूरोप का विस्तार जान सकेगें

उदारवाद की विजय : इंग्लैण्ड समझ सकगें

ब्रिटिश साम्राज्य को जान सकेंगे

परिचय

20 नवम्बर सन् 1815 ई० को पेरिस की द्वितीय संधि द्वारा वियना कांग्रेस का कार्य सम्पन्न हो गया । तत्पश्चात् यूरोप में शांति स्थापित करने के उद्देश्य से पवित्र संघ (भ्वसल ंससपंदबम) तथा चतुर्मुखी मित्र मण्डल
(फनकतनचसम
।सपंदबम) की स्थापना की गई। पवित्र संघ की योजना का जन्मदाता रूस का शासक जार अलेक्जेण्डर प्रथम था और उसी ने अपनी इस सुन्दर योजना को मित्र – मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत किया था । 26 सितम्बर 1815 को जार
ने
अपनी योजना को घोषित किया।

जार अलेक्जेन्डर प्रथम सदा ही नवीन योजनाओ ंका जन्मदाता रहता था,
परन्तु
जब उन योजनाओं को क्रियात्मक रूप प्रदान करने का अवसर आता तो वह असफल रह जाता। वह एक अत्यन्त रहस्यमय तथा भावुक व्यक्ति था ।
उसके
गुरु – ला हार्पे (स्ं – भ्ंतचम) ने उसे रूसो के सिद्धान्तों की शिक्षा दी और सेनापति सोल्टीकाफ ै(वसजपसवाअ) ने उसे सैनिक शिक्षा प्रदान की थी। उसने अपनी उदारता का परिचय देते
उसके जार पाल को षड्यन्त्र रचवाकर हत्या करवा दी थी और उसी कारणउसके
अन्तःकरण मे ं सदैव अशांति रहती थी। फलस्वरूप वह ईसाई धम र्की धामिर्क

26 सितम्बर 1815 को उसी ने पेरिस के निकट पवित्र संघ का निर्माण किया। इस संघ में सर्वप्रथम रूस, प्रशा, आस्ट्रिया सम्मिलित हुए। इन देशों के शासकों ने घोषणा की –

अब से उनकी गृह तथा वैदेशिक नीति ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के अनुकूल होगी। वे लोग ईमानदारी से न्यायोचित ढंग से शासन व्यवस्था करेंगे। प्रजा अपने आप भरसक शांति बनाये रखने का प्रयत्न करेंगे।

पवित्र संघ

सभी शासक आपस में एक–दूसरे को भाई समझेंगे तथा एक की विपत्ति सबकी विपत्ति होगी। उनका कहना था कि विश्व के स्वामी ईश्वर ने विभिन्न प्रदेशों में शासन करने के लिए अलग–अलग शासकों की नियुक्ति की है। अतः ईश्वर द्वारा नियुक्त सभी शासकों का यह कर्त्तव्य हो जाता था कि वे स्वयं बाइविल के बताये गये नियमों के अनुसार आचरण करें तथा जनता को भविष्य में धर्म का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करें। इसको मानने तथा हस्ताक्षर करने के लिए सभी देशों को आमंत्रित किया गया था। धीरे–धीरे पोप तथा टर्की के सुल्तान जिनको आमंत्रित नहीं किया गया था तथा इंग्लैण्ड के अतिरिक्त सभी राज्यों ने इसे स्वीकार कर लिया।

फ्रांस के इतिहास में हेनरी चतुर्थ महान (ळतंदक क्मेपहद) में हमें पवित्र संघ का आभास मिलता है। अपनी इस योजना में हेनरी चतुर्थ ने 66 यूरोपीय देशों के प्रतिनिधियों के लिए एक सीनेट (ैमदंजम) की व्यवस्था प्रस्तावित की थी। इस सीनेट का उद्देश्य भी यूरोपीय समस्याओं का समाधान करने के अतिरिक्त महाद्वीप में शांति स्थापित करना भी था।

परंतु हेनरी चतुर्थ का देहान्त हो जाने से हेनरी चतुर्थ की योजनायें सफल न हो सकीं। एक स्थायी कांग्रेस स्थापित करने के उद्देश्य से फ्रांस के एक विद्वान एवे – डे– सेन्ट (।इम–कम–ैज – च्ममततम) ने एक संघ की स्थापना की और इस संघ में शासकों ने निर्णय किया था कि भविष्य में वे मित्रतापूर्ण व्यवहार करेंगे और युद्ध की भावनाओं को त्याग देंगे।

रूस के जार अलैक्जेन्डर ने 1814 ई० में एक संघ तथा एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना का प्रस्ताव रखा । फ्रांस को लज्जित करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड ने इस योजना को स्वीकार कर लिया परन्तु जब उसे जार की योजना का पता लगा कि वह उसको अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर स्वीकार करना चाहता है तो वह इस योजना से पृथक हो गया। इंग्लैंड किसी भी प्रकार की ऐसी योजना में सम्मिलित नहीं होना चाहता

था जिसके सदस्यों का उद्देश्य समस्त स्थानों पर एक–दूसरे की सहायता करना हो । 2 सितम्बर, 1815 ई० को पेरिस नगर के समीप मित्र संघ की स्थापना की घोषणा कर दी गई। जार अलैक्जेण्डर ने जिस प्रकार इसके उद्देश्यों को व्यक्त किया उससे संघ की महानता स्पष्ट हो जाती है, परन्तु अनेक कारणों से इन उद्देश्यों को क्रियान्वित नहीं किया जा सका। कुछ राष्ट्रों को तो इसकी स्थापना पर पहले ही शंका थी। संघ का अन्त हो गया ।

पवित्र संघ का महत्व (प्उचवतजंदबम वभ्विससल ।ससपंदबम) – अनेक कारणों से पवित्र संघ की बड़ी–बड़ी आलोचना की गई है, परन्तु फिर भी इसका अपना महत्व है। उसने वर्षों के रक्तपात तथा छल–प्रपंच के उपरांत अहिंसा और बन्ध ुत्व की भावना की स्थापना करने महत्वपूर्ण कार्य किया । पवित्र संघ (भ्वससल ।ससपंदबम) में ही यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि प्रत्येक शासक अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझे तथा जिस प्रकार एक पिता अपने परिवार पर शासन करता है उसी प्रकार शासक को भी अपनी प्रजा पर शासन करना चाहिए।

आलोचना तथा पतन (ब्तपजपबपेउ ंदक ंिसस)

रूस के शासक के अतिरिक्त अन्य किसी शासक ने इसमें सक्रिय भाग नहीं लिया और इसके सिद्धान्तों का भी पूर्णतया पालन नहीं किया । शीघ्र ही लोगों को विश्वास हो गया कि यह संघ जनता के अधिकारों तथा क्रांतिकारी विचारों को कुचलने के लिए बनाय गया है। कुछ विद्वानों और राजनीतिज्ञों ने संघ की बड़ी उपेक्षा की है। इंग्लैंड प्रतिक्रियावादी होने के नाते इससे सहानुभूति रखता था, परन्तु इंग्लैंड के विदेश मंत्री कैसलरे (ब्ंजसम त्मही) ने इस पर टिप्पणी करते हुए व्यर्थ की बकवास कहा था। आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसीसी प्रथम ने कहा कि यदि यह राजनीतिक प्रश्न है तो मैं इसे मंत्री के सामने रखूँ और यदि धार्मिक है तो पादरी के सामने । आस्ट्रिया के चान्सलर मैटरनिख ने इसे आदर्शों वाली व्यर्थ वस्तु बताया । इस प्रकार जार की मृत्यु के साथ पवित्र मित्र मण्डल का भी अन्त हो गया।

डॉ. महाजन के अनुसार, ‘‘जार राजनीति को आध्यात्मिक रूप प्रदान करना चाहता था, वह पवित्र संघ की पारदर्शक पवित्र आत्मा को शरीर प्रदान नहीं कर सका और इस कारण पवित्र संघ की जन्म के साथ ही मृत्यु हो गई । ‘‘ ।

इस प्रकार पवित्र संघ में सद्भावनाओं की कमी न थी । जार में पवित्र विचारों का अभाव न था किन्तु वह पवित्र संघ के उद्देश्यों को कार्य रूप प्रदान नहीं कर सका। यदि वह इनको कार्यान्वित करने में सफल हो गया होता तो संघ के महत्व में अवश्य वृद्धि हो गई होती। परंतु प्रारम्भ में ही इंग्लैंड जैसी महान शक्तियों ने इसकी हँसी उड़नी आरम्भ कर दी और इसे सफल नहीं होने दिया । फिर भी जार ने यूरोप के राष्ट्रों को सिखला दिया कि राजनीति की सफलता धर्म पर अवलम्बित है। धर्म की उपेक्षा कर राजनीति में सफलता प्राप्त नहीं की

जा सकती । पवित्र संघ की असफलता पर टिप्पणी करते हुए इतिहासकार हेज ने लिखा है–

"पवित्र मित्र संघ राजनैतिक एवं सामाजिक कष्टों का निवारण करने में इस कारण असफल नहीं रहा कि उसके समर्थकों में ईमानदारी की भावना का अभाव था, न ही उसके उद्देश्यों में किसी प्रकार का पाप छिपा था । वरन् इसलिए कि इसके नियम अस्पष्ट थे साथ ही इस पर हस्ताक्षर करने वाले शासकों का इसे सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं था । ''

जहाँ एक ओर लोगों की प्रतिक्रिया तथा भावनायें इसके विरुद्ध होती जा रही थी वही चतुर्मुख मित्रमण्डल (फनंकतनचसम ।ससपंदबम) की स्थापना ने इस लड़खड़ाते हुए पवित्र मित्र संघ को सदा–सदा के लिए समाप्त कर दिया।

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के चिन्ह यूरोप के राजनीतिज्ञों को पहले से ही दृ ष्टिगोचर होने लगे थे। 1791 ई० में आस्ट्रिया के चांसलर राजकुमार कानीज तो इसका आभास पहले ही दिया। शोभा की मुक्त संधि

से ही इसके बीज पनपने लगे थे। इन चार राष्ट्रों– इंग्लैंड, फ्रांस, प्रशा तथा आस्ट्रिया ने कई बार चतुर्मुखी मित्र मण्डल का सम्मेलन बुलाने का संकल्प किया।

इस प्रकार यूरोप में चतुर्मुखी मित्र – मण्डल की स्थापना हुई। यही यूरापे की संयुक्त व्यवस्था (बवदबमतज वि्मितवचम) की पृष्ठभूमि थी और आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मैटरनिख के नेतृत्व में चतुर्मुख मित्र – मण्डल (फनंकतनचसम ।ससपंबदम) ने समस्त यूरोप को प्रभावित किया।

1. यूरोप में शांति स्थापित करना ।
2. यूरोप महाद्वीय में राष्ट्रीयता तथा क्रांतिकारी भावनाओं को समूल नष्ट करना ।
3. नेपालियन अथवा उसे वंशजों में से किसी को भी देश का शासक न बनने देना ।
4. फ्रांस के साथ की गई पेरिस की दूसरी संधि को भी स्वीकार कर कार्यरूप में परिणत करना ।
5. वियना सम्मेलन में पारित किये गये निर्णयों का स्वयं पालन करना तथा दूसरों से करवाना तथा

शांतिपूर्ण उपायों द्वारा समस्याओं का समाधान करना ।

6. निरंकुश शासकों के अधिकारों की रक्षा करते हुए जनता में असंतोष तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं

को वृद्धि न होने देना ।

इतने उच्च उद्देश्य होने पर भी इंग्लैंड इनसे पूर्णतया संतुष्ट नहीं था ।काय ´–प्रणाली

चतुर्मुखी मित्र – मण्डल के उद्देश्य निश्चित हो जाने पर आवश्यक था कि उसको कार्यरूप में परिणत किया जाय। अतः समय–समय पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया जाय और इन सम्मेलनों में चारों देशों के शासक अथवा उनके नियुक्त प्रतिनिधि सम्मिलित हो जाये और शांति स्थापित करने के उपायों पर विचार करे। वास्तव में ये एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के समान था, जहाँ शांति स्थापना के तथा अशांति तत्वों के नष्ट करने के उपायों का विचार करके किसी क्रियात्मक निश्चय पर पहुँच जाना था। इस प्रकार कुछ समय के लिए इन राष्ट्रों का यूरोप में पूर्ण प्रभुत्व था अर्थात् ये देश यूरोप के पूर्ण रूप से तानाशाह बन गये थे । समय–समय पर इस संघ के पाँच सम्मेलन हुय –अन्तिम सम्मेलन 1825 ई० में हुआ था उसके उपरान्त इंग्लैण्ड ने इसमें भागलेना अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार संयुक्त व्यवस्था का अंत हो गया।

एक्स–ला–शोपेल का सम्मेलन

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत सम्मेलन 1818 ई० में एक्स–ला–शापेल नामक एक स्थान पर हुआ । इस सम्मेलन में दो बातों पर मुख्य रूप से विचार करना था। प्रथम बात यह थी कि लार्ड वेलेजली की अध्यक्षता में मित्र राष्ट्रों की सेना फ्रांस के व्यय पर फ्रांस में रहती थी । कमांडर लार्ड वेलेजली ने प्रस्ताव रखा कि फ्रांस अपना शेष ऋण हॉलैंड से लेकर दे दे और इस धन राशि के मिल जाने पर मित्र राष्ट्रों की सेना फ्रांस से हटा ली जाये। दूसरी बात यह थी कि फ्रांस में लुई अठारहवे का शासन ठीक–ठीक नहीं चल रहा था और उसने पेरिस की द्वितीय संधि के निर्णयों का पूर्णरूप से पालन नहीं किया था। मित्र राष्ट्रों की सेना तथा लुई 18वें ने फ्रांस में शांति रखने में पूर्णरूप से सहायता दी थी। अब फ्रांस में किसी प्रकार की क्रांति के लक्षण तथा चिन्ह दिखाई नहीं देते थे। अतः उसने सिफारिश की थी कि फ्रांस को चतुर्मुखी मित्र मण्डल का सदस्य बना लिया जाये।

यूरोपीय देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप

दर्शक रूप में अन्य देशों के प्रतिनिधि भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इनको किसी प्रकार का वेट आदि देने का अधिकार नहीं था। इस सम्मेलन में अन्य देशों की आर्थिक दशा को सुधारने का निश्चय किया गया और उनके सम्मुख न्याय को एक आदर्श के रूप में रखने का प्रस्ताव रखा। इन प्रसतावों को क्रियान्वित रूप प्रदान करने के लिए इन देशों के प्रतिनिधियों की एक परिषद् स्थापित कर दी गई। अब इन राष्ट्रों (इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस) ने अन्य राष्ट्रों के आंतरिक मालों में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।

स्वीडन के शासक ने डेनमार्क तथा नार्वे के शासकों के साथ संधि की थी परंतु अब वह उस संधि की अवहेलना कर रहा था। फलस्वरूप इस सम्मेलन ने स्वीडन के शासक से स्पष्टीकरण माँगा । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों यह यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था तथा उच्चतर न्यायालय दोनों का ही कार्य कर रही थी।

ट्रोप्पो सम्मलेन

आस्ट्रिया के ट्रोप्पो नामक स्थान पर संयुक्त व्यवस्था के दूसरे सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह अधिवेशन दो कारणों से बुलाया गया था। इस समय स्पेन, पुर्तगाल, नेपिल्स तथा पीडमान्ट की जनता के हृदय में राष्ट्रीय भावनाएँ हिलोरें ले रही थीं और इन देशों के शासको के विरुद्ध जनता ने विद्रोह कर दिया । जनता के साथ सैनिकों ने भी विद्रोह करके विद्रोही जनता का प्रत्यक्ष रूप में समर्थन करना आरम्भ कर दिया। स्पेन के स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक के व्यवहार से तंग आकर वहाँ की सेना ने विद्रोह कर दिया। इस प्रकार सम्राट फडीनेन्ड को अपने प्राणों की चिन्ता उत्पन्न हो गई और उसने अपने देश में प्रजातन्त्रात्मक शासन विधान लागू करना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार नैपिल्स की जनता ने भी अपने निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और वहाँ के शासकों को विद्रोहियाँ द्वारा प्रस्तुत संविधान को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। नेपिल्स के विद्रोह का जिस समय क्रूरता के साथ दमन किया जा रहा था उसी समय प्रायद्वीप के दूसरे किनारे पर स्थित पीडमान्ट के राज्य में भी विद्रोही भावनाएँ प्रबल हो रही थी । यहाँ के विद्रोहियों ने अपने शासक विक्टर इमैन्युल से अपने यहाँ भी स्पेन के संविधान को लागू करने की माँग की और साथ ही आस्ट्रिया से भी युद्ध की घोषण करने की माँग की। सम्राट ने जनता की माँगों को अस्वीकार कर दिया और सिंहासन से त्यागपत्र दे दिया । उसका भाई चार्ल्स फैलिक्स (बिंतसमे थ्मसप्र) उसका उत्तराधिकारी बना। चार्ल्स ने क्रांति को कुचलकर निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना की। निःसंदेह विद्रोह कुचल दिया गया, परंतु इसने देश में एक ओर से दूसरी ओर तक राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार कर दिया। इन्हीं सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर सम्मेलन को बुलाया जाना आवश्यक प्रतीत होने लगा । यथार्थ

में सम्मेलन का उद्देश्य विद्रोहियों द्वारा लागू किए गए, संविधान को समाप्त करना तथा क्रांति को कुचलना था ।

सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि जहाँ कहीं भी क्रांति द्वारा वहाँ के शासक को हटा दिया गया हो वहाँ आस्ट्रिया, रूस तथा प्रशा अपनी सेनाएँ भेज सकते हैं और क्रांति का दमन करेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित किया गया कि जब तक उस देश में पूर्व स्थिति न हो जाये, अन्य राष्ट्र उस देश का सभी विषयों में बहिष्कार करेंगे। आस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस के शासकों ने यह घोषणा की थी और इतिहास में यह ट्रोप्पो की घोषणा (ज्तवचचवन चतवजव. बवस) के नाम से विख्यात है ।

लवेख लाइवेक, का सम्मेलन–

पंचमुखी मित्र – मण्डल की दलबन्दी अब बिल्कुल स्पष्ट हो गई थी, परन्तु ट्रोप्पों के सम्मेलन के कुछ समय उपरान्त ही तीसरा सम्मेलन बुलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः आस्ट्रिया नगरी में स्थित लैबेख नामक स्थान पर तीसरा सम्मेलन बुलाया गया। नेपिल्स तथा पीडमान्ट में विद्रोह हो रहे थे। अतः रूस तथा प्रशा ने आस्ट्रिया ने अपनी सेनायें नेपिल्स में भेज दीं, जिन्होंने विद्रोहियों को बुरी तरह से दबा दिया और

पुनः वहाँ पर राजा फर्डीनेन्ड को राजसिंहासन पर स्थापित कर दिया। इस प्रकार नेपिल्स में पुनः

निरंकुश शासन की स्थापना हो गई। अब आस्ट्रिया ने दूसरी सेना पीडमान्ट में भेजी। इस सेना ने वहाँ पर विद्रोहियों द्वारा लागू किये गये संविधान को समाप्त करके निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना कर दी। ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्टोवर्ड (स्वतक ̀जमूंतक) ने इसका विरोध किया जिससे पंचमुखी मित्र मण्डल का मतभेद स्पष्ट हो गया। परंतु इसी समय ग्रीकवासियों ने टर्की के शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। रूस इस बात का विरोधी था और मित्र मण्डल में पुनः समझौता हो गया। इंग्लैंड तथा आस्ट्रिया ने मित्रता कर ली, क्योंकि रूस का जार टर्की के विरुद्ध यूनानियों को सहायता दे रहा था । आस्ट्रिया तथा इंग्लैंड ने इसका विरोध किया और रूस को उन्हें सौंप देने को बाध्य किया ।

बेरोना का सम्मेलन

लैवेख सम्मेलन को समाप्त हुए अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि चौथे सम्मेलन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और पंचमुखी मित्र मण्डल का यह चतुर्थ अधिवेशन 1820 ई० में इटली के प्रसिद्ध नगर बेरौना में हुआ । फ्रांस की क्रांति ने अनेक देशों की जनता के हृदयों में राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत किया था। यूनान की जनता भी इसी भावनों से प्रेरित हुई थी। टर्की का सुल्तान ही यूनान का शासक था परंतु यूनान की अधिकांश जनता ईसाई धर्म की अनुयायी थी जबकि टर्की के निवासी तुर्क जाति के थे । तुर्क सम्राट ने उनके धर्म पर आघात करने का प्रयास किया। एक समय था जबकि यूनान की सभ्यता तथा संस्कृति विश्व में सर्वोपरि समझी जाती थी, परन्तु टर्की के साम्राज्य की वहाँ पर

स्थापना हो जाने से उनकी प्राचीन संस्कृति तथा उनका गौरव धीरे – धीरे समाप्त हो गया। इससे यहाँ के निवासी भी प्रभावित हुए। अपने देश की दुर्दशा असहनीय हो रही थी और जनता के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना प्रबलता के साथ हिलोरे ले रही थी। फलस्वरूप यूनान की जनता ने टर्की के सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । रूस से इन अवसर का लाभ उठाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाही। कैस्पियन सागर तथा काले सागर में रूस के पास कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं था और वह इस क्षेत्र में उत्तम बन्दरगाह के लिए लालायित था। साथ ही रूस अपने साम्राज्य की सीमा भूमध्य सागर तक बढ़ाने का इच्छुक था, परंतु आस्ट्रिया तथा इंग्लैण्ड रूस के व्यापारिक क्षेत्र में प्रवेश के विरोधी थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूस ने टर्की में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया । चिंतित होकर आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मैटरनिख तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री कैशलरे ने हनोवर में एक–दूसरे से भेंट करने के उपरांत रूस को रोकने के उद्देश्य से एक सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। सौभाग्वश इसी समय अमेरिका स्थित स्पेन के उपनिवेशों में गम्भीर रूप से विद्रोह आरम्भ हो गया। रूस की इच्छा थी कि सम्मेलन में टर्की के सम्बन्ध में विचार किया जाये परंतु बड़ी चतुराई से आस्ट्रिया आदि देशों ने इस विषय पर सम्मेलन में विचार–विमर्श नहीं होने दिया। स्पेन के प्रश्न पर विचार–विमर्श करने के उपरांत इस संघर्ष को समाप्त करने का अधिकार फ्रांस को दिया गया। इंग्लैंड ने आस्ट्रिया ने फ्रांस को सैनिक बल के प्रयोग द्वारा निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना करने का अधिकार दे दिया। इस अवहेलना के कारण इंग्लैंड ने अपने को अपमानित समझा और घोषणा की कि यदि मित्र – मण्डल किसी भी देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करेगा तो इंग्लैंड अपने आपको मित्र मण्डल पृथक करने के लिए बाध य अनुभव करेगा। फलस्वरूप सम्मेलन में सामूहिक हस्तक्षेप की नीति का परित्याग कर दिया और कुछ समय पश्चात् सम्मेलन समाप्त हो गया।
से

यूनान पर इंग्लैंड का प्रस्ताव

रूस को यूनानी विद्रोह को दबाने का अधिकार दिया गया परंतु इंग्लैण्ड को यह अमान्य था और उसने प्रस्ताव रखा कि सभा मित्र राष्ट्रों की सेना सहायता के लिये भेजी जाये। आस्ट्रिया इस प्रस्ताव का विरोधी था । आस्ट्रिया का विचार था कि जिस प्रकार आस्ट्रिया की नेपिल्स आदि राज्यों की समस्या का हल करने का अधिकार है, उसी प्रकार यूनान की समस्या को हल करने का अधि ाकार भी प्रदान किया जा सकता है। इंग्लैंड ने अब अनुभव किया कि उसकी बातों का चारों ओर से विरोध हो रहा है और उसने सम्मेलन में भाग लेने से मना कर दिया।

स्पेन में क्रांति तथा फ्रांस का दमन

स्पेन का स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक फर्डिनेन्ड समस्त जनता पर मनमाने अत्याचार किया करता था । जनता ने उसके अत्याचारों से दुखी होकर विद्रोह कर दिया और सम्राट को विवश होकर प्रजातन्त्रात्मक संविधान स्वीकार करना पड़ा था। स्पेन के शासक फ्रांस के शासक लुई 18वें से सैन्य सहायता माँगी और उस फ्रांस की सेना जहाँ की जनता ने क्रांति द्वारा राजतन्त्रात्मक शासन का अन्त किया था। अब स्पेन में राजतन्त्र की पुनर्स्थापना के लिए आगे बढ़ी। फ्रांसीसी सैनिकों ने क्रूरतापूर्वक का दमन कर फर्डीनेन्ड सप्तम को पुनः सिंहासन पर आसीन कर दिया। फर्डीनेन्ड सप्तम ने जिस संविधान को भय के कारण स्वीकार किया था, समाप्त कर दिया। अब पुनः यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की अंतरिक मामलों में हस्तक्षेप की नीति का विरोध किया, परंतु उसकी अवहेलना कर दी गई। इंग्लैंड को सबसे बड़ा भय था कहीं स्पेन अमरीकी उपनिवेशों में फ्रांस को व्यापारिक अधिकार प्रदान न कर दें, क्योंकि इस कार्य में इंग्लैंड के व्यापार को बड़ा आघात पहुँचता ।

सेंट पीटर्स सम्मेलन

अमरीकी उपनिवेशों की जनता निरन्तर विद्रोह कर रही थी । स्पेन ने 15वीं तथा 16वीं शताब्दी में एक विशाल उपनिवेश स्थापित कर लिया था और स्पेन स्वेच्छाचारिता तथा निरंकुशता के आधार पर आपना शासन स्थापित किए हुए था । यहाँ की जनता इस प्रकार के शासन की कट्टर विरोधी थी फलस्वरूप यहाँ नित्य प्रति नवीन विद्रोह उठते रहते थे।

विद्रोह नित्यप्रति सफलता प्राप्त कर रहे थे और चिली, पीरू, मैक्सिको आदि छोटे–छोटे देशों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी, क्योंकि उनको अमेरिका तथा इंग्लैंड से निरन्तर सहायता प्राप्त हो रही थी । इन राज्यों के निर्माण हो जाने पर इंग्लैंड तथा अमेरिका ने उनसे व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए थे। एक बार पुनः यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था का अधिवेशन आयोजित किया गया, परंतु इंग्लैंड के किसी भी प्रतिनिधि ने इसमें भाग नहीं लिया इसी बीच अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने दिसम्बर 1823 ई० में मुनरो सिद्धान्त (डनदतव क्वब. जतपदम) के नाम से निम्न घोषणा की–

अभी तक हमने यूरोपीय युद्धों में हस्तक्षेप नहीं किया और हमारी नीति भी हस्तक्षेप करने की नहीं है । परंतु जब हमारे अधिकारों पर आक्रमण होता है अथवा किसी प्रकार का भय होता है तो हम उसका सामना करते हैं तथा अपनी रक्षा की तैयारी भी करते है। इन शक्तियों के साथ हमारे जो सम्बन्ध है उनसे बँधे होने के कारण हम अनुभव करते हैं कि यूरोपीय देशों का यहाँ आकर

हस्तक्षेप करना हमारी सुरक्षा तथा शान्ति के लिए खतरा होगा। यूरोपीय देशों का जिन उपनिवेशों पर अधिकार है उनके सम्बन्ध में हस्तक्षेप न तो किया और न करेंगे, परंतु जहाँ के लोगों ने अपनी स्वतंत्र सरकार स्थापित कर ली है तथा न्याय के आधार पर जिन्हें हमने स्वीकार कर मान्यता दे दी है वहाँ उन पर किसी प्रकार का अत्याचार किया जाना अथवा यूरोप की किसी भी शक्ति के द्वारा उनके भाग्य का निर्णय किया जाना हमे असहय है और हम इससे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रति अमित्रता का व्यवहार समझेगा।

अमेरिका के राष्ट्रपति की इस घोषणा के परिणामस्वरूप यूरोपीय देश इच्छा होते हुए भी सैन्य सहायता नहीं भेज सके ।अकेले स्पेन में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह विद्रोहियों का सामना कर सके। शीघ्र ही दस उपनिवेशों ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया ओर अमेरिका में स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य पूर्ण रूप से समाप्त हो गया ।

यूनान तथा टर्की की स्थिति ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था। इस समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से जनवरी 1825 ई० सेंट पीटर्स वर्ग में रूस के शासक जार ने कन्सर्ट के सदस्य देशों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलन में भी इंग्लैंड ने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा । आस्ट्रिया का प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित अवश्य था परंतु इस अधिवेशन में उसने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया और इस प्रकार इस सम्मेलन में काई विशेष निर्णय नहीं हो पाया। इस प्रकार के व्यवहार से रूस क्रुद्ध हो गया और उसने घोषणा कर दी कि भविष्य में यूनान तथा टर्की के विषय में वह मित्र राष्ट्रों से विचार–विमर्श किये बिना ही इच्छानुसार कार्य करेगा। इस प्रकार सेंट पीटर्सवर्ग का अधिवेशन समाप्त हो गया और इसके

साथ ही यूरोप की संयुक्त व्यवस्था समाप्त हो गई, क्योंकि भविष्य में इसका कोई अधिवेशन नहीं किया

गया।

संयुक्त व्यवस्था की असफलता के निम्नलिखित कारण प्रमुख थे–

यूरोपीय राज्यों ने 19वीं शताब्दी में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीयता के आधार पर विचार–विमर्श करने का विचार किया किन्तु इस विषय में अधिक सफलता न मिल सकी। इस असफलता के निम्न कारण थे–

1. दोषपूर्ण संगठन – आरम्भ से ही संयुक्त व्यवस्था का संगठन अत्यन्त दोषपूर्ण था। इनमें सम्मिलित सदस्य रूढ़िवादी, स्वार्थी, प्रतिक्रियावादी तथा ईर्ष्यालु थे। इनका एकत्रित होने का वास्तविक उद्देश्य समस्या का समाधान करना नहीं वरन् स्वार्थ सिद्ध करना था । फलस्वरूप सदस्य देश ही प्रत्यक्ष रूप से एक–दूसरे का विरोध करने लगे और भविष्य में यह सम्मेलन समाप्त हो गया ।

2. सदस्यों की हस्तक्षेप की नीति– संयुक्त व्यवस्था की स्थापना में यूरोप के चार बड़े राज्यों ने भाग लिया और वही इनके सदस्य बने । छोटे–छोटे राज्यों की अवहेलना कर दी गई और उनका इनमें कोई प्रतिनिधित्व नहीं था वे देश इसमें दर्शक के रूप में सम्मिलित हो सकते थे परंतु, वाद–विवाद अथवा मतदान आदि

में भाग नहीं ले सकते थे। साथ ही इंग्लैंड के अतिरिक्त तीन राष्ट्रों ने अपने–अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए छोटे–छोटे राज्यों के आन्तरिक विषय में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया और अपनी सैन्य शक्ति के आधार पर अपनी इच्छानुसार कार्य करवाते थे । निःसंदेह इस सैन्य बल के प्रदर्शन से उनका स्वार्थ अवश्य सिद्ध हो गया परन्तु इसका भयंकर परिणाम हुआ कि जिन देशों ने इस शक्ति का प्रयोग किया वहाँ की जनता इनकी विरोधी हो गई और उनकी यह नीति अप्रिय तथा कटु सिद्ध हुई ।

3. सदस्यों की प्रतिक्रियावादिता – यूरोप में शान्ति स्थापित करने तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए ही संयुक्त व्यवस्था की गई थी, परंतु जनता को शीघ्र ही यह आभास हो गया कि इसके सदस्य प्रतिक्रियावादी हैं। उनका उद्देश्य नवीन तथा क्रांतिकारी विचारों को कुचलकर निरंकुश व स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना करना था, परन्तु व्यवस्था का सदस्य इंग्लैण्ड इस नीति का कट्टर विरोधी था । अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो की घोषणा भी इस नीति के विरोध में ही थी । अतः यह नीति भी उसके
पतन का कारण बना।

4. पारस्परिक ईर्ष्या – द्वेष– संयुक्त व्यवस्था के सदस्यों में कभी भी मतैक्य नहीं हो सका । निःसंदेह उन्होंने सम्मिलित रूप से इस व्यवस्था की स्थापना की थी । परन्तु सभी सदस्य एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखते थे और किसी को किसी का विश्वास नहीं था । भूमध्य सागर में सक्रिय अफ्रीका के डाकुओं को इंग्लैंड के विरोध के कारण नष्ट नहीं किया जा सका। क्योंकि इससे इंग्लैंड के व्यापार को आघात पहुँचने का डर था । इंगलैंड को अन्य देशों के जहाजों की तलाशी लेकर यह देखने का अधिकार था कि कोई देश दास व्यापार आदि तो नहीं करता। इंग्लैंड का यह अधिकार अन्य राष्ट्रों की आँखों में खटकने लगा और उन्होंने इसे समाप्त कर दिया।

5. इसमें यूरोप के केवल बड़े–बड़े पाँच देश ही सम्मिलित हुए थे । अन्य छोटे–छोटे राज्यों की उपेक्षा
की गई थी।

6. रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के सैनिक हस्तक्षेप की नीति के कारण संयुक्त व्यवस्था महत्वहीन समझी
जाने लगी । अन्ततोगत्वा उसे समाप्त कर दिया गया।

7. संयुक्त व्यवस्था में शामिल देशों में एकता का अभाव था। इस मतभेद के कारण वे मिलकर कार्य
नहीं कर सके।

8. इस व्यवस्था ने कोई निश्चित आदेश नहीं रखे थे, न ही सदस्यों के लिए कोई निश्चित कार्यप्रणाली
पश्चिमी विश्व
छव्जै
स्व–प्रगति की जाँच करें : 1. यूरोपीय पवित्र संघ का

महत्व स्पष्ट करें।
2. यूरोपीय पवित्र संघ के पतन का कारण स्पष्ट करें।
3. बेराना का सम्मेलन कब
और कहाँ हुआ ?
4. संट पीटर्स सम्मेलन कब
और कहाँ हुआ ?
थी।
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
183
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस1
bdkbZ-2
सभी राष्ट्रों ने नेपोलियन की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध अपने–अपने हितों के लिए एक अलग गुट तैयार किया । फलस्वरूप यह व्यवस्था समाप्त हो गई।फिर भी यूरोप की इस संयुक्त व्यवस्था से अनेक लाभ हुए। इस समय यूरोप के इतिहास में शान्ति रही । युद्ध, बेकारी, भुखमरी आदि को रोकने के लिए अनेक देशों की जनता ने प्रयास किए। परंतु यह केवल उन्हीं देशों तक सीमित रही। उन प्रयासों ने किसी प्रकार के युद्ध का रूप धारण नहीं किया । मित्र मण्डल को ही उसका सम्पूर्ण श्रेय प्राप्त है। वास्तव में मित्र मण्डल की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग पर एक महत्वपूर्ण प्रयास था तथा यूरोप में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने में उसने सराहनीय सफलता प्राप्त की थी। इस प्रकार यूरोपीय व्यवस्था को राष्ट्रसंघ तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ का अग्रगामी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

1830 की फ्रांसीसी क्रांति

क्रांति के कारण (ब्ंनेमे व जीम त्मअवसनजपवद व 1830) – फ्रांस की सन् 1830 ई० की जुलाई मास में घटित राज्यक्रांति के समीप लाने के लिए निम्नलिखित घटनाओं को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है–

1. उस काल के राजनीतिक दलों का संघर्ष – फ्रांस के शासक लुई 18वें के शासन काल में पाँच राजनैतिक दल मुख्य थे। अपने उद्देश्यों और नीति के आध ाार पर वे दल दो भागों में विभाजित थे। एक तरफ कट्टर राजसत्तावादी और उदार सत्तावादी दलों के सदस्य थे और दूसरी तरफ बोनापार्टिस्ट दल, रिपब्लिकन दल और उदारवादी दल के सदस्य थे। लुई 18वें के द्वारा संवैध ाानिक चार्टर की घोषणा किये जाने के उपरान्त राष्ट्र प्रतिनिधि सभा का निर्वाचन कराया गया। उस चुनाव में कट्टर राजसत्तावादी दल को अन्य दलों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई। इसका प्रमुख कारण संवैधानिक चार्टर की वह धारा थी जिसके अनुसार मतदान का अधिकारी केवल उन्हीं व्यक्तियों को

बनाया गया जो 3 हजार फ्रेंक वार्षिक कर राज्य को देते हों तथा उनकी आयु 30 वर्ष या उससे अधिक हो। इस नियम के आधार पर मतदाताओं की सूची में केवल मध्यम वर्ग के धनी व्यक्तियों के नाम सम्मिलित किये गये और साधारण वर्ग के अधिकांश व्यक्ति मतदान से वंचित रह गए। इस प्रकार के व्यक्तियों को क्रांति के दौर में भीषण आपदायें सहन करनी पड़ी थी । अतः उनके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे अपना मत कट्टर राजसत्तावादियों को ही प्रदान करें, क्योंकि उनके विचार में उस दल के सदस्य ही क्रांति–पूर्व की स्थिति को लाने की क्षमता रखते थे।

कट्ट् राजसत्तावादियों ने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में अपना स्पष्ट बहुमत बनाकर लुई 18वें पर सुधारों के स्थगन के लिए दबाव डालना आरम्भ कर दिया, परन्तु लुई 18वें ने उनके परामर्श के अनुसार कार्य नहीं किया। राजा की ओर से निराश होकर उन्होंने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में राजा द्वारा घोषित किये गए सुधारों को निष्फल बनाने के उद्देश्य से उन सुधारों के विरुद्ध कानून पास करने आरम्भ कर दिये। उन्होंने राष्ट्रीय तिरंगे ध्वज को राजकीय झण्डे के गौरवशाली स्थान से हटाकर बूब वंश के श्वेत झण्डे को राजकीय झण्डा स्वीकार किया। उन्होंने मार्शल आदि अनेक उच्च सैनिक पदाधिकारियों को, जिन्होंने नेपोलियन के शतदिवस अभियान में उसे अपना संयोग प्रदान किया, प्राण– दण्ड देने के लिए लुई 18वें को विवश किया। कट्टर राजसत्तावादियों के इस प्रकार के कार्यों से रुष्ट होकर फ्रांस के दक्षिणी प्रान्तों के निवासियों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया । कट्टर राजसत्तावादियों ने सैनिक शक्ति का प्रयोग करके उन विद्रोहों का दमन करने का प्रयास किया। लगभग छः माह तक दक्षिणी प्रान्तों में रक्तपात, लूटमार और विद्रोहों का भीषण क्रम चलता रहा । रिपब्लिकनों, बोनापार्टिस्टों और उदारवादियों ने जनता के सहयोग से सेना का वीरता के साथ सामना किया, परन्तु अन्त में सेना की विजय हुई। सहस्त्रों उदारवादियों, रिपब्लिकनों और बोनापार्टिस्ट दल के व्यक्तियों का निर्ममता से साथ वध कर दिया । कट्टर राजसत्तावादियों द्वारा किए गए भीषण अत्याचारों और रक्तपात को श्वेत आतक कहा जाता है। लुई 18वें को कट्टर राजसत्तावादियों के

इस प्रकार के कारनामों से फ्रांस में फिर से क्रांति का विस्फोट होने का संदेह उत्पन्न हो गया । अस्तु उसने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को भंग कर दिया और उसके फिर से निर्वाचित कराने की घोषणा की। चुनावों का परिणाम ज्ञात होने पर मालूम हुआ कि उदार – राजसत्तावादियों तथा उदारवादियों को सबसे अधि क मत प्राप्त हुए हैं। अतः नवीन राष्ट्र प्रतिनिधियों के हाथ में शासन – सत्ता आई ।

.

2. उदार राजसत्तावादियों के प्रयास राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में इस बार उदार राजसत्तावादियों को स्पष्ट बहुमत की प्राप्ति हुई। उन्होंने उदारवादियों को अपने साथ लेकर मंत्रिमण्डल का निर्माण किया। उदार राजसत्तावादियों के संयुक्त मंत्रि–मण्डल के कार्य–काल में देश की अधिक उन्नति हुई। उन्होंने कला–कौशल,

उद्योग–धनधों और व्यापार को राजकीय प्रोत्साहन प्रदान किया जिससे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा। केवल तीन वर्ष की अवधि में ही राजकोश में असंख्य धन एकत्रित हो गया। उन्होंने युद्ध – पूर्ति के सात करोड़ फ्रेंकों को मित्र राष्ट्रों को भुगतान किया नाम से फ्रांस का शासक बना। उसके शासक पद प्राप्त करने से स्थिति और भी अधिक विकृत हो उठी।

3. चार्ल्स दशम का दमनकारी शासन (`नचचतमेपअम तनस व`बिंतसमे ग)– चार्ल्स दशम

आर्तोआ का काउण्ट था। उसने फ्रांस की राज्यक्रांति के आरम्भिक दिनों में लुई सोलहवें की महारानी मेरी अनत्वायनेत के साथ मिलकर क्रांति के विरुद्ध षड्यंत्र रचा था। इसी ने क्रांति के दौर में फ्रांस से भागे हुए कुलीनों और उच्च पादरियों का नेतृत्व किया था। क्रांतिकारियों और नेपोलियन के विरुद्ध षड्यंत्र रचने के अभियोग में इसे कभी दण्डित नहीं किया गया था। इसी ने अपने वंश और कुलीनों के नेपोलियन के पतन के उपरांत फ्रांस में वापस आने पर कट्टर राजसत्तावादियों को अत्याचारों के लिए प्रतिक्रियावादिता की कोई सीमा नहीं थी। फ्रांस के राजसिंहासन पर बैठते ही उसने उदारवादियों, गणतंत्र के समर्थकों, क्रांतिकारियों और राजसत्ता के विरोधियों का वध करना और उन्हें बन्दी बनाना आरम्भ कर दिया। उसने उच्च पदाधिकारियों, कुलीनों और सामन्तों को शासन में उच्च पद प्रदान किये। प्रेस, लेखक और भाषण पर कठोरता के साथ प्रतिबन्ध लगा दिये। इस प्रकार क्रांति के उन पुनीत सिद्धान्तों को, जिनकी स्थापना में लगभग आधा करोड़ फ्रांसीसियों ने अपने जीवन का बलिदान किया था, नष्ट करने में चार्ल्स दशम ने किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी। कुलीनों को हानि की पूर्ति के लिए उसने राजकोष से कई करोड़ फ्रांक प्रदान किये। उसने राष्ट्रीय ऋण पर जन–साधारण से लिए जाने वाले ब्याज की दर 5 प्रतिशत से घटाकर केवल 4 प्रतिशत रहने दी ।

उपरोक्त प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करके उसने प्रतिक्रियावादियों के उच्च–पुरोहित मेटरनिक को भी पीछे छोड़ दिया। इसी कारण वेलिंगटन के ड्यूक ने इस सम्बन्ध में व्यक्त किया था कि, चार्ल्स दशम एक ऐसी सरकार की स्थापना कर रहा है जो पादरियों द्वारा पादरियों से पादरियों के लाभार्थ संचालित की जा रही है । अस्तु, इस नीति का परिणाम यही हुआ जो ऐसे अवसर पर होना चाहिए । इतिहासकार ग्राण्ट और टेम्परले ने इस सम्बन्ध में अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है– सम्भावतया उसे भरोसा था कि उसकी सुदृढ़ विदेश नीति के कारण फ्रांस के निवासी अपनी स्वतंत्रता के अपहरण को विस्मरण कर संतुष्ट हो जाएंगे। उसने बेल्जियम पर आक्रमण की योजना तैयार की, उससे इंग्लैंड के साथ युद्ध अनिवार्य हो जाता तथा उसके साथ ही उसने संसद और संविधान को पलटने के लिए भी षड्यंत्र रचा। लोकमत पूरी तरह जागृत होकर शासन के विरुद्ध उठने लगा । अन्ततः उन षड्यंत्रकारियों ने राजा को संसद भंग करने एवं प्रेस का गला घोटने के लिये प्रेरित किया ।

इस प्रकार चार्ल्स दशम के शासन ने देश के भीतर सर्वत्र कोहराम मचा दिया

द्य क्रांतिकारियों, लोकतंत्र के समर्थकों एवं उदारवादियों में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि होने लगी । सन् 1827 ई० राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के चुनाव सम्पन्न हुए । चार्ल्स दशम द्वारा मतदाताओं को हर प्रकार से प्रभावित किया गया कि वे कट्टर राजसत्तावादियों को ही अपना मत प्रदान करें, परन्तु चुनाव परिणामों ने चार्ल्स दशम की आशाओं पर तुषारापात कर दिया। कट्टर राजसत्तावादियों को राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के स्थानों में से केवल 105 स्थान ही प्राप्त हो सके । चार्ल्स दशम ने क्रोधावेश में आकर राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को भंग कर फिर से चुनाव कराये, परंतु परिणाम फिर भी पहले की भाँति रहा। तीसरी बार फिर उसने सभा भंग कर चुनाव कराये, किंतु कट्टर राजसत्तावादियों को राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में बहुमत की उपलब्धि नहीं हो सकी ।

अब चार्ल्स दशम ने प्रतिक्रियावादी राजकुमार पोलिगनेक की प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति की। उसने प्रधानमंत्री बनते ही समाज की पुनर्व्यवस्था करने की घोषणा करते हुए व्यक्त किया कि कुलीनों को फिर से विशेषाधिकार प्रदान किये जाएंगे तथा पादरियों को प्रशासनिक कार्यों में नियुक्त किया जाएगा। पोलिगनेक में दृढ़ निर्णय शक्ति का अभाव था । अतः वह अपनी घोषणा के अनुसार कार्य नहीं करा सका। उसने विदेश नीति को साम्राज्यवादी रूप देकर फ्रांस के गौरव में वृद्धि करने का प्रयास किया। उसने सेना भेजकर उत्तरी अफ्रीका के अलजीयर्स नामक प्रान्त में फ्रांसीसी राज्य की स्थापना की। पोलिगनेक के इस कार्य ने शासन को कुछ स्थिरता प्रदान की । परन्तु उसी समय चार्ल्स दशम ने 25 जुलाई सन् 1930 ई० दिन संवैधानिक आज्ञापत्र की एक धारा के अनुसार दमनकारी अध्यादेशों की घोषणा की। उसका यही कार्य सन् 1830 ई० की क्रांति का तत्कालीन कारण बन गया और 27 जुलाई को क्रांति का वह भीषण विस्फोट हुआ, जिसमें चार्ल्स दशम शासन तंत्र की धज्जियाँ उड़ गईं। चार्ल्स दशम के दमनकारी अध्यादेश निम्नलिखित प्रकार थे–

1. राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को भंग किया जाता है।
2. मतदाताओं की योग्यताओं की शर्तें पहले से ही अधिक कठोर की जाती हैं। इन शर्तों के कठोर बनाने से लगभग 75 प्रतिशत मतदाता मताधिकार से वंचित हो गए और मताधिकार केवल धनी–मानी कुलीनों और सामंतों तक ही सीमित रह गया ।
3.
सितम्बर सन् 1830 ई० में नवीन चुनावों को सम्पन्न कराया जाएगा।
4.

किसी भी सम्पादक को सरकार से सेंसर कराये बिना समाचार–पत्र प्रकाशित करने का अधिकार नहीं होगा।

ैमसी–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

186

जुलाई सन् 1830 ई० की क्रांति (त्मअवसनजपवद व1830) – चार्ल्स दशम के दमनकारी अध्यादेश ने क्रांति की अग्नि प्रज्वलित करने के लिये चिंगारी का कम किया। गणतंत्रवादियों, सम्पादकों, उदारवादियों और क्रांतिकारियों ने संगठित होकर चार्ल्स दशम के शासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करने के लिए जानता का आह्वान किया, जिसके परिणामस्वरूप पेरिस में विद्रोह की ज्वाला फूट निकली। रात्रि के समय पेरिस से सर्वत्र क्रांति के नारे आकाश को गुंजाते रहे और चार्ल्स दशम के विरोधी पेरिस की गलियों और सड़कों पर मोर्चे जमाते रहे। सन् 1789 ई० राज्यक्रांति के ख्यातिप्राप्त नेता लाफायेत ने जो अब वृद्ध हो चुके थे फिर से क्रांति का संचालन किया। 27 जुलाई से तीन दिन तक दिन–रात जनता का सड़कों और गली–कूचों में राजा की सेना के साथ संघर्ष होता रहा । अन्ततः क्रांतिकारियों की अपार भीड़ ने टलरीज के राजप्रासाद पर आक्रमण करके उसे लूट लिया। अब चार्ल्स दशम ने विद्रोहियों के नेताओं से संधि करनी चाही, परन्तु उसका उपयुक्त समय हाथ से निकल चुका था। किसी ने भी संधिवार्ता के लिए किसी प्रकार का उत्साह नहीं दिखाया । विवश होकर चार्ल्स दशम अपने दसवर्षीय पोते के लिए राजसिंहासन त्याग कर विदेश को भाग गया।

इस प्रकार क्रांति सफल हुई। गणतंत्रवादियों ने लाफायत के नेतृत्व में पेरिस के होटल डि विले में अस्थायी सरकार की स्थापना की। परन्तु फ्रांस में उस समय गणतंत्र की स्थापना नहीं की जा सकी जिसका प्रमुख कारण यह था कि वाटरलू की युद्ध भूमि में विजय प्राप्त करने वाले यूरोपीय राष्ट्रों को उस समय भी सन् 1781 ई० से 1815 ई० तक घटित क्रांति की घटनाओं और उनके अनिष्टकारी प्रभावों का स्मरण था। सभी दलों ने मिलकर बोबों वंश की दूसरी शाखा के राजकुमार ओर्लियन्स के ड्यूक लुई फिलिप को वैधानिक शासन की स्थापना के लिए आमंत्रित किया । लुई फिलिप ने उनके आग्रह को स्वीकार करते हुए वैधानिक शपथ लेते हुए फ्रांस का राजमुकुट धारण किया। उधर चार्ल्स दशम यूरोपीय देशों में मारा–मारा फिरता रहा और सन् 1836 ई० में आस्ट्रिया में परलोक सिधार गया ।

क्रांति के परिणाम (त्मेनसजे व जीम त्मअवसनजपवद)

(प) सन् 1830 ई० की क्रांति का सबसे प्रमुख परिणाम यह रहा कि फ्रांस के शासन की बागडोर बोर्बो वंश की प्रथम शाखा के हाथ से निकलकर छोटी शाखा के राजकुमार लुई फिलिप के हाथ में आ गई। राजकुमार लुई फिलिप अपने युवाकाल में फ्रांस की क्रांतिकारी सेना के साथ

युद्ध भूमि में जा चुका था। अतः क्रांतिकारियों ने उसे शासन– सूत्र प्रदान किये जाने पर किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। इस प्रकार क्रांति का विस्फोट तो

हुआ, किंतु उसे फ्रांस से राजतंत्र की समाप्ति करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इतना अवश्य हुआ कि वैध राजसत्ता की स्थापना हो गई।

(पप) फ्रांस के संविधान में कोई विशेष प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। नवीन संवैधानिक व्यवस्था में लुई 18वें के संविधान आज्ञा–पत्र की 10वीं धारा को रद्द कर दिया गया। इस धारा के अनुसार फ्रांस का शासक दमनकारी कानून लागू कर सकता था ।

(पपप) प्रेस पर लगे नियंत्रण को हटा दिया गया।

(पअ) कैथोलिक धर्म को राजधर्म स्वीकार नहीं किया गया। सभी फ्रांसीसियों को धार्मिक स्वतंत्रता
प्रदान की गई।

(अ) सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उदारवादियों और गणतंत्रवादियों के निर्वाचन के अधिकार को विस्तृत करने की माँग पूरी नहीं की गई। फ्रांस की उस काल की 2 करोड़ 80 लाख की जनसंख्या में से केवल एक सीमित संख्या में ही मतदाताओं की सूची में उनके नाम सम्मिलित थे। इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया और मतदाताओं की संख्या यथापूर्ण बनी रही। इस प्रकार पेरिस के गली–कूचों और सड़कों पर रक्त की नदियाँ बहाकर गणतंत्रवादियों ने जिस सरकार का निर्वाचन किया उसी सरकार को सहयोग देने के लिए अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने के अधिकार से जनता पहले की भाँति ही वंचित रही ।

(अप) इस क्रांति का अन्य सुखद परिणाम यह रहा कि कट्टर राजसत्तावादियों और उच्च पादरियों ने जिन राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति कर ली थी उन्हें स्थगित कर दिया गया। उनके द्वारा सम्पन्न श्वेत आतंक (ॅपजम ज्मततवत) जैसे अत्याचारपूर्ण कार्यक्रमों की पुनरावृत्ति की भी सम्भावना सदा के लिए जाती रही।

(अपप) लुई फिलिप ने जनता के अधिकारों का आदर करने का आश्वासन दिया। यह कार्य भी कुछ महत्वूपर्ण नहीं था। इस प्रकार सन् 1789 ई० की क्रांति के जो कार्य शेष रह गए थे उन्हें सन् 1830 ई० की राज्यक्रांति ने पूर्ण कर दिया। अब भविष्य के लिए क्रांति के मूल सिद्धान्तों एवं तत्वों अर्थात् समानता, वैधानिक स्वतंत्रता और धर्म–निरपेक्षता को सृदृढ़ आधार की प्राप्ति हो गई।

अन्य देशों पर प्रभाव (म्ममिबजे वद वजीमत बवनदजतपमे) जुलाई सन् 1830 ई० में घटित फ्रांस की राज्यक्रांति का प्रभाव सुदूरगामी रहा। उसने यूरोप महाद्वीप के लगभग सभी देशों को प्रभावित किया। सभी देशों में क्रांति के पुनीत सिद्धान्तों तथा स्वतंत्रता समानता और भ्रातृत्व भावना की स्थापनार्थ आन्दोलन खड़े किये जाने लगे । जनसाधारण में निरंकुश शासकों का शासन उखाड़ फेंकने के लिए तैयारियाँ की जाने लगीं। इस क्रांति का प्रभाव समुद्र पार करके अमेरिका पर भी पड़ा। विभिन्न देशों पर पड़े जुलाई क्रांति के प्रभावों की व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की है–

1. इंग्लैण्ड का प्रभाव – जुलाई की फ्रांसीसी राज्य क्रांति का इंग्लैंड पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय इंग्लैंड में टोरी दल की सरकार के हाथ में शासन की बागडोर थी। बैंलिंगटन का ड्यूक जो मेटरनिख का घनिष्ट मित्र एवं उसी के समान प्रतिक्रियावादी था, प्रधानमंत्री पद पर आसीन था । वह और उसकी सरकार जनता को किसी प्रकार की सुविधा देने के लिये प्रस्तुत नहीं थे। फ्रांस की क्रांति की सूचना पाकर इंग्लैंड की जनता उत्साह से भर उठी और मताधि ाकार की प्राप्ति के लिए आंदोलन करने लगी। उस इंग्लैंड में केवल धनिक वर्ग के व्यक्ति ही मतदाता बने हुए थे। हिग दल ने सुधार बिल लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया, किन्तु वह पास नहीं हो सका। इसके कुछ ही समय बाद वहाँ संसद के चुनाव हुए जिनके परिणाम उदारवादियों के अनुकूल रहे। अतः लोकसभा में ह्विग दल का बहुमत हो गया और शासन – सूत्र ह्विगदल की सरकार को प्रदान किया

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसŌप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

187

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसŌप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

188

गया। उन्होंने लोकसभा में सुधार बिल प्रस्तुत किया, परंतु इस बार भी वह पास नहीं हो सका। अतः लोकसभा भंग कर दी गई और फिर से चुनाव कराये गए। इस प्रकार ह्विगों का लोकसभा में स्पष्ट बहुमत हो गया और उनकी सुधर बिल पास कराने में सफलता प्राप्त हुई। परंतु लॉर्ड सभा ने उसे अस्वीकार कर दिया। जनता में इससे विद्रोह खड़े होने लगे। लॉर्डसभा जनता के क्रांतिकारी प्रयासों को देखकर कर आतंकित हो उठी और उसने सुधार बिल पास करने के लिए अपनी सहमति प्रकट की अतः सन् 1830 ई० में फिर से सुधार बिल लोकसभा में स्वीकृत करके लार्ड सभा के पास भेजा गया। लॉर्ड सभा द्वारा पास किये जाने पर सुधार बिल कानून का रूप धारण कर गया और जनता को भी मतदान के अधिकार की प्राप्ति हो गई। इसके साथ ही इंग्लैंड की जनता को उस सुध ार बिल द्वारा अन्य अनेक अधिकारों की भी उपलब्धि हुई । इस प्रकार फ्रांस की राज्य– क्रांति के प्रभाव से इंग्लैण्ड में जनता को विविध प्रकार के अधिकारों की प्राप्ति हुई ।

2. बेल्जियम पर क्रांति का प्रभाव – फ्रांसीसी क्रांति से प्रभावित होकर बेल्जियम की जनता ने भी 18 नवम्बर को हालैंड की पराधीनता की बेड़िया काटने के लिए सशस्त्र विद्रोह खड़ा कर दिया। हालैंड की सेना के साथ उसका संग्राम हुआ जिसमें बेल्जियम की जनता को विजय प्राप्त हुई ओर हालैंड की सेना भाग खड़ी हुई । हालैंड के राजा ने एक और सेना विद्रोहियों का दमन करने के लिए

भेजी, परंतु उसकी भी बेल्जियम की प्रजा ने बुरी तरह पराजित करके भगा दिया। यूरोप भर में इस घटना ने सनसनी उत्पन्न कर दी। बेल्जियम को शक्ति के आधार पर हालैंड से पृथक राज्य का रूप दिया जाता है। इसके उपरान्त बल्जियम का राजमुकुट सेक्स का वर्ग गोथा के राजकुमार लियोपोल्ड को पहनाया गया। फ्रांस, इंग्लैण्ड और रूस ने बेल्जियम को पूर्व तक बेलियम के तटस्थता स्थिर रही और किसी भी यूरोपीय देश का उस पर आक्रमण नहीं हुआ।

3. स्पेन पर क्रांति पर क्रांति का प्रभाव – नेपोलियन के पतन के उपरान्त बियना की कांग्रेस के निर्णयों के अनुसार नेपोलियन की कैद से लुटा हुआ स्पेन का राजकुमार सन् 1815 ई० में फर्डीनेण्ड सप्तम के नाम से स्पेन का शासक बना। वह भी एक प्रतिक्रियावादी शासक था । अतः उसने सन् 1812 ई० के संविधान को स्थगित करते हुए संविधान सभा को भंग कर दिया। प्रेस भाषण ओर लेख लिखने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गए । व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हरण करके क्रांतिकारी को राज्य की जेलों को भर दिया तथा क्रांति के अनेक पुजारियों को देश से निर्वासित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उसने कुलीनों को फिर से विशेषाधिकारी दिये तथा चर्च की सम्पत्ति पुनः चर्च को वापिस कर दी। उसने देश में धार्मिक न्यायालयों की स्थापना की और खेलकुद एवं आमोद–प्रमोद में राजकोष रिक्त रहने लगा। उसके इन कार्यों से जनता में विद्रोह की भावना उत्पन्न होने लगी । सन् 1815 ई० में वहाँ के देशभक्तों ने ऐसा देशभक्तों ने ऐसा भीषण विद्रोह किया कि फर्डीनेण्ड सप्तम को अपने प्राण बचा कर भाग जाना पड़ा। परंतु फ्रांस के लुई 18वें ने 9,5000 फ्रांसीसी सैनिक भेजकर विद्रोह का दमन किया और फर्डीनेण्ड सप्तम के निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना की। सन् 1830 ई० को फ्रांस की राज्य–क्रांति के समाचारों एवं चार्ल्स दशम के देश छोड़कर भाग जाने का विवरण ज्ञात करके स्पेन की राष्ट्रीय प्रवृत्ति के समर्थकों में अनभूत उत्साह का संचार हुआ। उनके हृदय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये उद्वेलित होने लगे। उन्होंने अनेक स्थानों पर विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित की, परन्तु सेना का समर्थन प्राप्त होने के कारण फर्डीनेण्ड सप्तम ने उन विद्रोहों का क्रूरता के साथ दमन कर दिया । सहस्त्रों देशभक्त कारागार में सड़ने के लिये डाल दिये गए और सैकड़ों की हत्या कर दी गई। सर्वत्र मौत का सा सन्नाटा छा गया, परन्तु देशभक्तों ने अपने प्रयास जारी रखे जिससे सन् 1834 ई० के चुनावों में उन्हें भारी सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने स्पेन के शासक को प्रशासनिक सुधारों की घोषणा करनी पड़ी। सन् 1812 ई० के संविधान के आधार पर एक नवीन संविधान तैयार किया गया जिसके अनुसार स्पेन में वैध राजसत्ता की स्थापना की गई और संसद के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमण्डल निर्मित किया गया। इस प्रकार सन् 1830 ई० को क्रांति के प्रभाव से स्पेन में वैध राजसत्ता की स्थापना सम्भव हुई ।

4. पुर्तगाल पर प्रभाव – नेपोलियन ने सन् 1807 ई० पुर्तगाल को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। वहाँ का शासक जॉन अपने परिवार, राजकोष और

प्रमुख सैनिकों सहित दक्षिणी अमेरिका स्थित अपने उपनिवेश ब्राजील को चला गया था। सन् 1820 ई० अंग्रेजी सेना ने वैलिंगटन के ड्युक की अध्यक्षता में फ्रांसीसियों को पुर्तगाल से निकला बाहर किया। उसके उपरान्त सन् 1820 ई० तक पुर्तगाल अंग्रेजों के अधिकार में रहा । अंग्रेजी शासन से उकता कर पुर्तगाली देशभक्तों ने विद्रोह करने आरम्भ कर दिये। अतः अंग्रेजी सेना को पुर्तगाल खाली करना पड़ा। देशभक्तों ने सन् 1812 ई० के संविधान के आधार पर अपने देश के लिए संविधान का निर्माण कर देश के शासन की बागडोर स्वयं सम्भाल ली।

सन् 1821 ई० में चतुर्मुखी मित्र मण्डल ने जॉन को पुर्तगाल वापिस बुला लिया वह तुरन्त ही ब्राजील का शासन अपने सबसे बड़े पुत्र को सौंप कर पुर्तगाल चला आया । देशभक्तों ने जॉन के शासक बनते ही संविधान की अवहेना एवं जनता के अधिकारों का हनन करने का प्रयास आरम्भ कर दिया। देशवासियों ने उसके शासन के विरुद्ध विद्रोह करके उसे पुर्तगाल से भगा दिया, परंतु मित्र राष्ट्रों ने अपनी सैनिक शक्ति का प्रयोग करके पुनः उसके निरंकुश शासन की स्थापना की। सन् 1826 ई० में जॉन का स्वर्गवास हो गया । ब्राजील के शासक ने अपनी पुत्री डोना मोरिया को पुर्तगाल के सिंहासन पर बिठा दिया। उसके चाचा डाम मिगुएल ने सन् 1828 ई० में स्वयं पुर्तगाल के शासन पर बलात् अधिकार कर लिया। डोना मेरिया ने उदार संविधान का आश्वासन देकर देशभक्तों की सहायता प्राप्त की। इस प्रकार पुर्तगाल गृह युद्ध की लपटों में भस्म होने लगा ।

जुलाई 1830 ई० की क्रांति के समाचारों से प्रभावित होकर पुर्तगाली देशभक्तों ने स्पेन, फ्रांस और इंग्लैंड के उदारवादियों से सहयोग प्राप्त करके अपनी शक्ति में वृद्धि की। 1834 ई० में ब्राजील का शासक डॉम पेड्रों भी अपनी पुत्री डोना मेरिया को पुर्तगाल के सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए आया। उसने डॉम मिगुण्ल को पराजित किया और अपनी पुत्री को फिर से पुर्तगाल की शासिका बनाने में सफलता प्राप्त की। डोनो मेरिया ने अपने दिये आश्वासन के अनुसार देश में उदार और वैधानिक शासन की स्थापना की। इस प्रकार पुर्तगाल भी फ्रांस की क्रांति से प्रभावित होकर वैध राजसत्ता की प्राप्ति में सफल हुआ।

5. जर्मनी का प्रभाव – जर्मनी में प्रशा जैसे विशाल और शक्तिशाली राज्य के अतिरिक्त हनोवर, हेस सेक्सनी आदि छोटे–छोटे राज्य भी थे। उन राज्यों में एकता का पूर्ण अभाव था। सन् 1830 ई० को फ्रांसीसी राज्य क्रांति के समाचारों ने जर्मनी राष्ट्रवादी उदार नेताओं में नवजीवन और स्फूर्ति का संचार किया। उन्होंने विभिन्न राज्यों में निरंकुश शासन को निर्मूल करने के अभिप्राय से विद्रोह खड़े कर दिये थे। छात्रों अध्यापकों ने विशाल जूलूस निकाले और सभाओं में उत्तेजनापूर्ण भाषण किये। मेटरनिख इस प्रकार की उदार प्रवृत्तियों का कट्टर शत्रु था। अतः उसने जर्मन संघ की अत्यावश्यक सभा आयोजित करके उससे अनेक दमनकारी कानूनों की घोषणा कराई गई । अतः जर्मनी में

लेख लिखने, भाषण देने और समाचार पत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। छात्रों के जलूस पर फ्रैंकफुर्ट में गोली चलाई गई तथा देश के समस्त छात्र संघों को भंग कर दिया। विश्वविद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों पर अंकुश रखने के लिए कठोर प्रवृत्ति के निरीक्षकों (ब्नतंजवते) की नियुक्ति की गई। जर्मन देशभक्तों की भारी संख्या देश से निर्वासित कर दी गई। उन सभी राज्यों में जहाँ उदार शासन की स्थापना की गई थी वहाँ सैनिक शक्ति का प्रयोग कर पुनः शासकों के निरंकुश शासन की स्थापना की गई। इस प्रकार मेटरनिख को जर्मनी में फ्रांस के क्रांति की प्रभावों को विनष्ट करने में सफलता प्राप्त हुई।

परंतु इतना होते हुए भी जर्मनी से राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को निर्मूल नहीं किया जा सका। वे उस समय तो दब सी गई थीं, परंतु भविष्य में किसी समय भी देश में विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित कर सकती थी । आगे चलकर यह बात सर्वथा सत्य सिद्ध हुई। सन् 1848 ई० में फ्रांस में फिर एक क्रांति हुई जिसके प्रभाव से जर्मनी के राष्ट्रवादियों में एकता और संगठन का अद्भुत रूप से प्रसार हुआ और उन्होंने देश को संगठित राष्ट्र का रूप देने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

189

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

190

6. पोलैंड पर प्रभाव – सन् 1815 ई० में वियना के कांग्रेस के निर्णयों ने पोलैंड के उन प्रदेशों को जिन पर प्रशा और आस्ट्रिया ने उसका अंग–भंग करके अधि ाकार जमा लिया था, रूस को दिला दिया था। रूस के जार ने इस प्रकार प्राप्त पोलिश प्रांतों के साथ अपने कुछ और प्रदेश संयुक्त करके पोलैंड के राज्य की स्थापना की। उसने इस प्रकार से निर्मित राज्य को एक संविधान भी प्रदान किया, परंतु पोलिश देशभक्त इससे संतुष्ट नहीं हो सके। वे अपनी स्वतंत्रता की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील रहे। सन् 1825 ई० में रूस के जार अलैक्जैंडर प्रथम का स्वर्गवास हो गया और उसका भाई निकोलस रूस के सिंहासन पर आसीन हुआ। वह निरंकुश अत्याचारी और हठी शासक था ।

फ्रांस की जुलाई क्रांति के समाचारों से प्रेरणा प्राप्त करके पोलिश राष्ट्रवादियों ने संगठित होकर अचानक 29 नवम्बर 1830 ई० के दिन पोलैण्ड की राजधानी वारसा, में अचानक विद्रोह का बवण्डर खड़ा कर दिया । विद्रोह का विस्फोट इतना भीषण और भयानक हुआ कि वहाँ के रूसी शासक कोन्सटैन्टाइन के हाथ पैर फूल उठे और वहाँ से भागकर अपने प्राणों की रक्षा करनी पड़ी। राष्ट्रीयता के उत्साह से परिपूर्ण पोलिश देश भक्तों ने रूसी अफसरों की हत्या

कर डाली। रूसी सेना को भी पोलैण्ड से भाग जाना पड़ा। राष्ट्रवादियों द्वारा पोलेंड में एक स्थायी सरकार की स्थापना की गई। उनके पास उस समय 50 सहस्त्र पोलिश सेना थी। उसी के बल पर वे एक वर्ष तक रूस की प्रबल शक्ति का वीरता के साथ सामना करते रहे। उन्होंने इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के उदारवादियों से सहायता के लिए अनेक करूणापूर्ण अपील की, परंतु वे लोग सहानुभूति रखते हुए भी रूस के भय से आतंकित होकर उनकी सहायता करने में असमर्थ रहे । अन्ततः रूसी सेनाओं को पोलैंड पर फिर अधिकार हो गया। रूस के जार ने पोलैंड को रूसी साम्राज्य में संयुक्त कर लिया और पोलिश देश – भक्तों की भारी संख्या साइबेरिया में उजाड़ शीतल प्रदेश में भयानक शीत में ठिठुर कर मर जाने के लिए निर्वासित कर दी गई। इस प्रकार लगभग अगले 25 वर्षों के लिए पोलैंड रूसी भालू के कठोर पंजों में पकड़ा गया । पोलैंड का सर्वस्व स्वाहा हो गया और रूस की तीक्ष्ण तलवार उसके ऊपर लटकने लगी।

7. स्विट्जरलैंड पर प्रभाव – उस समय स्विट्जरलैंड में अनेक छोटे–छोटे प्रांत (ब्दजवदे) थे जिसमें वहाँ की शासन व्यवस्था कुछ थोड़े से कुलीन समृद्ध परिवारों के ही हाथ में थी । जनता के प्रतिनिधियों को शासन में किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। सन् 1830 ई० की फ्रांस की राज्यक्रांति के समाचारों से प्रेरणा प्राप्त करके स्विट्जरलैंड के देश–भक्तों के देश के विभिन्न स्थानों में सभाओं का आयोजन किया और अधिकारों के लिए माँग करनी आरम्भ की। फलतः वहाँ की केन्द्रीय सरकार को शासन में विभिन्न प्रकार के सुधारों की स्थापना के लिये विवश होना पड़ा। परंतु इतने पर भी इन सुधारों द्वारा स्विट्जरलैंड के शासन को लोकतंत्रात्मक प्रशासन – प्रणाली के रूप में नहीं ढाला जा सका । परंतु आंशिक रूप में स्विस देश भक्तों को अपने प्रयासों में जिस सफलता की उपलब्धि हुई वह भी किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। इस सफलता की जो कुछ भी उपलब्धि हुई वह भी किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। इस सफलता ने भविष्य में गणतंत्री सिद्धान्तों की स्थापना के लिए पथ प्रशस्त कर दिया सन् 1848 ई० को फ्रांस की तृतीय राज्यक्रांति के अवसर पर स्विस देश–भक्तों की अभिलाषा पूर्ण हुई ओर वहाँ का शासक पूर्ण रूप से गणतंत्र के सिद्धान्तों पर आधारित किया जा सका ।

8. इटली पर प्रभाव – फ्रांस की जुलाई सन् 1830 ई० में घटित राज्य – क्रांति ने इटली के विभिन्न राज्यों को भी प्रभावित किया। वहाँ के राष्ट्रवादी उदार देशभक्तों ने इटली में एक छोर से दूसरे छोर तक विद्रोहों की ज्वाला प्रचण्ड की । वारसा की रानी मेरी ड्यूक एवं मोडेना के ड्यूक को अपने प्राणों की रक्षार्थ वहाँ से भाग कर आस्ट्रिया में शरण लेनी पड़ी। पो नदी टाइवर नदी तक के सभी प्रांत विद्रोह की लपटों में धू–धू करके जलने लगे। क्रांतिकारियों का राष्ट्रीय तिरंगा झण्डा निरंकुश शासकों के हृदय दहलाने लगा। इटली के निरंकुश शासकों और पोप ने मेटररिनिख से सैनिक सहायता की याचना की। मेटरनिख ने उनका संकेत पाते ही शक्तिशाली आस्ट्रियन सेना भेज दी जिससे

इटली भर में आन्दोलनों और विद्रोहों का क्रूरता के साथ दमन करके निरंकुश शासकों की सत्ता की
पुनर्स्थापना की। इस प्रकार इटली में फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव को निष्फल करते हुये क्रांति की लहर को अबरूद्ध कर दिया गया।
9. अमेरिका पर प्रभाव – फ्रांस की राज्यक्रांति के प्रभाव सूदूरगामी रहे। उन्होंने महासागरों को पार करके अमेरिका को भी प्रभावित किया । यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में फ्रांस की सन् 1789 ई० की राज्यक्रांति के विस्फोटक होने के पूर्व ही लोकतंत्र शासन की स्थापना की जा चुकी थी, परंतु वहाँ के शासन पर बड़े – बड़े धनपतियों एवं उद्योगपतियों ने अधिकार कर रखा था। जनता के अधिकारों की अमेरिका के संविधान में उपेक्षा की गई थी । वहाँ का समाज उस समय प्रधानतः दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग प्रभावशाली व्यापारियों, उद्योगपतियों और जमींदारों से निर्मित था। दूसरे वर्ग में साधारण प्रभावहीन और निर्धन व्यक्ति सम्मिलित थे, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में जाकर बसे थे। इसी प्रकार वहाँ एक वर्ग, ऐसे व्यक्तियों का था जो जनसाध ारण को अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान करने का पक्षपाती था। वहाँ के ध नीमानी व्यक्तियों को यद्यपि यूरोपीय – कुलीनों जैसे विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे, परंतु उन्होंने अपनी सम्पत्ति के बल पर शासन को प्रभावित कर रखा था उन्होंने अपने खेतों में काम करने के लिए सहस्त्रों अफ्रीकी हब्शियों और रेड इंडियनों को अपना दास बना रखा था।
सन् 1830 ई० की फ्रांसीसी क्रांति की लहर सुधारवादियों और उदारवादियों को संगठित होकर सुधारों की स्थापना और दास प्रथा की समाप्ति के लिए उग्र आन्दोलन खड़े करने की प्रेरणा प्रदान की । अतः देश भर में स्थान–स्थान पर सभाएं करके जनमत को उद्वेलित किया जाने लगा। सरकार को उन आन्दोलनों से आतंकित होकर शासन को अधिक उदार एवं जनहितकारी बनने के लिए विवश होना पड़ा। अस्पताल कल व कारखानों में काम करने वाले श्रमिक स्त्री–पुरुषों और बालकों की सुविधाएं विविध प्रकार के कानून, कारखाने अध िनियम के अन्तर्गत बनाये गये जिनके कारण श्रम के घण्टे नियमित हो गए, श्रमिकों के स्वास्थ्य की देख–रेख के लिए प्रत्येक कारखानों में अस्पताल खोलने की व्यवस्था की गई तथा उसके लिए सुखदायी आवासों के निर्माण का प्रबन्ध ा किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी राज्यों में दास – प्रथा ¹(संअमतल) की समाप्ति कर दी गई तथा दक्षिणी देशों को ऐसा करने के लिए विवश किया जाने लगा। इस फ्रांस की सन् 1830 ई० की राज्यक्रांति के प्रभाव से संयुक्त राज्य अमेरिका में जनता के लाभार्थ अनेक प्रकार के सुधारों की स्थापना की गई।
लुई फिलिप (स्वनप चैपसपचम 1830 1848) भूमिका – 1830 ई० की क्रांति के पश्चात् ओर्लियन्स वंश के लुई फिलिप को फ्रांस का सम्राट घोषित किया गया। कारलाइल ने लुई फिलिप के विषय में लिखा है, इगेलाइट फिल्स, बाल्मी में छोटा–सा नौजवान था। वह बराबर वालों में छोटा था, किन्तु युद्धवीर था ।

युद्धों में वह निडर होकर चलता था । यह वही युद्धवीर इगेलाइट फिल्स था, जो शूरवीरता के कारण लुई फिलिप बनकर फ्रांस के राज सिंहासन पर बैठा । यद्यपि अभी वह सम्राट के पद के योग्य नहीं था, फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों में उसे फ्रेंच जाति का सम्राट बनना पड़ा। उसने अपने को फ्रांस का नागरिक सम्राट (ब्पजबमद ापदा वत ापदक व िथ्तंदबम) घोषित किया। वह साधारण जीवन व्यतीत करता था । उसने बूब वंश के सफेद झण्डे के स्थान पर क्रांतिकारी तिरंगे को राष्ट्रीय चिह्न के रूप में स्वीकार किया । राष्ट्रीय गीत (डंतेमपससंपेम) की आवाज पुनः सुनाई देने लगी।

लुई फिलिप की आन्तरिक नीति

लुई फिलिप की स्वर्णिम मध्यवर्गीय नीति– लुई फिलिप ने अपने को फ्रांसीसी जनता का राजा घोषित किया अर्थात् यह घोषणा की कि वह फ्रांसीसी जनता की अनुमति से शासन करेगा । उसे यह अनुभव हो गया था कि दैवी अधिकार के सिद्धान्त पर शासन करना असंभव होगा, इसलिए उसने उदार नीति का अनुसरण किया। लेकिन लुई फिलिप के समय मध्य वर्ग का प्रभाव था। अन्य वर्ग में भी उच्च वर्ग (र्ं थ्तंबी ठवनतहमवचवेम) ने लुई फिलिप को अपना समर्थक बना लिया। उसकी इस नीति की स्वर्णिम मध्यवर्गीय (ळवसकम डमंद) नीति के नाम से भी पुकारा गया। ग्रेन्ट और टेम्परले ने इस नीति की व्याख्या करते हुए कहा है, लुई फिलिप ने कट्टर राजसत्तावादियों और गणतंत्रवादियों का पक्ष न लेकर, बुजुर्ग वर्ग

पश्चिमी विश्व

छव्जै

''

ैमसि– प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

191

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

192

अर्थात् मध्य वर्ग का समर्थन करके, गोल्डन मीन नीति के रूप में मध्य वर्गीय शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया।

लुई फिलिप के मन्त्रिमण्डल – लुई फिलिप को भी अनेक वर्गों के असन्तोष का सामना करना पड़ा। उसकी लोकप्रियता कितनी कम थी, इस बात का पता एक सदस्य द्वारा सम्राट के कार्यों के विषय में व्यक्त किये गये शब्दों से चल जाता है, कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नही । फ्रांस उससे ऊब गया है। लुई फिलिप के शासनकाल को भागों में विभक्त किया जा सकता। प्रथम भाग 1830 से 1840 ई० तक का है जिसमें मन्त्रिमण्डल अस्थायी रहे। इस काल के मन्त्रिमण्डल थे– लीफीक (1830–31) सीमीर (1831–32) मूल (1832–36) थीयर्स (1836–39)

और पुनः थीयर्स का द्वितीय मन्त्रिमण्डल (1840) । इस काल में विशेष रूप से 1831 से 1834 ई० के बीच मजदूरों के असन्तोष के कारण अनेक विद्रोह हुए। इन विद्रोहों के कारण गणतन्त्र दल की शक्ति उसके अनेक नेताओं की गिरफ्तारी के कारण कम होने लगी । सम्राट ने गणतन्त्रवादी पर अनेक प्रतिबन्ध ा लगा दिये। 1835 में ई० फिलिप पर दिये गए फीशी (थ्पेबवप) के हमले के कारण अनेक ऐसे कानून बनाये गए जिन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिया। इन कानूनों की गणतन्त्रवादियों ने कटु आलोचना की। वे गुप्त रूप से अपना प्रचार कार्य करते रहे और लुई फिलिप के मध्यवर्गी शासन के शत्रु बन गए ।

गीजो मन्त्रिमण्डल – 1840 से 1849 तक गीजो का मन्त्रिमण्डल रहा । गीजो अनुदार दल का नेता था । उसने जुलाई में स्थापित राज्यसत्ता को स्वीकार किया था। गीजो ने अपनी नीति इस प्रकार घोषित की। अपने देश में क्रांति की गति को रोकना और दूसरे देशों में ऐसी नरमी से बर्ताव करना जिसमें वर्तमान संधियों का पालन हो और दूसरे राष्ट्रों के मामले में किसी प्रकार हस्तक्षेप न हो। 1830 ई० में जो सुधार लुई फिलिप ने स्वीकार व घोषित किये, उनको वह पर्याप्त व सनतोषजनक मानता था, लेकिन गीजो की निषेधात्मक और अनुदार नीति का परिणाम जनता का बढ़ता हुआ असन्तोष निकला। 1848 ई० की क्रांति को न गीजो रोक सका और न ही लुई फिलिप ।

विभिन्न दलों का असन्तोष – गणन्त्रवादी ही नहीं, बल्कि लेजिटिमिस्ट अर्थात कट्टर राजसत्तावादी भी लुई के शासन से इसलिए प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि राजा ने दैवी अधिकार के सिद्धान्त के अनुसरण की घोषणा नहीं की थी। बोनापार्टिस्ट दल, जिने नेपोलियन बोनापार्ट की गौरवशाली व साहसी बैदेशिक नीति को देखा था, लुई की कमजोर व दब्बू नीति से अप्रसन्न था। कैथोलिक पादरी और कट्टर कैथोलिक मतावलम्बी भी राजा से प्रसन्न नहीं थे। चार्ल्स दशम की भाँति शासन में उनका प्रभाव नहीं रहता था ।

सेन्ट सीमा और लुई ब्लाक द्वारा समाजवादी प्रचार– जनसाधारण व श्रमिकों के बढ़ते हुए असंतोष को अनेक लेखकों का प्रोत्साहन मिला। इन लेखकों के विचारों को समाजवादी नाम से पुकारा जाने लगा। इन विचारों में सेन्ट सीमा ैं(पदज ैपउवद) पहला व्यक्ति था जिसने भविष्य के समाजवादी विचार को प्रभावित किया । सेन्ट सीमा के अनुसार उत्पादन के साधनों पर राज्य का अधि ाकार होना चाहिए ताकि सभी श्रमिकों को उचित फल मिल सकें। फुरिए (थ्वनतपमत) बड़े–बड़े उद्योग व केन्द्रीयकरण को अच्छा नहीं मानता था। उसने अपनी व्यवस्था में समाज के छोटे–छोटे समुदायों को महत्व दिया। वह आर्थिक प्रशासन में नैतिक नियंत्रण का पक्षपाती था, न कि राजकीय हस्तक्षेप का । लुई ब्लांक (स्नपे ठसंदब) (1811–1882) ने समाजवाद को नया रूप दिया। उसने इस बात पर बल दिया कि श्रमिकों की भलाई राज्य के प्रयत्नों से ही सम्भव है। राज्य का कर्तव्य है कि उद्योग–धन्धों को अपने हाथ में लेकर सभी लोगों के काम के उचित अवसर प्रदान करे । उसने राष्ट्रीय कार्यशालाओं की स्थापना पर

जोर दिया । लुई ब्लाक ने लुई फिलिप की सरकार की खुलकर आलोचना की। उसे ऐसी सरकार कहा जिसमें केवल धनी लोगों का हित सम्भव है। उसके विचारों का मजदूरों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इससे समाजवादी विचारधारा व दल के पनपने में सहायता मिली।

औद्योगिक विकास– लुई फिलिप ने उद्योग को प्रोत्साहन प्रदान किया। इंग्लैंड से मशीनों का आयात किया गया। फ्रांस में नये–नये कारखाने खोले गये। रेलवे के विकास का कार्य एक ब्रिटिश कम्पनी को दिया गया। सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र में मुक्त व्यापार की नीति अपनायी । किन्तु फ्रांस में ब्रिटेन की तुलना में औद्योगिक क्रांति का प्रभाव धीमा रहा ।

धार्मिक और शिक्षा सम्बन्धी नीति– आर्थिक क्षेत्र में सरकार ने तटस्थ रहने के प्रयत्न किये और नेपोलियनकालीन धार्मिक समझौते (कानकारडेट) का पालन किया। शिक्षा के क्षेत्र में भी सरकार की नीति उदार रही। प्रारम्भिक शिक्षा चर्च को सौंप दी गई। उच्च शिक्षण संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया।

लेकिन लुई फिलिप के सुधार केवल दिखावा था। 1847 में उसने कहा था, फ्रांस में कोई सुधारों की आवश्यकता नहीं है, सुधारों की मेरी इच्छा नहीं है। यदि प्रतिनिधि सुधारों के पक्ष में मत देंगे तो पीयर उनका विरोध करेंगे। यदि पीयर्स भी सुधारों का पक्ष लेंगे तो मैं अपनी वीटो द्वारा उसे निरर्थक बना दूँगा । इसलिए राज्य में मध्य वर्ग की छोड़कर अनेक वर्ग लुई फिलिप से असन्तुष्ट हो गए। यह तथ्य इस बात से पुष्टि हो जाता है कि 1832 ई० में लेजिटिमिस्ट लोगों ने विद्रोह किया। उन्हें डचेस डी बेरी ने उत्तेजित किया था। 1836 ई० में लुई नेपोलियन और 1840 ई० में बूलों (ठवनसवदहदम) ने राजगद्दी छीनने के लिए षड्यन्त्र रचे। गणतन्त्रवादियों ने भी 1831 और 1834 ई० में लियोन्स में विद्रोह भड़काया ।

है

लुई फिलिप की विदेश नीति–

वैदेशिक नीति में लुई फिलिप फ्रांसीसी जनता को वह यश व गौरव नहीं दे सका जिसकी वह भूखी थी। उसने इंग्लैंड से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये जिसके कारण फ्रांस की जनता वाअरलू की पराजय की बदला नहीं ले सकती थी। किन्तु इंग्लैंड से भी अच्छे सम्बन्ध कायम नहीं रह सके। लुई फिलिप ने अपने पुत्र का वैवाहिक सम्बन्ध स्पेन की रानी इसाबेला की छोटी बहन के साथ स्थिर कर दिया। इंग्लैंड इस वैवाहिक सम्बन्ध का विरोधी था ।

बेल्जियम में भी फ्रांस का अपमान हुआ। 1830 ई० जब बेल्जियम स्वतन्त्र हुआ तो वहाँ के लोगों ने लुई फिलिप के पुत्र को अपना राजा बनाना चाहा, लेकिन इंग्लैंड ने हस्तक्षेप करके 1831 ई० में लियोपाल्ड को बेल्जियम का राजा बना दिया।

उदारवादियों को सहायता न दे सकने के कारण इटली में भी लुई फिलिप ने

कमजोर विदेश नीति अपनाई ।

पूर्वी समस्या में भी लुई फिलिप का अपमान हुआ । लुई फिलिप मिश्र के गवर्नर मेहनत अली को सहायता देकर मिश्र व सीरिया को प्रभावित करना चाहता था, लेकिन इंग्लैंड ने लन्दन की संधि द्वारा फ्रांस के मनसूबों पर पानी फेर दिया । पोलैंड के लोगों के प्रति लुई फिलिप ने सहानुभूति तो प्रकट की लेकिन रूसी शासन से मुक्त होने के लिए उन्हें सैनिक सहायता न देकर उसने रूस को भी नाराज कर दिया। साथ ही पोलैंड के लोगों का

भी समर्थन नहीं प्राप्त कर सका।

1848 की क्रांति के कारण–

लुई फिलिप के शासन की कमजोर स्थिति का ला मार्टीन के इन शब्दों से पता लग जाता है, एक पत्थर का बुत भी इससे अच्छा शासन चला सकता था। चारों ओर के बढ़ते हुए विरोध ने 1848 ई० में क्रांति का रूप ले लिया उसके मूल में सक्रिय रहने वाली परिस्थितियाँ थीं–

1. विभिन्न राजनीतिक दलों का असन्तोष ।
2. लुई फिलिप का उच्च मध्य वर्ग के प्रभाव में आ जाना।
3. समाजवादी विचारधारा का बढ़ता हुआ प्रभाव।
4. असन्तोषजनक गृहनीति ।
5. कमजोर विदेश नीति ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्े

6.

गीजो का मन्त्रिमण्डल द्य

ेमसि.प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

193

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्े

ेमसि.प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

194

मताधिकार के बिस्तार को लेकर 1848 ई० में जो जन–आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसने लुई फिलिप की सरकार को उखाड़ फेंका। गीजो ने प्रतिनिधि सदन की रचना और मताधिकार के विस्तार का जमकर विरोध किया। थीयर्स और ओलिलों वारो (व्सकपसपवद इंततवज) ने जो इस समय के मुख्य नेता थे, संसदीय सुधारों के लिए प्रीतिभोज आयोजित करने का रास्ता अपनाया। 22 फरवरी 1848 ई० को पेरिस में समारोह आयोजित करने का निर्णय लिया गया, लेकिन सरकार ने ऐसे आयोजनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया । उत्तेजित भीड़ ने सरकारी आदेशों की परवाह नहीं की। सुधार जिन्दाबाद (स्वदह स्पअम तम. वितउे) तथा गीजों का नाश हो (क्वूद ूपजी ळनप्रवज) आदि नारे लगने लगे । अन्त में 24 फरवरी 1848 को राजा अपने नाती पेरिस के काउन्ट के पक्ष में

राजगद्दी छोड़कर इंग्लैंड चला गया।

क्रांति का प्रभाव–

1848 ई० के क्रांति का फ्रांस और यूरोप के अनेक देशों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अनेक देशों में निरंकुश शासन व पुरातन व्यवस्था के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन हुए। उनमें अनेक देशों की जनता को सफलता भी मिली।

फ्रांस– क्रांति के कारण फ्रांस में लुई फिलिप के शासन का अन्त हुआ । द्वितीय गणतंत्र की स्थापना हुई । नेपोलियन बोनापार्ट के भजीते लुई नेपोलियन को गणतन्त्र का अध्यक्ष बनाया गया। मजदूरों की स्थिति में सुधार हुआ। मताधि ाकार का भी विस्तार किया गया।

आस्ट्रिया – केवल आस्ट्रिया में नहीं, बल्कि समस्त आस्ट्रियन साम्राज्य में मेटरनिक की प्रतिक्रियावादी नीति के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हो गया। वियना उपद्रवों का केन्द्र बन गया । विद्यार्थियों तथा मजदूरों के अनेक विद्रोह हुएं मेटरनिख को वेश बदलकर आस्ट्रिया से इंग्लैंड भागना पड़ा। हेजन ने मेटरनिक के पतन की घटना का इस प्रकार वर्णन किया, मेटरिनक के पतन की घोषणा का आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ । बाटरलू के उपरान्त यूरोप के लोगों के लिए यह विस्मयकारी समाचार था। उसके पराभाव के साथ–साथ ऐसी व्यवस्था का पतन हो गया जिसे उस समय तक अमेद्य समझा जाता था और इसी रूप में लोगों ने इस चीज का स्वागत किया।

हंगरी – हंगरी के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व लुई लोसूथ (स्वनपे स्वेनजी) और फ्रांसिस डीक कर रहे थे। लोसूथ लोकतांत्रिक विचारों का समर्थक था । वर्ग रहित समाज की स्थापना का पोषक था । लोसूथ एक समाचार–पत्र के माध्यम से जनता तक विचार पहुँचाता था। उस समाचार–पत्र पर प्रतिबन्ध लगया दिया गया । लुई फिलिप के पतन का हंगरी के आंदोलन पर विशेष प्रभाव पड़ा। अन्त में 31 मार्च 1848 ई० को आस्ट्रियन सरकार को हंगरी की अनेक बातें माननी पड़ी। स्वतंत्र मन्त्रि–परिषद की माँग स्वीकार की गई। इस मन्त्रिपरिषद में केवल हंगरी के सदस्य ही सम्मिलित किये गए। प्रेस को स्वतंत्रता दी गई। राष्ट्रीय सुरक्षा सेना की स्थापना की गई । सामन्त – प्रथा समाप्त की गई। यह भी तय किया गया कि डायट (क्पमज) प्रतिवर्ष बुडापेस्ट से मिला करे ।

बोहमिया – हंगरी के उदाहरण का बोहेमिया पर भी प्रभाव पड़ा । बोहेमिया की बहुसंख्यक चौक जाति की स्वायत्त शासन की माँग को स्वीकार किया गया। लेकिन आन्दोलन के हिंसात्मक रूप धारण कर लेने के कारण ये उपलब्धियाँ स्थायी न हो सकी अर्थात आस्ट्रिया ने क्रांतिकारियों को सख्ती से कुचल दिया।

इटली – इटली के अनेक राज्यों में क्रांति के परिणामस्वरूप आंदोलन शुरू किये गये। लोम्बार्डी, वेनेशि, पर्मा, मोडेना और टसकनी की जनता ने निरंकुश शासकों को हिला दिया। सार्डीनिया – पीडमाण्ट के राजा चार्ल्स एलबर्ड ने 4 मार्च 1848 को संवैधानिक सरकार की घोषणा की। यह ठीक है कि इन राज्यों से आस्ट्रियन आधिपत्य का प्रश्न उस समय नहीं उठ सका, लेकिन क्रांति से इटालियन राष्ट्रवादी आन्दोलन को नयी दिशा व प्रोत्साहन अवश्य ही मिले।

जर्मनी – जर्मनी के अनेक राज्यों को क्रांति ने प्रभावित किया। उपद्रवों से घबराकर प्रतिक्रियावादी शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने संविधान के निर्माण की बात स्वीकार कर ली । जर्मनी के एकीकरण को बढ़ाने का आशवासन दिया। जर्मन राष्ट्रीय सभा का चुनाव हुआ। लेकिन 1849 ई० में राष्ट्रीय सभा भंग
कर दी गई । पुनः निरंकुश शासन स्थापित हो गया। जर्मन एकीकरण का महत्वपूर्ण प्रयास विफल तो हो गया, लेकिन इससे लोगों में एकीकरण की भावना अवश्य ही जाग्रत हो गई।

इंग्लैंड – इंग्लैंड में भी सुधारों की माँग पर बल मिला। मजदूरों ने सुधारों को लेकर संसद के सम्मुख चार्टर प्रस्तुत किया। उसके आधार पर वहाँ एक नये आन्दोलन का सूत्रपात हुआ । इस आन्दोलन को इंग्लैण्ड के इतिहास में चार्टिस्ट आंदोलन के नाम से पुकारा गया। उस समय चार्टर की माँगों को यद्यपि स्वीकार नहीं किया जा सकता, लेकिन बाद में इंग्लैण्ड की संसद में समय – समय पर मजदूरों के हितों को लेकर अनेक कानून पास किये गए ।
आयरलैंड के राष्ट्रीय आन्दोलन को भी फ्रांस की क्रांति से प्रेरणा मिली।

1830 और 1848 ई० की क्रांतियों की तुलना–

समानताएँ– दोनों क्रांतियों में अनेक समानताएँ देखी जा सकती हैं। हेज महोदय ने तो यहाँ तक कहा है कि दोनों क्रांतियों में कोई मौलिक अन्तर नहीं था । प्रमुख समानताएँ निम्नलिखित थीं–

1. दोनों क्रांतियों में पेरिसवासियों का विशेष योगदान रहा।
2. दोनों क्रान्तियों के प्रस्फुटन का मूल कारण जनता का राजनीतिक असन्तोष था । 1830 की क्रांति चार्ल्स दशम की निरंकुश और प्रतिक्रियावादी नीति के परिणाम स्वरूप हुई और 1848 ई० की क्रांति लुई फिलिप के उच्च मध्यवर्ग के प्रभाव के कारण हुई।
3. दोनों ही बार शासकों के क्रातिकारियों को दबाने के लिए राष्ट्रीय गार्ड को आदेश दिये, लेकिन
सुरक्षा सेना ने क्रांतिकारियों का साथ दिया।
4. दोनों क्रांतियों के व्यापक प्रभाव हुए फ्रांस के बाहर यूरोप के अनेक देशों में सुधारवादी आन्दोलनों
इन क्रान्तियों से प्रोत्साहन मिला।
5.
को
दोनों ही क्रान्तियों के फलस्वरूप शासकों को फ्रांस की गद्दी छोड़कर इंग्लैंड भागना पड़ा।
6. दोनों क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य फ्रांस में सुधारवादी योजनाएँ लागू कर उदार व प्रगतिशील
शासन लागू करना था ।

क्रांति की विषमताएँ– दोनों क्रांतियों में अनेक समानताएँ होते हुए कुछ भिन्नताएँ

भी थी–

1.

2.

3.

4.

1830 ई की क्रांति चार्ल्स दशम की निरंकुश प्रतिक्रियावादी और चर्च के समर्थक नीति के कारण हुई, जबकि 1848 की क्रांति लुई फिलिप की उच्च मध्ययवर्गीय नीति से उत्पन्न असंतोष के कारण हुई थी।

1830 ई० की क्रांति में मध्य वर्ग ने विशेष योगदान दिया अर्थात् इसी वर्ग ने चार्ल्स दशक का सबसे अधिक विरोध किया था, लेकिन 1848 ई० की क्रांति अनेक समाजवादी विचारकों ने भी फ्रांसीसी जनता को प्रोत्साहित किया।

1830 की क्रांति के पश्चात् फ्रांस में पुनः राजतंत्र की स्थापना हुई लेकिन 1848 ई० की क्रांति के पश्चात गणतन्त्र शासन की स्थापना की गई।

1830 की क्रांति की अपेक्षा 1848 की क्रांति ने मेटरिक की प्रतिक्रियावादी व्यवस्था को अधिक चोट पहुँचाई द्य

पश्चिमी विश्व

छव्जै

5.

1830 की क्रांति का तात्कालिक कारण जनता का चार्ल्स दशम द्वारा पारित चार अध्यादेशों का विरोध था और 1848 की क्रांति मताधिकार के विस्तार की माँग को लेकर आरम्भ हुई थी। भूमिका– लुई नेपोलियन अर्थात् नेपोलियन तृतीय का परिचय–

लुई नेपालियन का जन्म 1808 ई० में ईलरी के राज प्रसाद में हुआ था । वह हालैंड के राजा लुई बोनापार्ट का पुत्र था तथा फ्रांस के सम्राट नेपोलियन का भतीजा था। 1815 में वाटरलू में नेपोलियन की हार के बाद नेपालियन परिवार का पतन आरम्भ हो गया था नेपोलियन के कार्यों से बोनापार्ट परिवार का स्थान ऊँचा हो गया था। जनता की नेपालियन के प्रति विशेष श्रद्धा थी । अतः बोनापार्ट की इस प्रसिद्धि

बहुत

ैमसं–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

195

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसं–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

196

का लाभ लुई नेपोलियन को मिलना निश्चित था। 1832 में नेपोलियन के पुत्र की मृत्यु

के बाद लुई नेपोलियन ही परिवार का एक मात्र सदस्य शेष था। 1840 में लुई

फिलिप ने लुई नेपोलियन को कैद कर लिया किन्तु वह जनता के सहयोग से कारागार से भाग निकला तथा 1848 ई० के राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय उसे जनता का विशेष सहयोग मिला तथा वह निर्वाचित घोषित कर दिया गया। इसका एक मुख्य कारण यह भी था कि जनता केवल बोनापार्ट नाम पर ही अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार थी।

लुई नोपोलियन द्वितीय फ्रेंच गणराज्य के राष्ट्रपति के रूप में– 1848 ई० में कारागार से भाग जाने के उपरान्त लुई नेपोलियन इंग्लैंड पहुँचा तथा इस घटना के उपरान्त फ्रांस में क्रांति के स्पष्ट चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे तथा 1848 ई० में क्रांति का विस्फोट हो गया। क्रांति के हो जाने पर लुई नेपालियन क्रांति में भाग लेने हेतु फ्रांस आ गया। पेरिस आने पर उसका जनता द्वारा भव्य स्वागत किया गया तथा क्रांति की सफलता के उपरान्त उसे राष्ट्रीय असेम्बली के लिए चार स्थानों से निर्वाचित घोषित कर दिया गया। किन्तु उसने असेम्बली का सदस्य बनने से इनकार कर दिया । 26 सितम्बर 1848 ई० को उसे पाँच स्थानों से असेम्बली का सदस्य मनोनीत किया गया। इस समय तक फ्रांस की जनता में लुई नेपोलियन के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास पैदा हो चुका था। अतः परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए राष्ट्रीय सम्मेलन का सदस्य बनने के केवल तीन माह उपरान्त की फ्रांस के द्वितीय गणराज्य के राष्ट्रपति पद हेतु निर्वाचन में भाग लिया तथा बहुत बड़े बहुमत से निर्वाचन में सफलता प्राप्त की। राष्ट्रपति पद के शपथ समारोह में उसने कहा था– मैं प्रजातन्त्र राज्य की प्रति बफादार रहूँगा । मेरा कर्तव्य स्पष्ट है और मैं इसे बचन पालक व्यक्ति की तरह मानूँगा तथा निभाऊँगा ।

राष्ट्रपति बनने के उपरान्त लुई नेपोलियन के कार्य – राष्ट्रपति निर्वाचित होने के उपरान्त लुई नेपोलियन ने निम्नलिखित कार्यों को किया–

(अ) मध्यम वर्ग के लोगों को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से उसने व्यापार तथा व्यवसाय के संरक्षण को दृष्टि
में रखकर अनेक व्यवस्थाएँ की थी।

(ब) देश के विभिन्न राजनीतिक दलों का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसने ऐसे कानूनों का निर्माण करना चहा जिससे वह आगामी निर्वाचन में भी राष्ट्रपति निर्वाचित हो सके। किन्तु फ्रांस की राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के विरोध के कारण वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। इस समय राष्ट्र प्रतिनिधि सभा ने एक कानून द्वारा मताधिकार को अत्यन्त सीमित कर दिया तथा केवल उन्हीं व्यक्तियों को मताधिकार दिया गया जो केवल निश्चित धन – राशि टैक्स के रूप में देते थे। इस प्रकार के कानून से जनता में असंतोष व्याप्त हो गया किन्तु इस स्थिति का लाभ उठाते हुए लुई ने राष्ट्र – प्रतिनिधि सभा का भंग कर दिया तथा जनसाध ाारण का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसने वयस्क मताधिकार की घोषणा भी कर दी। अनेक रिपब्लिक नेताओं को कैद कर लिया गया तथा सैकड़ों विद्रोहियों को सैनिकों द्वारा कुचल दिया गया । अतः इस प्रकार 1851 ई० में अपन षडयन्त्र सफल बनाकर लुई नेपोलियन फ्रांस का विधाता बन गया। अब

जनता के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा तथा 21 वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक पुरूष को जो फ्रांस का निवासी था मताधिकार प्रदान कर दिया गया तथा जनता के सम्मुख उद्घोषणा कर दिया कि फ्रांस की जनता लुई नेपोलियन के शासन को स्थायी रखने की इच्छुक है और उसे अधिकार देती है कि 2 दिसम्बर 1851 को उद्घोषित विचारों के आधार पर एक नवीन शासन विधान का निर्माण करे।

(स) फ्रांस में रोमन कैथोलिक धर्म की अनुयायी जनता की अधिकता थी, अतः उसने कैथोलिक से सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी एक सेना को रोम भेजा तथा वहाँ के देशभक्त मेजिनी को पदच्युत करके पोप को वहाँ का शासक बना दिया । नेपोलियन के इस कार्य से उसे कैथोलिकों का पूर्ण समर्थन एवं सहयोग प्राप्त हो गया ।

(द) नवीन शासन विधान का निर्माण– लुई नेपोलियन ने जनवरी 1851 ई० को एक नवीन शासन विधान की नींव डाली। जिसके परिणाम स्वरूप लुई नेपोलियन को अपने मन्त्रिमण्डल में स्वयं शामिल
करने का अधिकार प्राप्त हो गया। अब उसको 2 वर्ष के स्थान पर 10 वर्ष के लिए राष्ट्रपति नियुक्त कर दिया गया । लुई नेपोलियन ने व्यवस्थापन्न विभाग में तीन निम्नलिखित सभाओं का निर्माण किया–

(प) व्यवस्थापिका सभा – व्यवस्थापितका सभा के सदस्यों की संख्या 250 निश्चित की गई तथा इनका निर्वाचन सम्पूर्ण बालिग पुरूष मताधिकार के द्वारा निश्चित किया गया। इस सभा का कार्य प्रस्तावित कानूनों पर बहस करना व उन पर अपना मत प्रकट करना होता था ।

(पप) सीनेट – कानून की वैधानिक की जाँच करने हेतु एक सीनेट बनाई गई जिसका मुख्य कार्य यह
था कि वह देखभाल रखे कि कोई कानून शासन विरोधी न हो।

(पपप) राज्य परिषद – यह सभा कानूनों का मसौदा तैयार करने हेतु बनाई गई थी। तथा इसके सदस्यों
की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती थी ।

कार्यों का मूल्यांकन– अतः उपरोक्त सभी कार्यों के आधार पर लुई नेपोलियन फ्रांस की राजनीति में काफी प्रसिद्धि तथा जनमत प्राप्त कर चुका था। अब फ्रांस में समाजवाद का अन्त तथा एक गणतंत्र की स्थापना हो चुकी थी। जिसमें राजतन्त्रवादियों का बहुमत था । अतः फ्रांस का एकमात्र भाग्य विधाता बन गया। नवीन संविधान द्वारा वास्ताविक राज्यशक्ति राष्ट्रपति के हाथों में निहित कर दी गई तथा तीनों सभाओं पर राष्ट्रपति को पूर्ण अधिकार हो गया। अब राष्ट्रपति को मनमाने ढंग से कार्य करने की स्वतंत्रता थी तथा उसका कार्य–काल 10 वर्षों के लिए सुरक्षित था। वास्तव में उसके कार्यों ने तथा जनता के सहयोग ने लुई नेपालियन के सम्राट बनने के मार्ग को खोल दिया था।

लुई नेपोलियन एक सम्राट के रूप में– लुई नेपोलियन की महत्वाकांक्षा नेपोलियन बोनापार्ट के वंशानुगत अधिकारों को स्थापित करने की थी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने राष्ट्रपति के पद को 10 वर्षों के लिए सुरक्षित कर दिया तथा मताधि

ाकार नियमों में संशोधन करके जनमत को अपनी ओर कर लिया। थोड़े दिनों बाद उसने जनमत को पुनः प्रभावित किया व स्वयं सम्राट नेपोलियन तृतीय की उपाधि दी कि जनता की वास्तविक इच्छा यही है कि मुझे सम्राट नियुक्त किया जाए। इस उद्‌घोषणा के पक्ष में सीनेट ने प्रस्ताव पारित कर दिया तथा उद्‌घोषित किया कि राष्ट्रपति लुई नेपालियन फ्रांसीसी जनता तथा देश को समृद्धि के रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए फ्रांसीसियों से सम्राट की उपाधि ग्रहण करके राज सिंहासन को सुशोभित करें। फ्रांस की जनता ने बहुमत से इस प्रस्ताव को मानते हुए लुई नेपोलियन को अपना सम्राट मान लिया तथा अब फ्रांस में पुनः राजसत्ता की स्थापना हो गई।

नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षाएँ— नेपोलियन तृतीय 1852 ई० से 1870 ई० तक फ्रांस की राजगद्दी का स्वामी बना रहा। इस समय फ्रांस में ऐसी परिस्थितियाँ चल रही थी कि देश का श्रमिक, व्यापारी तथा जनसाधारण वर्ग सभी राज – सत्ता की सफलता अपने पक्ष में समझता था। इस समय कैथोलिक जनता को भी नेपोलियन का विश्वास प्राप्त था । नेपोलियन चाहता था कि फ्रांस की राजगद्दी उसके अपने वंश में ही रहे। इसलिए उसने अपना विवाह स्पेन की एक राजकुमारी यूजेनी से किया । लुई नेपोलियन के यहाँ एक पुत्र जन्म का हुआ जिसे प्रिंस इम्पीरियल कहा जाता है। नेपोलियन अपनी मृत्यु के बाद अपने पुत्र को फ्रांस का सम्राट बनाना चाहता था। यद्यपि इस कार्य को अन्तिम रूप देने के लिए उसे जनता का जनमत प्राप्त था किन्तु निम्नलिखित समस्याओं के कारण वह अपने उद्देश्य में असफल

रहा—

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

1.

इस समय फ्रांस की विदेशी शत्रुओं का भय बना हुआ था तथा युद्ध की समस्या का सामना भी नेपोलियन को करना था।

2

फ्रांस में अब भी अन्य दल लोकतंत्र के पक्षपाती थे। जिनसे नेपोलियन का तीव्र विरोध था । अब नेपोलियन ने जनता को अपने पक्ष में लेने के उद्देश्य से तथा राजसत्ता को दृढ़ बनाने के उद्देश्य से कुछ सुधार किये तथा विरोधी दल के नेता औलिविवे को अपना प्रधानमंत्री नियुक्ति किया।

ैमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

197

पश्चिमी विश्व

3.

रिपब्लिक दल नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध कर रहा था ।

4.

1857 ई० के चुनाव में व्यवस्थापिका सभा में रिपब्लिकन दल के सदस्य निर्वाचित

हो गए जिनका विरोध नेपोलियन तृतीय के सामने एक समस्या थी ।

छव्ज्मे

5.

बूब व और लियन्स वंशों के पक्षापतियों ने नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध किया ।

ैमसक्-प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

198

१

6.

1862 ई० के चुनावों में रिपब्लिक दल के सदस्यों की संख्या 35 हो गई व व्यवस्थापिका सभा में नेपोलियन का एक विरोधी दल थीयर्स के नेतृत्व में खड़ा हो गया था । यह दल भी नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध कर रहा था । निष्कर्ष – यद्यपि अपनी उक्त विदेश नीति के आधार पर नेपोलियन फ्रांस की जानता का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम से मनाया और अपना नाम नेपोलियन तृतीय रखा। सीनेट में उसे फ्रांसीसियों के सम्राट की उपाधि दी। वह नेपोलियन की भाँति ही इतिहास में अपना नाम पैदा करना चाहता था। उसने फ्रांस में द्वितीय साम्राज्य की स्थापना की ऊपर से देखने से उसकी स्थिति सुदृढ़ मालूम पड़ती थी। लेकिन उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं थीं अनेक लोग उसके विरोधी थे। परंतु उनकी संख्या इतनी अधिक नहीं थी कि वे नेपोलियन का डटकर विरोध कर सकते। अतः जब वह सिंहासन पर बैठा तो उसके चारों ओर संकट थे। अतः उसने इन संकटों को दूर करने के लिए निम्नलिखित गृह तथा विदेश नीति अपनाई ।

1. गृहनीति– उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं थी इसलिए उसने अपने आपको जनता में प्रिय बनाना चाहा जिससे उसके विरोधी उसको किसी प्रकार हानि न पहुँचा सकें। उसकी गृहनीति का उद्देश्य स्वतन्त्रता के साथ सुव्यवस्था बनाना था। उसने अपने शासन काल में सुव्यवस्था बनाये रखने का प्रयत्न किया।

2. आर्थिक नीति – वह फ्रांस की जनता की बेकारी दूर करना चाहता था । बेकारी दूर करने के लिए उसने अनेक सड़कों का निर्माण करवाया, भवन बनवाये नहरों तथा रेलों का भी जाल बिछवाया । इसमें अधिक बेकार लोगों को काम मिला। कृषि की उन्नति के लिये उसने कृषकों को कृषि सम्बन्धी शिक्षा दिलवाई। उनके ज्ञान वर्द्धन के लिए प्रदर्शनियाँ लगवाई। उन्होंने अच्छी खाद वितरित की । दलदली भूमि को सूखाकर कृषि के योग्य बनवाया। किसानों को सहकारी समितियों द्वारा सहायता दिलवाई। बैंकों की अनेक शाखाएं खुलवाई। इस प्रकार व्यापार को भी सहायता मिली। फ्रांस के व्यापारियों को विदेशों में माल भेजना सुरक्षित हो गया। इससे विदेशी निर्यात बहुत बड़ा । शासकीय खजाने में भी आमदनी बढ़ी और थोड़े ही दिन में फ्रांस की काया सी पलट गई।

3. श्रमनीति – उद्योगपति श्रमजीवियों के साथ बुरा व्यवहार करते थे। वे उनका शोषण भी करते थे और श्रमजीवियों के साथ पहले से खराब थी कि उन्हें दो

टाइम का खाना भी नहीं मिल पाता था । नेपोलियन तृतीय ने फैक्टरी सम्बन्ध ी अनेक सुधार किये। उसने मजदूरों को हड़ताल करने का अधिकार दिया तथा उन्हें अपना संघ बनाने का अधिकार दिया। इस प्रकार के सुधारों से मजदूर उसके कट्टर समर्थक बन गए।

4.

स्वतन्त्रता विरोधी नीति– नेपोलियन तृतीय फ्रांस की जनता की स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं था । इसलिए उसने भाषण की स्वतन्त्रता पर रोक लगाई। समाचार पत्रों पर भी उसने प्रतिबन्ध लगा दिया। कोई भी ऐसा समाचार नहीं छापा जा सकता था। जो शासन के विरुद्ध हो । यदि कोई सम्पादक इस नियम की अवहेलना करता था तो उसको इतना भारी आर्थिक दण्ड दिया जाता था कि उसका प्रकाशन सम्बन्धी कार्य भी ठप्प हो जाये । उसने देश में गुप्तचरों का जाल बिछाया। ये गुप्तचर व्यक्तियों की कार्यवाहियों पर निगरानी रखते थे। कालेज के अध्यापकों को भी राज्य के प्रति वफादार होने की शपथ लेनी पड़ती थी और विद्यार्थी भी अपनी यूनियन नहीं बना सकते थे।

5. विरोधियों का दमन करने का प्रयास– उसने ऐसा कानून पास करवाया जिसके अनुसार विरोधी लोग कम से कम चुनाव में भाग ले सके। राजनीतिक अपराध में बन्दी व्यक्ति न तो मत दे सकता था और न ही चुनाव में खड़ा हो सकता था। उसने मत देने का अधिकार सब व्यक्तियों को दे दिया
और चुनाव क्षेत्रों की सूची इस प्रकार बनवाई कि प्रत्येक नगर के साथ एक–दो गॉव अवश्य रहे । नेपोलियन के समर्थक गांव में अधिक थे। इसलिए विरोधियों को जो शहर में रहते थे उन्हें चुनाव में अधिकतर सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने व्यवस्थापिका सभा पर भी अकुंश रखने के लिए सीनेट का निर्माण किया। सीनेट के सदस्यों का नामांकन नेपोलियन तृतीय के द्वारा होता था। व्यवस्थापिका सभा कानून भी नहीं बना सकती थी । इस प्रकार उसने विरोधियो का अन्त करने का प्रयास किया। शासन के विरुद्ध भाषण करने वाले व्यक्तियों को उसने जेल में डाल किया। इस प्रकार उसने अपने विरोधियों का दमन किया।

6. विदेश नीति – नेपोलियन तृतीय की विदेश नीति को दो भागों में बाँट सकते हैं

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

1.

1852 से 1860

2.

1860 से 1870 तक

प्रथम भाग में उसे विदेशी नीति में बहुत अधिक सफलता मिली और फ्रांस का नाम बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ। लेकिन द्वितीय भाग में उसे कोई सफलता नहीं मिली और उसका पतन हो गया ।

7. विदेश नीति का प्रथम चरण–

रोमन सम्बन्धी नीति– वह अपने चाचा की भाँति ही विदेशों में ख्याति प्राप्त करना चाहता था और उसने राज्य सिंहासन पर बैठते ही यह कार्य किया। उसने रोम में गणतन्त्र के विरुद्ध सेनाएं भेजी और पोप का साथ दिया। इस प्रकार उसने पोप को तथा कैथोलिक जनता को अपना समर्थक बना दिया।

8. क्रीमियाँ युद्ध सम्बन्धी नीति– उसने क्रीमियाँ युद्ध के विरुद्ध टर्की का साथ दिया। क्योंकि वह पूर्व की ओर रूस का प्रभाव कम करना चाहता था। इस कार्य में उसे सफलता मिली और टर्की ने रूस को बुरी तरह हरा दिया। फ्रांस को इससे कोई आर्थिक लाभ न हुआ बल्कि फ्रांस के 75 हजार सैनिक और अरबों रूपया बरबाद हुआ। परंतु नेपोलियन की और फ्रांस की कीर्ति विदेशों में बहुत अधिक फैल गई। दोनों देशों ने संधि के लिए नेपोलियन तृतीय को शांति परिषद में सभापति के पद आसीन किया। इस समय वह अपने गौरव की चरम सीमा पर था । पेरिस यूरोप की राजनीति का प्रधान केन्द्र बन गया था।

9. रूमानियाँ सम्बन्धी नीति– नेपोलियन ने रूमानियाँ के देशभक्त लोगों का समर्थन किया और गणतन्त्र बनाने में सहायता देने के लिये फ्रांस ने एक सेना भेज दी। इससे टर्की और आस्ट्रिया के सम्राट को भी नेपोलियन की बात माननी पड़ी और वहाँ एक नवीन राष्ट्र का निर्माण हुआ ।

10. इटली सम्बन्धी नीति– उसने इटली के कावूर को सहायता देने का वचन दिया। कावूर ने उसकी सहायता से आस्ट्रिया को दो बार युद्धों में हराया और आस्ट्रिया को इटली खाली करना पड़ा। परंतु इसी समय उसने यह सोचा कि पीडामेंट का राज्य इतना सुदृढ़ हो जाएगा कि कभी भी फ्रांस को हरा सकता है। अतः उसने बीच युद्ध में ही फ्रांस की सेना को वापिस बुला लिया । अतः इटली के उदारवादी नेता उससे नाराज हो गए और इटली को विवश होकर आस्ट्रिया के साथ ज्यूरिक की संधि करनी पड़ी। यहाँ से उसके पतन का श्रीगणेश होता है। हेजन ने ठीक ही लिखा – नेपोलियन की गम्भीर कठिनाइयों का श्रीगणेश इटली युद्ध से ही होता है। यदि वह 1860 में स्वर्ग सिधार गया होता तो वह इतिहास में एक सफल शासकों में गिना जाता ।

11.

विदेश नीति का द्वितीय चरण–द्वितीय काल की विदेश नीति में उसे अनेक असफलताओं का सामना करना पड़ा। इससे फ्रांस की प्रतिष्ठा और गौरव को महान आघात पहुँचा ।

12. उपनिवेश सम्बन्धी नीति– फ्रांस अपने उपनिवेशों की संख्या बढ़ाना चाहता था और अपनी नीति को सफल बनाने के लिए उसने कूटनीति का सहारा लिया। जो उपनिवेश उससे अलग हो गये थे उन्हें सैनिक सहायता भी दी जिससे कि वह उपनिवेश उसकी तरफ मिल जाये । उसने अफ्रीका के अनेक उपनिवेशों पर सेना की सहायता से अधिकार कर लिया। 1860 ई० में चीनी तट पर अपना

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

199

व्यापारिक एकाधिकार जमाया। मैक्सिको सम्बन्धी नीति में भी उसको असफलता का मुँह देखना पड़ा और इससे उसका पतन हो गया।

13. पोलैंड सम्बन्धी नीति— उसने पोलैंड के देशभक्तों को रूस के प्रभाव से मुक्त होने के लिये उत्साहित किया। वहाँ के देशभक्तों ने रूस के जार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जार ने सेना भेजकर देशभक्तों का दमन किया । सहस्त्रों व्यक्ति गोली का शिकार बना दिए गए। नेपोलियन तृतीय ने उसकी कोई सहायता नहीं की इससे देशभक्त पोल निवासी और फ्रांस में राष्ट्रवादी उसके विरोधी हो गए जो उसके पतन में सहायक हुए।

14. जर्मनी सम्बन्धी नीति— जर्मनी की औपनिवेशिक नीति भी असफल रही। वह जर्मनी के राष्ट्रीयकरण का समर्थक था। जब प्रशा और आस्ट्रिया में होलस्टीन प्रांत के प्रश्न पर युद्ध चला तो विस्मार्क ने नैपोलियन को इस बात के लिये राजी कर लिया कि फ्रांस तटस्थ रहे और इसके बदले में राइन तट के प्रदेश देने का वचन दिया। उसने सोचा था कि दोनों राष्ट्रों की युद्ध में शक्ति क्षीण हो जाएगी और इस प्रकार फ्रांस यूरोप में शक्ति शाली बन जाएगा। लेकिन यह उसकी कल्पना मात्र थी । अतः प्रथा ने आस्ट्रिया को बुरी तरह हराया ओर आस्ट्रिया को जर्मनी खाली करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार फ्रांस की सीमा पर एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण हो गया। जो हमेशा फ्रांस के लिए सिर दर्द हो सकता था। इससे फ्रांस के राष्ट्रवादी नेपोलियन के विरोधी हो गए राष्ट्रीय एसेम्बली में बीयर्स ने गर्जना करते हुए कहा यह आस्ट्रिया की नहीं फ्रांस की पराजय थी नेपोलियन को बिना तैयारी किये ही प्रशा के साथ युद्ध करना पड़ा जिससे नेपोलियन की पराजय हुई और उसका पतन हो गया।

15. वैदेशिक नीति की असफलता के कारण— नेपोलियन तृतीय की औपनिवेशिक नीति कल्पना पर आधारित थी। उसने अपनी नीति का निर्माण विभिन्न परिस्थितियों के बीच किया था । दृढ़ता के साथ उसने किसी नीति का पालन नहीं किया। उसकी विदेशी नीति अस्थिर और डावाँडोल थी । उसकी क्रांतिकारी योजनाएं तूफान की भाँति बनती थीं और अस्थिर मनोवृति के कारण वे आसानी से मिट जाती थी । इसलिए नेपोलियन तृतीय कर पतन हो गया ।

16. इतिहास में स्थान— फ्रांस के इतिहास में नेपोलियन तृतीय विशेष स्थान है। नेपोलियन तृतीय यूरोप के लिए एक समस्या था । यूरोप वाले यह समझने में असमर्थ थे। वह महत्वाकांक्षी और अस्थिर बुद्धि का व्यक्ति था ।

इकाई.3

पूर्वी समस्या

भूमिका — पूर्वी समस्या की व्याख्या विभिन्न यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने भिन्न प्रकार से की है। यह समस्या भिन्न—भिन्न रूप धारण करती रही है कभी बलकान प्रदेश की जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये और कभी

यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थी के कारण इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। तुर्क साम्राज्य के पतन के बाद किसको तुर्क राज्य पर शासन करने को मान्य किया जाए। यह समस्या यूरोपीय राष्ट्रों के बीच बनी रहीं। रूसी राजनीतिज्ञ इसे गठिया रोग के समान मानते हैं जो कभी पैरों को जकड़ लेता है, तो कभी हाथों को आसक्त कर देता है। हेजन के अनुसार पूर्वी समस्या तुर्की के भाग्य की समस्या थी, प्रिंस विस्मार्क इस समस्या को तुच्छ एवं सारहीन मानता था। वह कहा करता था, सम्पूर्ण पूर्वी समस्या ओमेरनियां की एक हथगोलाधारी सैनिक के हड्डियों के मूल्य के बराबर भी नहीं है। लार्ड मार्ले के अनुसार यह समस्या विभिन्न जाति एवं धर्म की न समझ में आने वाली समस्या थी ।

इस समस्या की उत्पत्ति के कारण—

1. बलकान प्रायद्वदीप की जनता में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार होना था। बलकान प्रदेश में स्लिाव जाति के लोग रहते थे। जाति भाषा और धर्म के आध ाार पर वे रूसियों से मिलते—जुलते थे। इसलिए रूसी जार उनके साथ सहानुभूति प्रकट करता था ।

2. तुर्की साम्राज्य अत्यधिक विस्तृत था। तुर्क में कोई ऐसा योग्य शासन नहीं हुआ। इसलिए तुर्की साम्राज्य छिन्न—भिन्न होने लगा। विभिन्न राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिए वहाँ कौवे की तरह झपट्टा मारने लगे।

3.

विभिन्न राष्ट्र यूरोप में संतुलन रखते थे। इसलिए रूस को तुर्की साम्राज्य में प्रवेश करने नहीं देना चाहते थे।

4. तुर्क साम्राज्य जो विभिन्न जातियों का अजायबघर था। उसके निवासियों में धार्मिक मतभेद बहुत अधिक था। शासन प्रणाली भी विकृत हो चुकी थी ओर तुर्की साम्राज्य का पतन भी सुनिश्चित हो चुका था । इसलिए विभिन्न देश के राजनीतिक तुर्क साम्राज्य में स्वार्थ और अरुचियाँ रखते थे। इसके कारण जो समस्या आई उन्हें ही पूर्वी समस्या के नाम से पुकारा जाता है।

सर्विया का विद्रोह— सर्विया के देश—भक्तों ने 1848 में रूस का समर्थन पाकर विद्रोह कर दिया और तुर्की के गवर्नर मुस्तफा कमाल पासा का वध कर दिया और तुर्की सेना को मार भगाया। जार्ज मेटरनिक ने राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की और शासन अपने हाथ में सम्भाल लिया तुर्क सुल्तान रूस के डर की वजह से कुछ न कर सका। 1812 में जब नेपोलियन के साथ युद्ध में लगा था तब उसने एक विशाल सेना भेजकर सर्विया पर अधिकार कर लिया । नेपोलियन के पतन के पश्चात् रूस ने फिर से विद्रोह करा दिया और रूस के दबाव के कारण टर्की को स्वतन्त्रता प्रदान की। इस प्रकार टर्की के राजा का सर्विया पर नाममात्र का संरक्षण रहा। इस प्रकार यह पहला राज्य था। जो टर्की साम्राज्य से स्वतन्त्र हो गया ।

ईरानियों का स्वतन्त्रता संग्राम— सर्विया में स्वतन्त्र देखकर अलैक्जैन्डर ने

हिप्सिलान्टी के नेतृत्व में तुर्की शासन के विरुद्ध विद्रोह के निम्नलिखित कारण थे।

1.
2.
3.
4.
5.

फ्रांस की राज्य क्रांति की राष्ट्रीय भावनाये ईरान में भी फैल गई गई थी और वे शासन करने लगे।

यहाँ के अधिकांश व्यक्ति यूनानी चर्च के समर्थक थे । तुर्की लोगों को गद्दार तथा काफिर समझते थे। वे सभ्य तथा सुसंस्कृत भी थे तथा शासन के कार्यों में हाथ बँटाते थे। इसलिए इन लोगों में स्वतन्त्रता की भावना का विकास हुआ वे टर्की साम्राज्य के विरुद्ध यूनानी साम्राज्य का खोया हुआ गौरव प्राप्त करना चाहते थे ।

तुर्क यूनानियों पर अत्याचार करते थे । इसलिए विद्रोह करना स्वाभाविक था । प्लेटो, अरस्तु और सुकरात जैसे दार्शनिकों एवं महान् देश भक्तों ने लोगों के ह्रदय में राष्ट्रीयता की भावनाओं को
भरा।

रूस का जार ईसाई धर्म को मानने वाला था वह यूनानियों को स्वतन्त्र होने के लिए प्रेरित करता
रहता था।

अलीफासा ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। तुर्की का सुल्तान जब इस विद्रोह को दबाने में लगा था। उसी समय यूनानियों ने विद्रोह कर दिया ।

यूनान में विद्रोह – यूनान के विद्रोह को दबाने के लिए रूसी शासक ने एक सेना भेजी । अन्य देशों ने यूनान की सहायता नहीं की और यूनान को अकेले ही तुर्क साम्राज्य का सामना करना पड़ा परंतु इसे उन्हें सफलता नहीं मिली। विद्रोह बराबर होते रहे और अन्त में सुल्तान को विवश होकर मिस्र से सहायता माँगनी पड़ी। मिस्र के शासक ने अपने पुत्र इब्राहित की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। उसने क्रीट पर अधिकार कर लिया और अनेक यूनानियों का वध कर डाला। इस भयंकर अत्याचार से यूरोप की जनता ने यूनानियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की और अपने शासकों पर यह दबाव डाला कि वे यूनानी जनता की सहायता करें।

विदेशी हस्तक्षेप– जनता के हस्तक्षेप से विवश होकर रूस, फ्रांस और इंग्लैंड की सरकारों ने तुर्क सुल्तान के अत्याचारों के लिए विरोध किया। उक्त देशों ने लिखा कि यूनान में मचे हुए भीषण रक्तपात को रोका जाए और यूनानियों को स्वतन्त्र कर दिया जाए। तुर्क सुल्तान ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। अतः
पश्चिमी विश्व

इंग्लैंड फ्रांस और रूस टर्की सुल्तान ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। अतः इंग्लैंड, फ्रांस और रूस टर्की के प्रति युद्ध की घोषणा कर दी और अपने—अपने युद्धपोतो यूनानियों की सहायता के लिए भेज दिये। नेवारिन के युद्ध में विदेशी युद्धपोतो ने टर्की बेड़े को नष्ट कर दिया और सुल्तान की शक्ति को नष्ट कर दिया। इंग्लैंड में मन्त्रि मण्डल के परिवर्तन किये जाने के कारण वहाँ के प्रधानमंत्री ने जो केलिंग की नीति का विरोधी था, जंगीला बेड़ा वापिस बुला लिया। फ्रांस ने भी युद्ध से हाथ खींच लिया। रूस का जार अकेला युद्ध करता रहा और वह विजय प्राप्त करता हुआ कुस्तुनतुनिया जो कि टर्की की राजधानी थी, वहाँ पहुँच गया। तुर्की के सुल्तान को विवश होकर संधि करनी पड़ी।

एड्रियानोपल की संधि— एड्रियानोपाल की संधि ने टर्की की दुर्बलता संसार के सामने प्रकट कर दी। इस संधि की शर्तें निम्नलिखित थीं—

1. टर्की को यूनान देश को स्वतन्त्र मानना पड़ा तथा वेलेशिया और बोल्डिया में स्वयत्त शासन की
स्थापना करने के लिए विवश होना पड़ा।
2.
3.
4.

रूस को टर्की के कुछ भागों पर अधिकार हो गया, जिससे उसे व्यापारिक सुविध‍ाएं भी मिली क्योंकि रूस भूमध्य सागर तक आसानी से पहुँच सकता था । रूमानिया के लोगों को एक अलग राज्य मान लिया गया। इस राज्य को टर्की को एक निश्चित धन राशि प्रतिवर्ष देनी पड़ती थी ।

इस संधि ने रूस के गौरव में चार चाँद लगा दिये और यह संधि मेटरनिख की पराजय भी थी। क्योंकि वियेना की कांग्रेस के बाद यह पहली राष्ट्रीय विजय थी । इस संधि के बाद यूनान को पूर्ण स्वतन्त्र देश मान लिया गया। परंतु देश में दलबन्दी होने के कारण वह गणतन्त्र की स्थापना न हो सकी और वहाँ राजतन्त्रात्मक सत्ता की स्थापना की स्थापना हुई। इस संधि के पश्चात् भी ईरान और टर्की से झगड़ा चलता रहा और अन्त में 1812 में यूनान पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया। अब उसका टर्की से कोई सम्बन्ध न रहा ।

पूर्वी समस्या का मिस्र से कमाल पासा ने पूर्वी समस्या में एक नवीन अध्याय की सृष्टि की — यूनानियों के विद्रोह में उसने सुल्तान की भारी सहायता की जिसके फलस्वरूप तुर्की के सुल्तान ने उसे क्रीट का गवर्नर बना दिया। इससे उसे संतोष न हुआ और उसने अपने पुत्र इब्राहिम को तुर्क साम्राज्य पर आक्रमण

करने के लिए भेजा। उसने एकेश्वर और दमिशक पर अधिकार कर लिया और तुर्की की राजधानी कुसतुनतुनिया पर आक्रमण कर दिया, इससे तुर्की का सुल्तान घबरा गया और उसने यूरोपीय राष्ट्रों से सहायता की प्रार्थना की। केवल रूस ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। इससे इंग्लैंड, फ्रांस और आस्ट्रिया चौंक उठे और उन्होंने सुल्तान अहम अली को सहायता का आश्वासन दे दिया। यद्यपि रूस की सेना को इब्राहिम की सेना से युद्ध नहीं करना पड़ा परंतु फिर भी जार ने अपनी सहायता के उपलब्ध में अपने पानी के जहाज वासफोरस जलडमरू मध्य तक लाने की स्वीकृति माँगी। दोनों मुसलमानों में संधि हो गई और तुर्क साम्राज्य पर रूसी प्रभावों के अंशों में वृद्धि हुई ।

लंदन की संधि – सुल्तान ने अपनी सेनाओं को जर्मनी युद्ध कला से प्रशिक्षित करवाया और इब्राहिम पर आक्रमण किया। इब्राहिम ने उसकी सेनाओं को कुचल दिया। महमूद अली के इस उत्कर्ष से विदेशी राष्ट्र घबरा गये। फ्रांस उसकी सहायता कर रहा था क्योंकि वह भूमध्य सागर में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना चाहता था । इंग्लैंड के प्रधानमंत्री पार्ल्सटन ने रूस, आस्ट्रिया और प्रशा को मिलाकर लन्दन में एक समझौता किया जिसके अनुसार मिस्र पर पासा का मौरूसी अधिकार मान लिया गया। सीरिया व क्रीट तुर्क सुल्तान को वापिस दिला दिये गये तथा वासफोस के जलडमरूमध्य को विदेशी जहाजों के लिए बन्द कर दिया गया। इस प्रकार इंग्लैंड ने अपनी कूटनीतिक चाल से रूस और फ्रांस की महत्वाकांक्षा पर तुषारापात किया । यही इंग्लैंड की महान विजय थी।

`मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

202

क्रीमिया युद्ध

के कारण–

(क) टर्की पर रूस की नजर क्रीमिया के युद्ध से पूर्वी समस्या का तीसरा अध्याय आरम्भ होता है। रूस का जार निकोलस टर्की का पतन सुनिश्चित समझता था और उसके प्रदेशों पर अपना अधिकार
जमाना चाहता था ।

(ख) रूस और फ्रांस के शासकों में मतभेद – रूस में जार का यह विचार था कि नेपोलियन तृतीय
को फ्रांस के सिंहासन पर बैठने का पैतृक अधिकार नहीं है। उधर नेपोलियन तृतीय अपने चाचा नेपोलियन बोनापार्ट की पराजय का मुख्य कारण रूस को मानता था। जेरूसलम पर दोनों अपना–अपना अधिकार मानते थे। इसलिए दोनों में ईर्ष्या और मतभेद थे।

(ग) रूस के राजदूत की असफलता– रूस ने अपने
अपने राजदूत के हाथों टर्की को एक पत्र भेजा जिसमें यूनानी ईसाइयों की सुरक्षा का अधिकार रूस ने माँगा तथा जेरूसलम के पवित्र स्थानों के प्रबन्ध करने का अधिकार यूनानी चर्च को देने की माँग की। इंग्लैण्ड के राजदूत की सलाह के आधार पर टर्की ने रूस की माँगें अस्वीकार कर दी। इंग्लैंड ने फ्रांस

के पक्ष का समर्थन किया। फ्रांस तथा रूस टर्की के प्रश्न पर इंग्लैंड की सहायता चाहते थे। इंग्लैंड दोनों देशों के प्रभाव को नहीं बढ़ने देना चाहता था और वह इसे फ्रांस से अधिक खतरनाक समझता था। अतः उसने टर्की की समस्या में फ्रांस का पक्ष लिया इससे रूस और इंग्लैंड में शत्रुता बन गई ओर क्रीमिया का युद्ध अनिवार्य हो गया।

(घ) वियना नोट – इसके अनुसार टर्की में रहने वाले यूनानी ईसाइयों की सुरक्षा का भार रूस को दे दिया गया और तुर्की को स्वतंत्र मान लिया गया। जब यह प्रस्ताव तुर्की के पास भेजा तो उसने इस अस्वीकार कर दिया। इससे क्रीमिया युद्ध आवश्यक हो गया।

युद्ध का प्रारम्भ– जार ने डेन्यूव नदी के किनारे स्थित माल्डेशिया और बैलेशिया पर अधिकार जमा लिया। इसका इंग्लैंड और फ्रांस में विरोध किया गया। 1853 में फ्रांस इंग्लैंड का साथ पाकर तुर्क के सुल्तान ने युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध क्रीमिया युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

युद्ध की घोषणा और अन्त – तुर्की सुल्तान की सहायता के लिए फ्रांस और इंग्लैंड के युद्धपोत आ गए पीडामेन्ट के राजा ने 15 हजार सैनिकों से टर्की की सहायता की। रूस की कई स्थानों पर पराजय हुई द्य मित्र देशों की सेनाएं ऋतु की अनुकूलता न होने के कारण मर गई । इसी बीच जार निकोलस की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र ने मित्र देशों से पेरिस की संधि कर ली।

पेरिस की संधि की शर्तें–

1.

इस संधि के अनुसार यूरोप के सभी राष्ट्रों ने तुर्क साम्राज्य की मान्यता प्रदान की और उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया।

2. माल्डेशिया और बैलेशिया को स्वतंत्रता प्रदान की गई।

3.

काला सागर सभी देशों के युद्धपोतों के लिए बन्द कर लिया गया।

4. डैन्यूब नदी सभी के व्यापार के लिए खोल दी गई ।

5.

रूस की काले सागर में शास्त्रागर बनाने से रोका गया। इससे रूस की प्रगति पर रुक गई। युद्ध के परिणाम – यह युद्ध 2 वर्ष तक चलता रहा और बहुत अधि ाक धन–जन की हानि हुई। रूस का बलकान देशों पर प्रभाव कम हो गया । परंतु मित्र राष्ट्र टर्की के साम्राज्य को छिन्न–भिन्न होने से न रोक सके। रूस की भविष्य में प्रगति भी न रोकी जा सकी। इस युद्ध से इटली के एकीकरण में सहायता मिली। इस युद्ध में फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय गौरव की प्राप्ति हुई। उसने नेपोलियन की पराजय का बदला चुका दिया। अलेक्जेण्डर, द्वितीय को भी अपने राज्य सुधार करने पड़े। एक इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है, उसके काल में विश्व में लड़े जाने वाले भीषण युद्ध में क्रीमिया युद्ध सबसे अधिक निरर्थक था ।

छव्ज्ै
स्व–प्रगति की जाँच करें
5. 1930 के फ्रांसीसी क्रान्ति के परिणाम पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
6. फ्रांसीसी क्रान्ति का जर्मनी
पर क्या प्रभाव पड़ा ?
7. प्यूई ने पोलियन अर्थात नेपोलियन तृतीय का परिचय दें।
ॅमसस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
203
पश्चिमी विश्व
छव्ज्ै
ॅमसस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
204
यूरोप का विस्तार

औपनिवेशिक उदासीनता का अंत–

औपनिवेशिक इतिहास में 1815 में 1880 तक का काल, जैसा हम देख चुके है, शिथिलता का काल था परंतु इस युग के अन्त की ओर कई कारणों से औपनिवेशिक उदासीनता का अन्त हो गया। उपनिवेशों की प्रति यूरोपीय सत्ताओं का रूख बदला और साम्राज्यवाद ने नया रूप धारण कर लिया। 1880 तक नये साम्राज्यवाद ने काफी जो पकड़ लिया और अगले 25 वर्षों में संसार के अनाधिकृत अथवा पिछड़े हुए प्रदेशों पर अधिकार करने के लिए यूरोप की महान् सत्ताओं में भयंकर स्पर्धा रही जिसके फलस्वरूप उन्होंने समस्त अफ्रीका को आपस में बाँट लिया और एशिया के कई प्रदेशों तथा प्रशान्त महासागर के अनेक द्वीपों पर अधिकार कर लिया। इस औपनिवेशिक दौड़ में मुख्य स्पर्धी तो इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी थे परंतु अन्य छोटे देश भी उपनिवेशों के लोभ का संवरण न कर सके और उन्होंने भी कुछ प्रदेश हस्तगत कर लिए।

साम्राज्यवाद की नवजागृति के कारण–

आर्थिक कारण – औपनिवेशिक लूट के कारणों में से एक कारण आर्थिक था। 1875 के बाद ठीक ऐसे समय जब फ्रांस, जर्मनी, इटली तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का औद्योगिकरण हो रहा था और उन देशों में उत्पादन बढ़ रहा था तथा औद्योगिक प्रतिस्पधियों के उत्पन्न हो जाने से इंग्लैण्ड को अपना माल बेचने की चिन्ता हो रही थी, यूरोपीय देशों ने संरक्षण नीति को अपनाकार अपने यहाँ बाहर से आने वाले माल पर भारी कर लगाना आरम्भ किया, जिससे विभिन्न देशों के बाजार अन्य देशों के माल के लिए बन्द हो गए और औद्योगिक देशों को अपना माल बेचने के लिए नये बाजार ढूँढ़ने की आवश्यकता दिखाई देने लगी । यह आवश्यकता अधीनस्थ उपनिवेशों द्वारा अच्छी प्रकार पूर्ण हो सकती थी क्योंकि उनमें प्रतिस्पर्धी देशों द्वारा किसी प्रकार की रुकावट के लगाये जाने का कोई डर नहीं था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण जिसमें यूरोप में सर्वत्र संरक्षण की नीति जारी थी,

औपनिवेशिक विस्तार का काल था। उधर 1873 में संसार भर में कीमतें गिरने लगी थी। जिससे नये उद्योगपतियों के मुनाफे कम हो रहे थे और वे अधिक लाभ की दृष्टि से अपनी पूँजी अन्यत्र लगाना चाहते थे। 1870 के पहले ब्याज की ऊँची दर पर बहुत सी पूँजी स्पेनिश तथा अमेरिका के अन्य पिछड़े हुए देशों को ऋण के रूप में दी जाती थी परन्तु ये ऋण प्रायः मारे जाते थे। यह देखकर वे यह अच्छा समझते थे कि पूँजी अपने देश के उपनिवेशों में रेलों, खानों आदि में लगायी जाए जिससे उन्हें मुनाफा भी पर्याप्त मिले और पूँजी मारी भी न जा सके। सामुद्रिक यातायात के साधनों की उन्नति के साथ दूरस्थ उपनिवेशों का भी सस्ते भोज्य पदार्थ, उष्ण कटिबन्धीय उत्पादों तथा कारखानों के लिए आवश्यक माल के प्राप्ति स्थानों की हैसियत से महत्व बढ़ा । भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों तथा तार और समुद्री तार के आविष्कार के फलस्वरूप दूर–दूर के प्रदेशों पर अधिकार करना और उन पर शासन करना भी सरल हो गया था।

–

सामाजिक कारण – इंग्लैण्ड तथा कुछ अंश तक जर्मनी में औद्योगिक व्यवस्था पूर्णता को प्राप्त हो जाने के कारण अच्छे परिवारों के तथा सुशिक्षित महत्वाकांक्षी युवकों के लिए अपने ही देशों में शीघ्र उन्नति करने के अवसर कम होते जा रहे थे। उन्हें उपनिवेशों की सेनाओं से प्रशासन तथा व्यवसायों में उन्नति करने तथा सफलता प्राप्त करने के अवसर प्राप्त हो सकते थे।

राजनीतिक तथा सैनिक कारण– इंग्लैंड के सामने तो किसी नये स्थान पर अधिकार करने हेतु जहाजों के लिए कोयला लेने के साधनों या बन्दरगाहों या नाविक अड्डों की आवश्यकता का बहाना सदैव उपस्थित रहता था। जर्मनी ने भी व्यापारिक तथा सामरिक बेड़े के निर्माण के बाद इसी प्रकार के वाहनों का उपयोग किया। फ्रांस के लिए भी जहाँ जनसंख्या जर्मनी की तुलना में बहुत ही शिथिल गति से बढ़ रही थी, अपने उपनिवेशों से सैनिक भर्ती करके अपनी सैन्य शक्ति के विस्तार का प्रलोभन था । इंग्लैण्ड को अपनी भारतीय सेना पर गर्व ही नहीं, भरोसा भी था । इस प्रकार सैनिकवाद के जमाने में सैन्य शक्ति के विस्तार की दृष्टि से उपनिवेश अति मूल्यवान थे। इसके अतिरिक्त वे जर्मनी, इटली आदि देशों के लिए जहाँ से प्रति वर्ष हजारों व्यक्ति अमेरिका, ब्राजील, अर्जेन्टाइना तथा अन्य देशों में बस कर अपनी मातृ भूमि से सदैव के लिए अलग होते जा रहे थे, इस दृष्टि से भी बड़े मूल्यवान हो सकते थे कि वहाँ मातृभूमि से बाहर जाने वाले लोग बसाये जो सकें ताकि उनका उससे सम्बन्ध न टूटे और वे आवश्यकता के समय उनकी सहायता न कर सकें।

उप–राष्ट्रीयता

–

उपनिवेशों से प्राप्त होने वाले ये उपर्युक्त लाभ बहुत कुछ अंश तक काल्पनिक थे क्योंकि उनसे जो लाभ अपेक्षित थे, वे असन्तोषजनक मात्रा में प्राप्त नहीं हुए। वास्तव में नये साम्राज्यवाद की मुख्य प्रेरक शक्ति उग्र राष्ट्रीयता से प्राप्त हुई ।

थी। उन दिनों राष्ट्रीयतावाद प्रतिक्रिया के विरुद्ध संघर्ष करके विजयी हो चुका था और जर्मनी में तथा उसका अनुकरण करके अन्य देशों में भी उग्र रूप धारण करता जा रहा था । इंग्लैण्ड और हालैण्ड जैसे छोटे से देश के अधीन विशाल साम्राज्य देख कर अन्य देशों में, विशेषकर जर्मनी, फ्रांस तथा इटली में भी साम्राज्य की इच्छा जागृत हुई। राष्ट्र के गौरव तथा राष्ट्रीय अभिमान की भावना के संतोष के लिए यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि उनके पास भी साम्राज्य हो । उनकी राष्ट्रीय अभिमान की भावना में अपनी सभ्यता तथा अपने धर्म के उच्च होने का अभिमान भी शामिल था, और उन लोगों में यह भावना और जोर पकड़ने लगी कि पृथ्वी के विभिन्न भागों में बसे हुए पथ – भ्रष्ट तथा पिछड़े हुए लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करके तथा उनमें अपनी उत्कृष्ट सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार कर उनका उद्धार करना तथा उन्हें ऊँचा उठाना। उनका कर्त्तव्य था । इस दृष्टि से असंख्य ईसाई पादरी अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपों को अपने धर्म तथा अपनी सभ्यता के प्रचार के लिए जाने लगे। ये पादरी लोग प्रायः नये साम्राज्यवाद के अग्रदूत बने । पहले वे लोग नये–नये प्रदेशों में पहुँचे ओर उनके पीछे–पीछे व्यापारी भी पहुँचने लगे। बाद में व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए सेना पहुँचने लगी और इस प्रकार साम्राज्य का विस्तार होने लगा। इन प्रचारकों में कुछ लोग तो सच्चे धार्मिक तथा मानव–प्रेमी लोग थे और उन्होंने वास्ताविक सेवा भी की परंतु उपनिवेशों के लोगों को व्यापारियों तथा सरकारी कर्मचारियों के अमानुषिक अत्याचारों का शिकार बनना पड़ा। कुछ भी हो, साम्राज्यवाद के विस्तार में इन धार्मिक तथा मानवतावादी प्रयत्नों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इन कारणों से नये साम्राज्यवाद की भावना समस्त यूरोप में व्याप्त हो गई और भीषण औपनिवेशिक स्पर्धा का श्रीगणेश हुआ।

अफ्रीका में साम्राज्यवाद

इस समय यूरोपीय लोगों के लिए दो विशाल प्रदेश खुले हुए थे – अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के असंख्य द्वीप। अफ्रीका का बँटवारा इस युग की एक अत्यन्त असाधारण घटना है। इसकी असाधारणता दो बातों में दिखायी देती है। प्रथम, इतना बड़ा काम बिना युद्ध के ही हो गया। समय–समय पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच तनातनी हुई जिससे कटुता भी उत्पन्न हुई, संघर्ष की सम्भावनाएँ भी दिखाई दीं, परंतु सभी संकटों को कूटनीति द्वारा निवारण हो गया। और युद्ध नहीं हुआ । द्वितीय यह बँटवारा धीरे–धीरे क्रमिक रूप से नहीं वरन् बड़ी तीव्रता से हुआ और पच्चीस तीस वर्ष में समाप्त हो गया। इसका कारण यह था कि इस समय जर्मनी तथा इटली के नये साम्राज्यहीन किन्तु उग्र राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण राज्य जर्मनी तथा इटली के नये साम्राज्यहीन किन्तु उग्र राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण राज्य मैदान में आ गये थे जो जल्दी–से–जल्दी अपने लिए साम्राज्य की स्थापना करने के लिए लालायित थे। इन नवागन्तुकों को देखकर इंग्लैण्ड और फ्रांस चौंक पड़े परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा तीव्र हुई। प्रत्येक राज्य जल्दी – से–जल्दी और अधिक–से–अधिक प्रदेश हस्तगत करने का प्रयत्न

करने लगा और इस प्रकार अफ्रीका का विभाजन बड़ी तेजी से समाप्त हो गया। यूरोप के बिल्कुल निकट होते हुए भी अफ्रीका प्रायः अज्ञात् प्रदेश था और अन्धकारमय महाद्वीप कहलाता था। यूरोपीय लोग जो संसार भर में फैल चुके थे, उनके केवल तटीय भागों को ही स्पर्श कर सके थे। इसके मुख्य कारण भौगोलिक थे। 1875 के पहले तक उसका केवल दशमांश ही यूरोपीय राष्ट्रों के अधिकार में था । उत्तरी तट पर 1830 में फ्रांस से अल्जियर्स पर अधिकार करके उसके आसपास के प्रदेश

की भी अपने साम्राज्य में शमिल कर लिया था । दक्षिण में इंग्लैण्ड ने 1806 में हॉलैण्ड से केप कॉलोनी का प्रदेश छीन लिया था और 1843 में नेटाल पर अधिकार कर लिया था। पुर्तगाल के पास पूर्वी तट पर मोजाम्बिक तथा पश्चिमी तट पर अंगोला के तटीय प्रदेश थे जिनकी भीतर की ओर सीमाएँ अस्पष्ट थी। उन प्रदेशों के अतिरिक्त पश्चिमी तट पर भी कुछ स्थल फ्रांस (सेनेगल, गेबोन, तथा आइवरी कोस्ट) इंग्लैण्ड (गेम्बिया, सियरा लिओन, गोल्ड कोस्ट, लेगॉस तथा नाइजर नपदी का मुहाना) पुर्तगाल (पुर्तगीज गिनी तथा दो एक द्वीप) और स्पेन (रायो डी ओरी तथा स्पेनिस गिनी) के अधिकार में थे ।

उन्नीसवीं शताब्दी की आरम्भिक तीन– चार शताब्दियों तक अफ्रीका का मूल्य इतना ही था कि गोरे दास – व्यापारी वहाँ से हजारों हब्शियों को पकड़–पकड़ कर दास बना लेते थे और उन्हें अमेरिका के किसानों को बेचकर खूब लाभ उठाते थे। अफ्रीका की अपार प्राकृतिक सम्पत्ति के विषय में यूरोपीय लोगों को बहुत कम ज्ञान था। उसके भीतरी भागों का पता लगाने वाले तथा इस सम्पत्ति की ओर यूरोप का ध्यान आकर्षित करने वाले साहसिक अन्वेषक तथा मिशनरी लोग थे जो अपनी जान हथेली पर रख कर इन दुर्गम प्रदेशों में नाना प्रकार के संकटों का वीरतापूर्वक सामना करते हुए घूम–घूमकर वहाँ का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। इस सम्बन्ध में बटन स्पीक, ग्राण्ट बेकार, लिविंग्स्टन तथा स्टेनली के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने लीन, नाइजर, कांगों तथा जेम्बेजी नदियों के मार्गों का पता लगाया। ईसाई पादरी यह बात बड़ी विचित्र है कि अफ्रीका की इस लूट का आरम्भ किसी महान् सत्ता ने नहीं, बेल्जियम के राजा द्वितीय लियोपोल्ड ने किया । लियोपोल्ड की रुचि व्यावसयिक बातों में थी और उसकी व्यावसायिक बुद्धि भी बड़ी प्रखर थी। उसने लिविंगस्टन तथा स्टेनली की यात्राओं का हाल सुन रखा था और स्टेनली के वैज्ञानिक अन्वेषणों से लाभ उठाने की उसकी बड़ी

प्रबल इच्छा थी। उसने वैज्ञानिक अन्वेषण का प्रोत्साहन देने, अफ्रीका के अज्ञात प्रदेशों का पता लगाने तथा वहाँ के निवासियों को सभ्य बनाने के उद्देश्य से अपनी राजधानी ब्रूसेल्स में 1876 में एक अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक सम्मेलन आमन्त्रित किया, जिसके द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा की स्थापना की गयी । स्वयं लियोपोलड उसका सभापति बना। यह निश्चय हुआ कि प्रत्येक देश में इस सभा की समितियाँ बनायी जाएं जो इस कार्य के लिए धन एकत्रित करें। इस संस्था तथा विभिन्न राष्ट्रीय समितियों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप तथा नैतिक उद्देश्य शीघ्र ही लुप्त हो गए और प्रत्येक समिति अपने राष्ट्र के लिए अफ्रीका में प्रदेश प्राप्त करने के प्रयत्न करने लगी। स्वयं मूल सभा भी वस्तुतः एक बेल्जियन सभा रह गई। जब 1878 में स्टेनली अफ्रीका से लौटकर मारसेई में उतरा था तो इस संस्था की ओर से दो व्यक्तियों ने उससे गुप्त रूप से भेंट करके संस्था की ओर से वापस अफ्रीका लौट जाने के लिए अनुरोध किया था परंतु जन्म से अंग्रेज होने के कारण स्टेनली की इच्छा थी कि उसकी खोजों का लाभ इंग्लैण्ड को प्राप्त हो, परंतु जब इंग्लैण्ड ने उसके प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया और वह वहाँ से निराश हो गया तो उसने लियोपोल्ड से बातचीत की और कुछ लोगों को लेकर मध्य अफ्रीका के लिए पुनः रवाना हो गया। स्टेनली ने कांगो प्रदेश के भोले–भाले नीग्रो सरदारों को डरा–धमकाकर और बहला–फुसलाकर अपने प्रदेश यूरोपियनों को सौंप देने के लिए राजी कर लिया। तीन – चार वर्षों में ही उसने कोई 400 संधियाँ की और एक विशाल प्रदेश उसके हाथों में आ गया।

स्टेनली कांगो नदी के दक्षिण की ओर ही बढ़ पाया था कि उसके उत्तरी किनारे पर पहले ही से एक फ्रेंच साहसिक यात्री ब्राजा के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप फ्रांस का झण्डा फहर रहा था। अपनी सफलता के बाद स्टेनली ने एक बार फिर उसका लाभ इंग्लैण्ड को देना चाहा। उन दिनों ग्लेड्स्टेन प्रधानमंत्री था ।

उसने स्टेनली के प्रस्ताव को तो स्वीकार नहीं किया परंतु पुर्तगाल को समझा कर कांगों नदी के मुहाने के प्रदेश पर उसका अधिकार करा दिया और 1884 में उससे संधि करके उस प्रदेश पर उसके अधिकार को स्वीकार कर लिया तथा कांगो नदी में अंग्रेजों के लिए निर्बाध रूप से आने–जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रकार लियोपोल्ड के प्रदेश का सम्बन्ध समुद्र से टूट गया। उसने फ्रांस और जर्मनी से सहायता माँगी। फ्रांस में उन दिनों जूल्स फेरी विदेश मंत्री था। उसने लियोपोल्ड से संधि करके इंग्लैंड तथा पुर्तगाल की संधि को अस्वीकार कर दिया। ठीक इसी अवसर पर बिस्मार्क ने जो फ्रांस को प्रसन्न रखना चाहता था और अफ्रीका में अपनी औपनिवेशिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इंग्लैण्ड के विरुद्ध फ्रांस का समर्थन करना चाहता था, फ्रांस का समर्थन किया और इस समस्या पर विचार करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आमन्त्रित करने के उसके प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इन्हीं दिनों अनेक यूरोपीय राष्ट्रों के दूत मध्य– अफ्रीका में धूम रहे थे, नीग्रो सरदारों से संधियाँ करके बड़े–बड़े प्रदेश हस्तगत कर रहे थे और अपने प्रभाव क्षेत्र निर्धारित कर रहे थे। स्थिति

इतनी जटिल हो गई थी कि उसे सुलझाने के लिए तथा अफ्रीका के भावी बँटवारे के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निध ारिण अत्यन्त आवश्यक मालूम होने लगा ।

बर्लिन – सम्मलेन

–

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन बर्लिन में हुआ (1884–85)। उसके पहले की कांगो प्रदेश पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के (अर्थात् लियोपोल्ड के) दावों को संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी तथा फ्रांस स्वीकार कर चुके थे। तीन महीने की बातचीत के बाद एक सामान्य कानून (ळमतदतंस ।बज) तैयार हुआ और उस पर सभी के हस्ताक्षर हुए। इस सम्मेलन में स्विट्जरलैण्ड को छोड़कर सभी यूरोपीय राज्य तथा संयुक्त राज्य सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन के सामने तीन प्रश्न थे– कांगों प्रदेश तथा नाइजर प्रदेश के विषय में निर्णय करना और उन शर्तों का निर्धारण करना जिनकें अनुसार भविष्य में अन्य प्रदेशों पर उचित रीति से अधिकार किया जा सके। सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा का कांगो के प्रवाह – प्रदेश पर उसे कांगों फ्री स्टेट का नाम देकर अधिकार स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही उस प्रदेश का व्यापार सब राष्ट्रों के लिए खुला छोड़ दिया गया और कांगो नदी के यातायात पर एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग का नियन्त्रण स्थापित किया गया । नाइजर नदी के प्रदेशों के लिए भी वैसी ही व्यवस्था की गई। उस पर इंग्लैण्ड तथा फ्रांस का संरक्षण स्वीकार कर लिया गया और नदी के यातायात के नियन्त्रण में इंग्लैण्ड को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हुए। तीसरी समस्या के विषय में यह निश्चित हुआ कि किसी प्रदेश पर किसी सत्ता का अधिकार तभी स्वीकार किया जाएगा जब उस पर उसका अध िाकार वास्तविक होगा, केवल नाममात्र का ही नहीं, और इसके साथ ही यह भी आवश्यक होगा कि उसे अपने साम्राज्य में शामिल करने के पहले वह अन्य राष्ट्रों को सूचना दे ।

सम्मेलन ने अफ्रीका के निवासियों के नैतिक तथा भौतिक कल्याण के लिए चिन्ता प्रकट की थी और दास प्रथा एवं दास – व्यापार को रोकना तथा वहाँ के निवासियों की शिक्षा ओर सभ्यता से उन्नति करना अपना मुख्य उद्देश्य बतलाया था, परंतु इन पवित्र कामनाओं का शीघ्र ही अन्त हो गया और यूरोपीय राष्ट्रों ने बड़ी अमानुषिक व निर्दयता के साथ बेचारे भोले–भाले गरीब निवासियों का रक्त शोषण आरम्भ कर दिया। अफ्रीका में लूट मची रही और 1914 तक अबीसीनिया और लाइबेरिया को छोड़कर समस्त अफ्रीका को यूरोपियनों ने आपस में बाँट लिया।

–

कांगो का प्रदेश नाम के लिए तो अन्तर्राष्ट्रीय राज्य था परंतु वह वास्तव में 1908 तक लियोपोल्ड का व्यक्तिगत राज्य बना रहा, परंतु जब व्यापारियों द्वारा अफ्रीकनों पर किया जाने वाले भंयकर अत्याचारों की सर्वत्र शिकायतें होने लगी तो उसने अपना राज्य बेल्जियम की सरकार को सौंप दिया। इस प्रकार कांगो

फ्री स्टेट का प्रदेश जो स्वयं बेल्जियम से विस्तार में दस गुना बड़ा था और रबर की दृष्टि से कांगों का सर्वोत्तम भाग था, बेल्जियम का एक उपनिवेश बन गया ।

लियोपोल्ड की सफलता देखकर अन्य यूरोपियन राष्ट्र भी प्रोत्साहित हुए और अफ्रीका की लूट बड़ी तेजी से होने लगी । पुर्तगाल ने अंगोला तथा मोजाम्बिक की टूटी–फूटी तटीय बस्तियों से भीतर की ओर बढ़ना

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ॅमसस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

प्रारम्भ किया और कुछ ही वर्षों में अंगोला तथा मोजाम्बिक में विस्तृत उपनिवेश स्थापित कर लिये । इटली ने इरीट्रिया तथा इटालियन सोमालीलैण्ड पर अधि ाकार कर लिया और 1911–12 में ट्रिपोली तथा साइनेनाक भी अपने साम्राज्य में शमिल कर लिये । जर्मनी ने भी 1884 से अफ्रीका की लूट में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। जो काम लियोपोल्ड के लिए स्टेनली ने किया था वही काम जर्मनी के लिए कार्ल पीटर्स ने किया जिसने दस दिनों के अन्दर कोई एक दर्जन संधियाँ करके पूर्वी अफ्रीका में 60,000 वर्ग मील पर अधिकार कर लिया। धीरे–ध ीरे उसने पश्चिम तट पर टोगोलैण्ट बेमरून तथा दक्षिण–पश्चिमी तट पर रायो डी जो नीरो तथा जिब्राल्टर के सामने टैनिजयर के प्रदेश पर अधिकार करने में सफल हुआ। फ्रांस ने एक बड़े विस्तृत प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया। उत्तरी किनारे पर एल्जियर्स के अतिरिक्त उसने 1882 में ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया और आगे चलकर 1912 तक मोरक्को को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इन प्रदेशों के दक्षिण में उसने समस्त सहारा प्रदेश पर अधिकार करके पश्चिमी तट पर स्थित स्थानों का कांगो नदी से सम्बन्ध जोड़ दिया । पूर्वी तट पर सोमालीलैण्ड के भाग भी उसने अधिकार कर लिया और 1886 में मेडागास्कर द्वीप को भी साम्राज्य में शामिल कर लिया।

लूट का सबसे बड़ा भाग इंग्लैण्ड के हिस्से में पड़ा और साम्राज्यवादियों का अफ्रीका के पूर्वी भाग में उत्तर से दक्षिण तक ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न प्रायः पूरा हो गया, केवल बीच में जर्मन पूर्वी अफ्रीका का प्रदेश छूटा रहा। दक्षिण में उसके पास दक्षिण अफ्रीका तथा रोडेशिया थे और ब्रिटिश साम्राज्य की उत्तरी सीमा जर्मन पूर्वी अफ्रीका युगाण्डा तथा एंग्लो–इंजिपिश्यन सूडान और इजिप्ट (ब्रिटिश संरक्षण) में इंग्लैण्ड का अधिकार भूमध्यसागर तक विस्तीर्ण हो गया । इस विशाल प्रदेश के अतिरिक्त उसके पास पूर्वी तट पर ब्रिटिश सोमालीलैण्ड और पश्चिमी तट पर गेम्बिया सियरा लियोन गोल्ड कोस्ट तथा

नाइजीरिया के प्रदेश भी थे।

इजिप्ट में इंग्लैण्ड

इन अनेक प्रदेशों में से इंग्लैण्ड के लिए अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा की योजना में इजिप्ट तथा दक्षिण अफ्रीका की बड़ी महत्वपूर्ण स्थिति थी क्योंकि भारतवर्ष की ओर जाने वाले दोनों मार्गों पर इन्हीं देशों का नियन्त्रण था। हम पहले देख चुके हैं कि इंग्लैण्ड ने किस प्रकार फ्रांस के साथ मिलकर इजिप्ट के मामलों में हस्तक्षेप किया और बाद में फ्रांस के अलग हट जाने पर 1882 में अरबी पाशा के राष्ट्रीय विद्रोह के दमन के बाद इजिप्ट पर नाममात्र के लिए उसके शासक खेदिव का शासन रहा आया, परंतु देश में अंग्रेज सेना बनी रही और वास्तविक सत्ता अंग्रेज सलाहकारों के हाथों पहुँच गई। अंग्रेजों ने वहाँ सुध ाार किये आर्थिक व्यवस्था ठीक की एवं न्याय व्यवस्था में भी सुधार किये और सिंचाई की योजनाएँ भ बनाई । 1883 में एक प्रतिनिध्यात्मक विधानसभा का निर्माण भी किया गया और 1913 में उसे कानून बनाने के कुछ परिमित अधिकार दिये गए । प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर जब टर्की ने जर्मनी का साथ दिया तो 1914 में ब्रिटिश संरक्षण में लेने की घोषणा द्वारा वह ब्रिटिश साम्राज्य में शमिल कर लिया गया। इजिप्ट पर ब्रिटिश अधिकार स्थापित हो जाने से फ्रांस तथा इंग्लैंड में बड़ा मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। फ्रांस स्वयं अपनी इच्छा से ही अलग हट गया था परंतु बाद में उसे अपनी भूल मालूम हुई और दोनों देशों के बीच में कलह बढ़ने लगी । इजिप्ट के प्रश्न के कारण नाइजर प्रदेश स्याम, मेडागासकर आदि अन्य प्रदेशों में दोनों में प्रतिस्पर्धा तीव्र होने लगी। यह दशा वर्षों तक रही । अन्त में 1904 में दोनों में समझौता हुआ और कटुता मिटी द्य इजिप्ट के दक्षिण में सूडान था जिस पर इजिप्ट का ही आधिपत्य था । वहाँ के कट्टर मुसलमान विद्रोही हो रहे थे और 1885 में उन्होंने अपने एक नेता मुहम्मद अहमद के जो अपने आप को माहदी बतलाता था, नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। उन्होंने इजिप्ट की सेना को हराकर नष्ट कर दिया और खारतूम में उसके अंग्रेज जनरल गार्डेन की हत्या कर दी। इसके बाद कुछ वर्षों तक अंग्रेजों ने सूडान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया परंतु 1898 में किचनर ने ओमदुर्मन की लड़ाई में माहदी की सेना को परास्त करके सूडान पर पुनः इजिप्ट का अधिकार स्थापित कर लिया। उसी वर्ष जब कांगों की घाटी से एक फ्रेंच सेना ऊपरी नील की घाटी की ओर केप्टिन मार्चन्द की कमाण्ड में बढ़ने लगी और इजिप्शियन सूडान में फेशेडा नामक गाँव में फ्रेंच झण्डा गाड़कर उस प्रदेश पर फ्रेंच सरकार ने मार्चन्द को वापस बुला लिया और 1899

में इंग्लैण्ड से एक संधि करके इजिप्शियन सूडान पर इंग्लैण्ड का प्राधान्य स्वीकार कर लिया । सूडान पर इंगलैंड तथा इजिप्ट का संयुक्त राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार भूमध्य सागर से लेकर भूमध्यरेखा तक नील नदी के प्रदेश में इंगलैंड का अधिकार हो गया।

दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों को डच उपनिवेशवादियों के जो सत्रहवीं तथा

अठारहवीं शताब्दी में केप कॉलोनी में जा बसे थे, वंशों के विरोध का मुकाबला करना पड़ा। ये लोग बोअर (ठवमत) कहलाते थे। 1806 में हॉलैण्ड से यह प्रदेश छीन लिया गया था। बोअर लोग कृषक थे और अग्रेजी शासन से अप्रसन्न थे। जब 1833 में इंग्लैंड की सरकार ने समस्त साम्राज्य के गुलामों को स्वतन्त्र कर दिया तो बोअर लोग केप कॉलोनी को छोड़कर नेटाल में जा बसे और बाद में ऑरेंज तथा वाल नदियों को पार कर उनके उत्तरी किनारों पर जा बसे परंतु अंग्रेजों ने उनका पीछा न छोड़ा। उन्होंने 1843 में नेटाल पर अधिकार कर लिया और पाँच वर्ष बाद ऑरेंज तथा बाल नदी की बस्तियों पर भी धावा किया। परन्तु बोअर लोगों ने इसका दृढ़ता से विरोध किया और 1850 में इंग्लैण्ड को ट्रान्सवाल रिपब्लिक तथा ऑरेंज फ्री स्टेट के नाम से उन बस्तियों की स्वतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ी। 1877 में डिजरेली ने ट्रान्सवाल को ब्रिटिश साम्राजय में शामिल करने की घोषणा की परंतु बोअर लोगों ने उसका विरोध किया और 1881 में एक छोटी–सी अंग्रेज सेना की मजूबा हिल की लड़ाई में परास्त कर दिया। उस समय ग्लेड्स्टनो प्रधानमंत्री था। साम्राज्यवाद के विरुद्ध होने के कारण उसने अंग्रेजी सेना को वापस बुला लिया और ट्रान्सवाल की स्वतन्त्रता पुनः स्वीकार कर ली। परन्तु रेण्ड प्रदेश (जीम त्ंदक) में सोने का पता चलने पर 1886 पर बहुत से अंग्रेज ट्रान्सवाल में जाकर बसने लगे। शीघ्र ही इन विदेशियों (न्जपसंदकमते) की संख्या बोअर लोगों से अधिक हो गई और वे लोग शासन पर अधिकार करने तथा ट्रान्सवाल पर इंग्लैण्ड की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। इन विदेशियों में प्रमुख सेसिल रोड्स (ब्मबपस तीवकमे) था। उसके पास सोने तथा हीरों की खानों के रूप में अपार सम्पत्ति थी । वह शीघ्र ही दक्षिण अफ्रीकी का प्रमुख राजनीतिज्ञ तथा उग्र ब्रिटिश साम्राजयवाद का प्रधान प्रतिपादक बन गया। उसने 1889 में ब्रिटिश साउथ अफ्रीका कम्पनी नामक एक कम्पनी का संगठन किया और थोड़े ही समय में उस समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया जो उसके नाम से रोडेशिया कहलाता है। 1890 से 1896 तक वह केप कॉलोनी का प्रधानमंत्री रहा और इस काल में इंगलैण्ड के उपनिवेश मंत्री जोजेफ चेम्बरलैन से षड्यन्त्र करके ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट की डच रिपब्लिकों को फिर से ब्रिटिश साम्राज्य में शमिल करने के निमित उनसे युद्ध छेड़ने का प्रयत्न करने लगा। उसके एक मित्र डॉक्टर जेम्सन ने 1895 में शासन को पलट देने के उद्देश्य से ट्रान्सवाल पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया परंतु बोअर लोगें ने उसे परास्त कर दिया। इस घटना से ब्रिटिश तथा ट्रान्यवाल सरकार में बड़ा मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। ट्रन्सवाल का राष्ट्रपति इन दिनों पाल क्रूगर (च्नस ज्ञतनमंहमत) था । विदेशियों को मताधिकार देने के प्रश्न पर 1899 में इंग्लैण्ड तथा ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट के बीच युद्ध छिड़ गया। आरम्भ में तो जनरल बोथा (ठवजीं) तथा जनरल बेट ॅमज) के नेतृत्व में बोअर लोगों को काफी सफलता प्राप्त हुई परंतु उनके पास पर्याप्त साधनों को अभाव था । इंग्लैण्ड ने कनाडा, ऑस्ट्रिया तथा न्यूजीलैण्ड में और स्वयं अपने यहाँ स्वयं सेवकों की भर्ती करके साढ़े तीन लाख सेना लॉर्ड रॉबर्ड्स तथा लार्ड

किचनर के कमाण्ड में दक्षिण में भेजी जो बड़ी कठिनाई से बोअर लोगों को 1902 में परास्त कर सकी । बिरीनिगिग (टमतममदपहपदह) की सन्धि (मई 1902) के द्वारा बोअर लोगों ने डच भाषा की सुरक्षा तथा स्वशासन की शर्तों पर हथियार डाल दिये। ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और वे ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश बन गये। बोअर लोगों में असन्तोष बना रहा जिसे कभी करने के लिए 1906–07 में इंग्लैण्ड की लिबरल सरकार ने उन्हें उत्तरदायी स्वशासन प्रदान कर दिया और अन्त में 1909 में केप कॉलोनी नेटाल तथा इन दोनों प्रदेशों को सम्मिलित करके कनाड़ा के आदर्श पर उनकी एक यूनियन (न्दपवद वि"विनजी ।तिपबं) बनाकर उसे डोमीनियन (क्वउपदपवद) का दर्जा देकर वास्तविक स्वतंत्रता प्रदान कर दी।

————

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

प्रशान्त महासागर

अफ्रीका के बँटवारे के साथ–साथ प्रशान्त महासागर के द्वीपों की भी छीन–झपटी चल रही थी जिसमें यूरोपीय राष्ट्रों के अतिरिक्त संयुक्त राज्य भी भाग ले रहा था। 1900 तक प्रायः समस्त द्वीप किसी न किसी के पास पहुँच गये थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस वहाँ पहले पहुँचे थे, अतः अधिकांश द्वीप उनके हाथ लगे परंतु हॉलैण्ड के पास भी एशिया के दक्षिण–पश्चिम में पूर्वी इण्डीज के द्वीप समूह में उसका विस्तृत साम्राज्य बना रहा। जर्मनी के न्यूगिनी के विशाल द्वीप के एक भाग तथा उसके उत्तर की ओर के कई द्वीप और सेमोआ द्वीप समूह के दो बसे बड़े द्वीपों पर अधिकार कर लिये । संयुक्त राज्य ने ग्वाम तथा फिलिपाइन द्वीप ले लिये। 1898 ई में हवाई द्वीप पर उसने अधिकार कर लिया और 1899–1900 में इंग्लैण्ड तथा जर्मनी से मिलकर सेमोआ द्वीप समूह में से कई द्वीपों को भी अपने साम्राज्य में शमिल कर लिया। इस द्वीप समूह के सम्बन्ध में कई बार संघर्ष का डर रहा परंतु अन्त में 1900 में एक समझौता हो गया जिसके द्वारा इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा संयुक्त राज्य के प्रभाव क्षेत्रों का निर्धारण हो गया और मामला सुलझ गया ।

एशिया

यूरोपीय राज्यों की आँखें अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के अतिरिक्त एशिया पर भी लगी हुई लगी हुई थी। दक्षिण एशिया में भारतवर्ष पर तो इंग्लैण्ड ने अधिकार कर ही रखा था और रूस धीरे–धीरे साइबेरियन मैदान में होकर पूर्व

में प्रशान्त महासागर की ओर बढ़ रहा था । चीन, मलय प्रदेश तथा पश्चिम सफलता पूर्वक फैला रही थी ।

–

रूस 1878 की बर्लिन – कांग्रेस के निर्णयों से बड़ा रुष्ट हो गया था और इंग्लैण्ड को अपना प्रधान शत्रु समझने लगा था। अतः उसने मध्य एशिया में इंग्लैण्ड से बदला लेने के विचार से पूर्व की ओर तेजी से बढ़ना आरम्भ किया। उसका पूर्व की ओर बढ़ने का केवल यही एक कारण नहीं था । उसकी बढ़ती हुई जनसंख्या, कृषि तथा गोरस उद्योग के विकास अन्य बड़े व्यवसायों की उन्नति तथा विदेशी व्यापार के विस्तार आदि सब का तकाजा था कि रूस के पास अधिकाधिक ऐसे बन्दरगाह हों जो वर्ष भर खुले रहें। इसी दृष्टि से वह दक्षिण की ओर कुस्तुनतुनियों तथा पश्चिम में एटलांटिक महासगर के तट पर बन्दरगाह प्राप्त करने का प्रयन्त कर रहा था, और इसी दृष्टि से पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट तथा दक्षिण – पूर्व में फारस की खाड़ी की ओर बढ़ना चाहता था। एशिया की ओर रूस की प्रगति क्रीमियन
युद्ध
के बाद ही प्रारम्भ ही गयी थी जबकि 1858 में उसने चीन की विवश करके आमूर नदी के उत्तर की ओर के समस्त प्रदेश की छीन लिया था और प्रशान्त महासागर के तट पर ब्लाडी बोस्टक की नींव डाली थी। इस प्रकार उसने उत्तर एशिया में समस्त साइबेरिया पर अधिकार कर लिया था । बर्लिन की कांग्रेस के पहले वह मध्य एशिया में भी काफी बढ़ चुका था और ताशकंद (1864), समरकंद (1868), खिवा (1873), तथा खोकन्द (1876) पर अधिकार कर चुका था । बर्लिन की संधि के समय वह अफगानिस्तान की सीमा तक पहुँच गया था और भारतवर्ष में अंग्रेज सरकार चिंतित हो उठी । इसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया (1878–79) और उसको परास्त करके एक दूसरे अमीर को सिंहासन पर बैठाया जो अंग्रेजों का मित्र था और जिसे भारतवर्ष की अंग्रेज सरकार एक बड़ी धनराशि देकर अपनी ओर बनाये रही। इस दिशा में अपनी प्रगति को अवरुद्ध हुआ देखकर रूस दूसरी दिशा में बढ़ा। उसने 1881 में तुक्रिसन की विजय पूर्ण कर ली और 1884 में मत्र पर अधिकार करके 1885 में वह पंजदेह तक पहुँच गया जहाँ फिर उसे अंग्रेजों के विरोध के कारण रूकना पड़ा। 1891 में उसने पामीर में घुसकर फिर अंग्रेजों के लिए पेरशानी खड़ी कर दी। दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ा परंतु 1895 में दोनों ने मिलकर एक संयुक्त कमीशन द्वारा अपने साम्राज्यों की सीमाएँ निर्धारित करके झगड़े को समाप्त कर लिया। उधर सुदूर–पूर्व में उसने 1898 में पोर्ट आर्थर का बन्दरगाह भी चीन से जबरन द्वारा पट्टे पर छीन लिया । पश्चिमी एशिया में रूस ने फारस पर भी अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया परंतु वहाँ भी इंग्लैण्ड ने उसका विरोध किया। अन्त में दोनों ने परस्पर समझौता (1907) करके फारस को दो प्रभाव – क्षेत्रों में बाँट लिया और उत्तरी भाग रूस तथा दक्षिणी इंग्लैण्ड के प्रभाव – क्षेत्र में पहुँच गया। मध्य– फारस में दोनों को कार्य करने की स्वतन्त्रता रही। इस

प्रकार रूस उत्तर और मध्य एशिया में बढ़ रहा था। इंग्लैण्ड भी मध्य एशिया में रूस की प्रगति को रोकने के साथ—साथ भारतवर्ष में पूर्व तथा
पश्चिम की ओर बढ़ रहा था। उसने पश्चिम में बलूचिस्तान तथा पूर्व में वर्मा और मलय प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया।

चीन

दक्षिण – पूर्व एशिया में फ्रांस के पास कोचीन – चीन तथा कम्बोडिया पहले से ही थे। उसने 1884 में अनाम तथा आर्किंग के प्रदेश भी उसमें शमिल करके इण्डो—चीन का विशाल संरक्षित राज्य बना लिया। ये समस्त प्रदेश उसने चीन से छीने थे और इस प्रकार उसने चीन के बँटवारे का सूत्रपात कर दिया था । उन्नीसवीं शताब्दी में एक बड़ी गम्भीर समस्या यह थी कि क्या यूरोपीय राज्य चीन की विशाल किन्तु क्षीण साम्राज्य को दीन कर आपस में बाँट लेंगे? इसी अवसर पर एक नया प्रतिस्पर्धा मैदान में उतर आया, वह था जापान ।

जापान का अभ्युदय

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जापान ने यूरोपीय लोगों को पास नहीं फटकने दिया था, परंतु 1853—54 में अमेरिकन नाविक मूथ्यू पेरी ने जापान से संधि करके अमेरिका के जहाजों के लिए जापानी बन्दरगाहों का उपयोग करने को अधिकार प्राप्त करके उसे गोरी जातियों के लिए खोल दिया। शीघ्र ही यूरोपियन राष्ट्रों ने जापान से इसी प्रकार की रियायतें प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया और जापान पर पाश्चात्य प्रभाव बड़ी शीघ्रता से बढ़ने लगा। अगले वर्षों में जापान में महान् परिवर्तन हुए। सम्राट (मिकाडो) ने, जो दीर्घ काल से नाममात्र का शासक था, सत्ता अपने हाथ में ले ली, सामन्तवाद का अन्त कर दिया गया, पश्चिमी उद्योगवाद, शिक्षा तथा सैनिकवाद का प्रचार हुआ और जापानियों में अपने इतिहास तथा अपनी जाति का जो अभिमान था उसने पाश्चात्य राष्ट्रीयतावाद तथा साम्राज्यवाद के समान ही उग्र रूप धारण कर लिया। उसने यूरोपियन राष्ट्रों के समान साम्राज्य निर्माण के लिए कमर कसी जिसके लिए उसे क्षीण प्रायः चीन में बड़ा उपयुक्त क्षेत्र दिखायी देता था ।

चीन की नोच—खसोट

हम अभी देख चुके है कि चीन का फ्रांस ने दक्षिण की और से अंग—भंग करना प्रारम्भ कर दिया था । इंग्लैण्ड ने 1882 हांगकांग का द्वीप ले लिया था और अन्य यूरोपीय राष्ट्रों ने भी संधियाँ करके समुद्र—तट पर कई स्थानों में विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये थे परंतु चीन की वास्तविक लूट जापान ने आरम्भ की । 1894—95 में उसने चीन युद्ध करके कोरिया का विस्तृत प्रदेश उससे अलग कर दिया (परन्तु 1910 तक उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया), फार्मेसा का द्वीप छीन लिया और ओकीनावा सहित ल्यू च्यू द्वीपों पर भी अधिकार कर लिया । वह उससे लियोओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर भी छीन लेना चाहता था, परन्तु फ्रांस तथा जर्मनी के समर्थन के साथ रूस ने उसका विरोध किया और उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी। इस अवसर पर यूरोपीय राष्ट्रों ने पुनः संधियों द्वारा चीन से कई बन्दरगाह पट्टे पर छीन लिये। इंग्लैण्ड ने बेहईवे, फ्रांस ने

क्वागचाऊ, जर्मनी ने किया उचाउ और रूस ने लियाआतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया।

बॉक्सर – विद्रोह

इस प्रकार निर्बल चीन यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थ का शिकार बन रहा था। अनेक बन्दरगाह प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ और सब ने मिलकर उसके अधिकतम व्यापारिक शोषण के लिए उसे अनेक क्षेत्रों में विभक्त करने का निश्चय किया ताकि प्रत्येक राष्ट्र अपने–अपने क्षेत्रों में अपनी मनमानी करते रहे परंतु इसी समय दो घटनाएँ ऐसी हुई जिन्होंने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया विदेशियों के अत्याचारों से क्रुद्ध होकर चीन के देशभक्तों (ठव•मते) ने उन्हें बाहर निकालने के लिए विदेशियों पर आक्रमण कर दिया (1900)। इस पर इंग्लैण्ड फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, रूस, इटली तथा जापन की सम्मिलित सेना ने चीन पर आक्रमण करके पेकिंग पर अधिकार कर लिया। चीन को दबना पड़ा और युद्ध के हर्जाने के रूप में एक भारी रकम देनी पड़ी। सब राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय सेना के निर्माण के समय चीन से कोई प्रदेश न छीनने का निश्चय कर लिया था। अतः उन्होंने उससे कोई भूमि न ली और युद्ध समाप्त होने पर उसकी अखण्डता की गारण्टी दी।

}

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

211

पश्चिमी विश्व

छव्जै

रूस–जापान का युद्ध

चीन की आखण्डता की गारण्टी की बात 1895 में की गई थी और उसी के आध ाार पर जापान को कोरिया पर अधिकार करने से रोका गया था परन्तु उसके बाद रूस ने लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया था। यह देखकर जापान समझ गया कि रूस का विचार मंचूरिया और कोरिया को हड़पने का था। उसने मंचूरिया में सेना भेजना आरम्भ कर दिया था और पोर्ट आर्थर की किलेबन्दी करके वहाँ अपना जहाजी बेड़ा रखना भी आरम्भ कर दिया था। जापान स्वयं इन प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। अतः दोनों में वैमनस्य बढ़ा और फरवरी, 1904 में दोनों में युद्ध छिड़ गया ।

युद्ध के कारण–

1. उपर्युक्त घटना के फलस्वरूप उत्पन्न वैमनस्य के कारण दोनों में युद्ध अनिवार्य हो गया। इस

वैमनस्य के अलावा युद्ध के अनेक अन्य कारण भी थे।

2.

रूस के पास ऐसा कोई समुद्र तट नहीं था जो वर्ष भर खुला रहता हो । उसके

उत्तरी व पश्चिमी समुद्र–तट पर सर्दियों में बर्फ जम जाती थी। अतः वह किसी ऐसे समुद्र तट की तलाश में था जो बारहों महीने खुला रहे । पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट पर अधिकार करके वह अपनी इस इच्छा की पूर्ति करना चाहता था परन्तु जापान इसमें बहुत बड़ा बाधक था ।

3. मंचूरिया अन्न और लकड़ी का भण्डार था । वहाँ अनेक प्रकार की खानें थी। रूस और जापान दोनों ही मंचूरिया को प्राप्त करने के लिए लालायित थे। साथ ही रूस की ट्रान्स साइबेरियन रेलवे लाइन मंचूरिया से होकर जाती थी जिसकी सुरक्षा के लिए रूसी सैनिक व पदाधिकारी वहाँ रहते थे, जिससे जापान की सदैव खतरा बना रहता था और दोनों के मध्य तनावपूर्ण स्थिति बनी रहती थी ।

4.

5.

कोरिया पर भी रूस–जापान दोनों अपना–अपना प्रभाव जमाने के इच्छुक थे। इन परस्पर विरोधी महत्वाकांक्षाओं के कारण दोनों देशों के बीच मनमुटाव बढ़ रहा था और उनमें कभी भी युद्ध छिड़ सकता था ।

अभी तक विश्व में जापान की गणना एक साधारण से छोटे राज्य के रूप में थी परन्तु 1902 में इंग्लैण्ड ने उसके साथ संधि कर उसे एक महान् सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया था जिससे उसका हौसला काफी बढ़ गया और वह रूस की चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया।

युद्ध का तात्कालिक कारण– एक छोटी सी घटना ने उपर्युक्त कारणों द्वारा प्रस्तुत बारूद में चिंगारी का कार्य किया । एक दिन कोरिया में रूस के कुछ सैनिक यालू नदी के किनारे लकड़ी काट रहे थे और एक साधारण सी बात पर उनका जापानी सिपाहियों से झगड़ा हो गया। झगड़े में कुछ रूसी सैनिक मारे गये, जिसके कारण क्रोधित होकर रूस ने अपनी सेनाएँ जापान पर आक्रमण करने के लिए भेज दी और दोनों देशों के मध्य युद्ध छिड़ गया। रूस की पराज्य हुई। अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मध्यस्थता के फलस्वरूप दोनों में पोर्टस्माउथ (अमेरिका) के स्थान पर संधि हुई जिसके द्वारा

1.

कोरिया की स्वतन्त्रता को दोनों ने स्वीकार किया परन्तु रूस को उसमें जापान के हितों का

प्राधान्य मानना पड़ा।

2. दोनों को मंचूरियां खाली करना पड़ा ।

3. जापान को रूस से लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर का पट्टा तथा खाखालिन का दक्षिणी आधा भाग प्राप्त हुआ । यह दूसरी घटना थी जिसने चीन में यूरोपीय राष्ट्रों के उत्पात को बन्द कर दिया।

ै मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

212

रूस की पराज्य के कारण–

1. यूरोप की विभिन्न शक्तियाँ एशिया में रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को अपने लिए एक खतरा समझती थीं अतः उन्होंने युद्ध के समय रूस की कोई सहायता नहीं की और उसकी पराज्य हुई।

2.

3.

जिस समय रूस और जापान के मध्य युद्ध आरम्भ हुआ उस समय रूस में गृह—युद्ध चल रहा था। रूस की जनता सम्राटों की निरंकुशता के विरुद्ध अपने मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी, इसलिए जन सहयोग के अभाव में रूस इस युद्ध में पराजित हुआ ।

रूस की सेना भ्रष्ट अफसरों के नेतृत्व और अनुशासन के अभाव के कारण निर्बल थी और जापान की सुसंगठित एवं देश—प्रेम से अनुप्राणित सेना का मुकाबला नहीं कर सकती थी ।

युद्ध के प्रभाव—

1.

2.

3.

4.

यह युद्ध विश्व इतिहास के निर्णयक युद्धों में से एक था। इसके परिणामस्वरूप जापान एक महान् सशक्त सत्ता के रूप में विश्व – मंच पर उपस्थित हुआ। इंग्लैण्ड ने 1902 में उसके साथ संधि करके उसे एक महान् सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया था। इस युद्ध ने उसे समस्त संसार की दृष्टि में वही पदवी दे दी और विश्व की महान शक्तियों में उसकी भी गणना होने लगी ।

जापान एशिया के देशों के लिए एक आदर्श बन गया ।

इस युद्ध के कारण रूस की सैनिक शक्ति का खोखलापन प्रकट हो गया और सुदूर—पूर्व में रूस के विस्तार पर अंकुश लग गया। बेन्स ने भी लिखा है, ”स्पष्टतः जापन ने रूस के सुदूर—पूर्व में बढ़ते हुए प्रभाव पर अंकुश लगा दिया था । ‘‘ इतिहासकार सी. डी. हेजन ने लिखा है कि इस विजय के फलस्वरूप जापान पूर्व में सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया।

रूस की यह पराजय और उसके यह राष्ट्रीय अपमान आगे 1905 में होने वाली राजनीतिक क्रांति का एक प्रमुख कारण था।

यूरोपीय राष्ट्र एशिया के समान दक्षिणी अमेरिका में भी लूट मचाना चाहते थे, विशेषकर जर्मनी ब्राजील पर अधिकार करना चाहता था जहाँ प्रति वर्ष बहुत बड़ी संख्या में जर्मन लोग जाकर बसते जा रहे थे परन्तु संयुक्त राज्य के मुनरो सिद्धान्त के कारण वे उधर न बढ़ सके।

इस साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का वर्णन करते—करते कही—कहीं हमने 1914 तक की घटनाओं की चर्चा की है । परन्तु मोटे तौर से यह औपनिवेशिक लूट उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक समाप्त हो चुकी थी और प्रायः समस्त अफ्रीका एवं एशिया का बहुत बड़ा भाग तथा प्रशान्त महासागर के समस्त द्वीप यूरोपीय

सत्ताओं तथा संयुक्त राज्य ने आपस में बाँट लिये थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो प्रदेश अब भी छीन लेने योग्य रह गये थे, वे थोड़े से ही थे– उत्तर पश्चिमी अफ्रीका में मोरक्की, एशिया में चीन तथा फारस ओर टर्की का सम्राज्य । अभी तक जितना बँटवारा हुआ था वह बिना युद्ध के ही हो गया था । जैसा हम देख चुके हैं, जापान ने उत्थान के कारण चीन यूरोपीय लोगों के आक्रमणों से बच गया। और फारस के सम्बन्ध में भी इंग्लैण्ड तथा रूस में समझौता हो गया। मोरक्को के विषय में फ्रांस तथा जर्मनी में बड़ी तनातनी हुई, परन्तु अन्त में 1911 में दोनों में समझौता हो गया । किन्तु टर्की के साम्राज्य के विषय में कोई समझौता हो, उसे पहले ही विभिन्न सत्ताओं का धैर्य छूट गया। वे परस्पर लड़ने लगी और प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। अगले खण्ड में हम उन घटनाओं का वर्णन करेंगे जिनका परिणाम इस विश्व युद्ध के रूप में प्रकट हुआ।

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

उदारवाद की विजय : इंग्लैण्ड

युद्धोत्तर समस्याएँ –

महायुद्ध की समाप्ति के समय इंग्लैण्ड में लॉर्ड जॉर्ज का सम्मिलित मन्त्रिमण्डल था जिसका निर्माण 1916 ई. में हुआ था। रणक्षेत्रों से दूर होने के कारण इंग्लैण्ड की उतनी हानि नहीं हुई थी जितनी फ्रांस या बेल्जियम की हुई थी और आरम्भ में जर्मनी को चूस लेने की भावना प्रबल होते हुए भी वहाँ लोग महायुद्ध को इतिहास की वस्तु समझने और यदि अन्य राष्ट्र उसे भूलने देते तो उसे भूलने के लिए तैयार थे। युद्ध की सामप्ति पर वह फिर अपनी पूर्व– स्थिति में पहुँच जाएगा परन्तु यह आशा शीघ्र ही निराशा में बदल गयी । इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय आय के चारों बड़े स्रोत सूखते जा रहे थे। प्रथम, उसका निर्यात गिर गया। बिटेन के कारखानों में बना हुआ माल पहले कई देशों में बिका करता था, परन्तु अब उन्हें उसकी आवश्यकता कम रह गयी थी। उसके तैयार माल का मुख्य खरीद्दार भारतवर्ष था, परन्तु युद्ध के दिनों में भारत के उद्योग–धंधे काफी उन्नति कर गये थे। वहाँ बहुत सा कपड़ा तथा अन्य सामान बनने लगा था। साथ ही, जापान ने भी अपने उद्योगों की तरक्की कर ली थी। जिन दिनों जर्मनी इंग्लैण्ड के जहाजों को डुबा रहा था और उसका माल भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी देशों को नहीं पहुँच रहा था, उन दिनों जापान ने भारत तथा एशिया के अन्य बाजारों को अपने सस्ते माल से भरना आरम्भ कर दिया था और युद्ध के बाद इन बाजारों में जापान से मुकाबला करना इंग्लैण्ड के लिए कठिन हो गया।

यूरोप में कई देशों, विशेषकर, हॉलैण्ड, सकेण्डिनेविया तथा इटली को इंग्लैण्ड से बहुत–सा कोयला जाता था, परन्तु अब उसकी माँग में कमी हो गयी । जर्मनी क्षतिपूर्ति के रूप में फ्रांस को प्रति वर्ष 20 लाख टन कोयला देता था। फ्रांस को इतने कोयले की आवश्यकता नहीं थी और वह उसमें से बहुत–सा उन देशों को सस्ते दामों पर बेच दिया करता था । द्वितीय, कोयले के व्यवसाय के साथ इंग्लैण्ड के जहाजी व्यवसाय की भी हानि हुई। जहाजों को कोयला ढोने से जो आय होती थी वह कम हो गयी। हाँ, जर्मनी व्यापारी बेड़े को छीन लेने से इंग्लैण्ड के जहाजों को यात्री लाने व ले जाने से आय होने लगी, परंतु इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ के जहाज बनाने वाले कारखानों का काम कम हो गया और 1921 तक उन कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों में से दो तिहाई बेकार हो गये । तृतीय, इंग्लैण्ड का करोड़ों पौण्ड रूस में लगाया हुआ था और रूस की नयी बॉल्शेविक सरकार ने उसका भुगतान करना अस्वीकार कर दिया। पहले तो उसने अन्य देशों से मिलकर बॉल्शेविक – विरोधियों को सहायता देकर उसे हराने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्त में बॉल्शेविक दल विजयी हुआ और इंग्लैण्ड का रूपया मारा गया। युद्ध के दिनों में इंग्लैण्ड ने बहुत–सा धन अपने मित्रों को भी ऋण के रूप में दिया था, जिसे प्राप्त करना कठिन था। इसके साथ ही, उसने स्वयं अमेरिका से कई अरब पौण्ड ऋण ले रखा था जिसे चुकाना अत्यन्त कठिन था। अन्त में, इंग्लैण्ड में धन की कमी हो गयी थी और लन्दन का स्थान निम्न हो गया क्योंकि युद्ध की समाप्ति के साथ ही इंग्लैण्ड को भी बड़ी विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा।

बेकारी

झ

–

इन समस्याओं में सबसे विकट समस्या बेकारी की थी। जुलाई 1921 में इंग्लैण्ड में बेकार मजदूरों की संख्या 20 लाख से भी अधिक थी। कारखानों के मालिक मजदूरी की दरों में कमी करना चाहते थे क्योंकि उसके बिना उनका व्यय पूरा नहीं हो सकता था और मजदूर कम मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार नहीं थे। लॉर्ड जॉर्ज को इस समस्या पर ध्यान देना पड़ा। उसने 1911 में बिस्मार्क का अनुकरण करके मजदूरों की बेकार के समय के लिए बीमा व्यवस्था की थी जिसके अनुसार बीमा – फण्ड में सरकार भी कुछ रूपया देती थी। उसने राज्य की ओर से दिये जाने वाले धन में वृद्धि कर दी और बेकार मजदूरों को निर्वाह व्यय दिया जाने लगा। यह व्यवस्था करके उसने मजदूरों की भूखों मरने से और क्रांतिकारी विचारों से तो रक्षा कर ली परन्तु उससे इंग्लैण्ड की आर्थिक दशा में कोई सुधार नहीं हो सकता था। बजट में घाटा हो रहा था और इस व्यवस्था की सफलता के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी । उसने कई प्रकार से व्यय में बचत की, आय–कर की दर में भारी वृद्धि की और 1921 में चिरकाल

अतः

से प्रतिष्ठित मुक्त व्यापार की नीति का परित्याग करके बाहर से आने वाली कुछ

वस्तुओं पर आयात कर
लगाया।
कंजरवेटिव सरकार – बाल्डविन का प्रथम मन्त्रिमण्डल
लॉयड जॉर्ज के कंजरवेटिव लोग सन्तुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने उसका समर्थन करना बन्द कर दिया। उसने त्याग पत्र दे दिया और नये निर्वाचन के कंजरवेटिव दल ने विजयी होकर अपना मन्त्रिमण्डल बनाया जिसमें बोनकर लॉ प्रधानमन्त्री बना परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उसने कुछ दिन बाद ही त्याग–पत्र दे दिया और उसके स्थान पर बाल्डविन प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ। कंजरवेटिव दल देश की आर्थिक दशा को सँभालने के लिए यह आवश्यक समझता था कि मुद्रा के बाजार में लन्दन की स्थिति पहले जैसी ही हो जाए। परन्तु यह कार्य सरलं नहीं था । उसे बहुत सा धन अपने कर्जदारों से वसूल करना था परन्तु उसे भी 210 करोड़ पौण्ड अमेरिका को देना था। उसने यह घोषणा की कि यदि अमेरिका अपना ऋण छोड़ दे तो इंग्लैण्ड भी अपना ऋण छोड़ देगा, परन्तु अमेरिका इस बात के लिए तैयार नहीं था । इंग्लैण्ड के लिए संसार में अपनी साख बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक था। अतः उसने अमेरिका के सारे ऋण का भुगतान 62 किस्तों में करने का वचन दिया । यह एक बहुत भारी जिम्मेदारी थी। इतना ऋण नये कर लगाकर ही चुकाया जा सकता था जिसका भार देश के उद्योगों पर ही पड़ने वाला था। इससे उद्योगों की भारी हानि की सम्भावना थी परन्तु कंजरवेटिव सरकार ने ऐसा करके संसार में इंग्लैण्ड की स्थिरता तथा ईमानदारी का प्रमाण देकर उसकी प्रतिष्ठा पुनः जमा ली। इसके साथ ही बड़ी कठिनाइयाँ भी उसने इंग्लैण्ड की मुद्रा को सोने के आधार पर पुनः स्थिर कर दिया और लन्दन फिर से संसार का बैंकर हो गया।
होते हुए
प्रथम मजदूर सरकार
यह व्यवस्था अप्रैल, 1925 तक पूर्ण हो सकी, परन्तु इसके पहले ही कंजरवेटिव दल के हाथों से सत्ता निकल चुकी थी । बाल्डविन संरक्षण की नीति में आगे बढ़ना चाहता था परन्तु इसके लिए वह देश की स्वीकृति चाहता था, अतः उसने 1924 में नया निर्वाचन कराया जिसमें कंजरवेटिव दल को 258, लिबरल दल को 157 और लेबर दल को 191 स्थान प्राप्त हुए । लिबरल तथा लेबर दल आयात – कर के विरुद्ध थे। इन दोनों की संख्या कंजरवेटिव दल से अधिक होने के कारण उसे त्याग पत्र देना पड़ा और लिबरल दल के समर्थन के साथ लेबर दल ने इंग्लैण्ड के इतिहास में प्रथम बार अपना मन्त्रिमण्डल बनाया जिसमें रेमजे मैक्डॉनल्ड प्रधानमंत्री बना।
–
मजदूर दल की उन्नति उदार दल का ह्रास
युद्धोत्तर इंग्लैण्ड की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना मजदूर (स्इवनत) दल का उत्थान तथा उदार दल का अवसान है। उस समय औद्योगिक मजदूरों की दशा बिगड़ रही थी। उनके रहन–सहन की व्यवस्था बड़ी खराब थी, बेकारी

बराबर बनी हुई थी और देश में बाहुल्य होते हुए भी गरीबी उनके सामने मुँह खोले खड़ी थी। मजदूर दल इन बीमारियों का एकमात्र इलाज समाजवाद समझता था और मुख्य उद्योग–धंधों, रेलवे, बैंकों तथा भूमि के राष्ट्रीकरण की माँग करता था ताकि जो धन अभी तक पूँजीपतियों की तिजोरियों में पहुँचता था, वह सरकार के कोष में जाने लगे और सरकार सम्पत्ति का अधिक न्यायपूर्ण वितरण कर सके। मजदूरों को यह कार्यक्रम बड़ा आकर्षक मालूम होता था। अतः मजदूर दल का जोर बढ़ने लगा। अनुदार (ब्वदेमतअंजपअम) दल समाजवाद का विरोधी था और उसका दावा था कि पूँजीवादी व्यवस्था में ही बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल आवश्यक सुधार करके स्थिति ठीक की जा सकती है। उदार (स्पइमतंस) दल के पास इन दोनों के बीच की कोई ऐसी बात नहीं थी जिसे वह देश की जनता के समक्ष रखता । अतः धीरे–धीरे उसकी शक्ति क्षीण होने लगी।

मजदूर सरकार का भंग

मैकडॉनल्ड ने अपनी सरकार का तो निर्माण कर लिया परन्तु उदार दल की सहायता पर निर्भर होने के कारण जो समाजवाद का विरोधी था, वह उद्योगों तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण की बात नहीं कर सकता

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

215

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

216

था, और ऐसे ही काम कर सकता था जिससे उदार दल वाले नाराज न हों, अतएव वह केवल कुल आयात–निर्यात करों को निरस्त करवाने और मजदूरों के लिए मकानों के निर्माण के लिए संसद से स्वीकृति लेने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाया। वह बेकारी का भी कोई हल नहीं निकाल सका परन्तु उसकी इस मर्यादित नीति से उसके ही दल के कुछ लोग असन्तुष्ट हो गये तथा उदार दलीय लोग उसके खर्चीलेपन तथा बेकारों की सहायता के लिए किये जाने वाले व्यय से नाराज हो गये, और जब उसने रूस के व्यापार से लाभ उठाने की दृष्टि से उसकी साम्यवादी सरकार को कूटनीतिक स्वीकृति प्रदान की तो उदार दल ने चिढ़कर उसका साथ छोड़ दिया। इस पर मैक्डॉनल्ड ने संसद को भंग कराकर दूसरा निर्वाचन करवाया (अक्टूबर, 1924), परन्तु उसमें अनुदार दल की विजय हुई द्य मजदूर दल को 155 स्थान मिले और उदार दल को केवल 361 मैक्डॉनल्ड ने त्याग–पत्र दे दिया और स्टेनली बाल्डविन दूसरी बार प्रधानमन्त्री बना।

बाल्डविन का द्वितीय मन्त्रिमण्डल सामान्य हड़ताल –

बाल्डविन का मन्त्रिमण्डल 5 वर्ष तक रहा। उसने मेंक्डॉनल्ड की नीति का परित्याग करके संरक्षण की नीति अपनायी परन्तु उसका आरम्भ कोयले के उद्योग में हुआ। युद्ध – काल में कोयले की माँग बहुत थी और खानों में खूब काम हो रहा था, परन्तु युद्ध के बाद देश के अन्दर कारखानों की माँग कम हो गयी और बाहर की माँग तो प्रायः समाप्त हो गयी। अतः कई खानें बन्द हो गयीं और हजारों मजदूर बेकार हो गए, कठिनाई बढ़ी और मई, 1926 में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। ट्रेड यूनियनों ने उनकी सहायता की और उनके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए यातायात (रेलवे आदि), छापाखानों तथा खानों आदि के मजदूरों ने भी हड़ताल कर दी और इस प्रकार हड़ताल का मनोवांछित फल नहीं निकला। सरकार ने जनता से सहायता की प्रार्थना की और हजारों स्वयंसेवकों ने हड़तालियों का काम सँभाल कर उन्हें विफल कर दिया। आम हड़ताल तो नौ दिन में ही टूट गयी । परन्तु कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों की हड़ताल 6 महीने तक चलती रही। अन्त में जाड़ा आने पर उन्हें भी दबना पड़ा और मालिकों की (कम वेतन और अधिक काम की) शर्तों को समझकर करके उन्होंने हड़ताल समाप्त कर दी। इस संकट का तात्कालिक परिणाम तो प्रतिक्रियावादी हुआ, यद्यपि यह अल्पकालीन ही रहा। संसद ने एक एक्ट (ज्तंकम क्पेचनजमे ।बज) पारित करके हड़ताल को गैर–कानूनी घोषित कर दिया, पिकेटिंग का निषेध कर दिया और ट्रेड यूनियन के कामों पर भी कई प्रकार के नियन्त्रण लगा दिये । इस प्रतिक्रियावादी लहर में अनुदार लोगों ने लॉर्ड–सभा को उन अधिकारों में से जो 1911 में छीन लिये गये थे, कुछ अधि ाकार वापस देने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका घोर विरोध होने पर उन्हें अपना इरादा छोड़ना पड़ा। जैसा हम अभी कह चुके हैं, यह प्रतिक्रियावादी लहर अल्पकालीन रही। 1928 में संसद ने स्त्रियों को भी उन्हीं शर्तों पर मताधिकार दे दिया जिन पर पुरूषों को प्राप्त था, और इस प्रकार स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार देकर संविधान को पूर्णतया प्रजातन्त्रीय बना दिया।

द्वितीय मजदूर सरकार

अगले वर्ष (1929) में संसद का चुनाव हुआ जिसमें मजदूर दल को सबसे अधि ाक (289) स्थान मिले। अनुदार दल की स्थिति गिर गयी । उसे केवल 259 स्थान प्राप्त हुए और उदार दल को 58 स्थान मिले। बाल्डविन ने त्याग–पत्र दे दिया और रेमजे मैक्डॉनल्ड ने द्वितीय मजदूर मन्त्रिमण्डल बनाया । (1929–1931)। पार्लियामेण्ट में अपना अजेय बहुमत न होने के कारण उसे फिर भी उदार दल का समर्थन लेना पड़ा। इस बार भी वह आर्थिक समस्याओं को हल करने में सफल नहीं हो सका और दुर्भाग्यवश 1931 में उसे विश्वव्यापी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा, जिससे इंग्लैण्ड की बैंकिग व्यवस्था में बड़ी अस्थिरता आ गयी, सरकारी बजट में घाटा होने लगा और देश के आर्थिक क्षेत्र में बड़ा आतंक छा गया। उसके अर्थ मंत्री स्नीडन ने सरकारी व्यय और बेकारों को दी जाने वाली सहायता में कमी करने का प्रस्ताव किया। मैक्डॉनल्ड ने तो उसका समर्थन किया परन्तु इस प्रश्न पर मजदूर दल में फूट पड़ गयी । मन्त्रिमण्डल

के अधिकांश सदस्यों ने भी उसका समर्थन करना अस्वीकर कर दिया। इस पर मैक्डॉनल्ड ने अनुदार और उदार दल से उस राष्ट्रीय संकट में उसकी सहायता करने और सम्मानित मंत्रिमण्डल बनाने का प्रस्ताव किया। अनुदार दल वाले और कुछ उदार दल वाले राजी हो गए। मैक्डॉनल्ड ने समस्त
मंत्रिमण्डल का त्याग–पत्र दे दिया और एक नये राष्ट्रीय (छंजपवद ब्वंसपजपवद) मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया (अगस्त 1931), जिसमें
जिसमें कुछ मजदूर दल के और कुछ उदार दल के परन्तु अधिकांश मन्त्री अनुदार दल के थे । अनुदार दल के नेता बाल्डविन ओर नेविन चेम्बरलेन इस मंत्रिमण्डल में शमिल थे।

राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल

राष्ट्रीय मंत्रिमण्डल को अपनी सारी शक्ति आर्थिक संकट का मुकाबला करने में लगानी पड़ी। कर बढ़ाये गये और सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कमी की गयी। उसने पौण्ड का सोने से सम्बन्ध तोड़ दिया (सितम्बर, 1931) जिससे पौण्ड का मूल्य गिर गया, इंग्लैण्ड संसार के बाजारों में अन्य देशों से जिन्होंने पहले ही अपनी मुद्रा का मूल्य गिरा रखा था, बराबरी से मुकाबला कर सका और ब्रिटिश व्यापार को प्रोत्साहन मिला, इससे देश में पुनः विश्वास लौट आया। यह देखकर मैक्डॉनल्ड ने अपनी राष्ट्रीय सरकार की नीति के लिए जनता का अनुमोदन प्राप्त करने हेतु संसद का नया निर्वाचन कराया जिसमें राष्ट्रीय सरकार के समर्थकों को 615 में से 493 स्थान प्राप्त हुए। मैक्डॉनल्ड पुनः प्रधानमन्त्री बना, बॉल्डविन उप–प्रधानमंत्री हुआ, नेबिल चेम्बरलेन अर्थ – मंत्री नियुक्त हुआ, जॉन साइमन विदेश मंत्री बनाया गया । मैक्डॉनल्ड प्रधानमंत्री तो था परंतु वास्तव में संसद और मंत्रिमण्डल दोनों में अनुदार दल का प्राधान्य था । पार्लियामेण्ट में अनुदार दल के 327 सदस्य थे। 1931 से 1939 तक ब्रिटिश सरकार अनुदार एवं राष्ट्रीय रही । नाम के लिए तो वह सम्मिलित (ब्वंसपजपवद) सरकार थी परन्तु वह वास्तव में अनुदार – दलीय थी। जिस प्रकार युद्ध–काल में अनुदार दल ने उदार – दलीय लॉर्ड जॉर्ज को अपने मंत्रिमण्डल में सम्मिलित कर लिया था, उसी प्रकार अब उन्होंने मजदूर – दलीय मैक्डॉनल्ड को अपने साथ ले लिया और 1935 तक मैक्डॉनल्ड के नेतृत्व 1935 से 1937 तक बाल्डविन के नेतृत्व में और उसक आगे नेविल चेम्बरलेन के नेतृत्व में सरकार द्वारा अनुदार एवं राष्ट्रीय नीति का करीब–करीब परित्याग करके संरक्षण – नीति अपना ली गयी और अनेक वस्तुओं पर भारी आयात कर लगाये गये। इसके साथ ही ब्रिटिश डॉमीनियनों के व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए ओटाबा की इम्पीरियल कॉन्फ्रेंस में उसने उनके मुकाबले में अन्य देशों से आयात पर अधिक ऊँचे कर लगाना स्वीकार किया। सन् 1934 तक विश्व में सर्वत्र आर्थिक संकट प्रायः समाप्त हो चुका था। कुछ तो उसके प्रभाव से और कुछ उपर्युक्त उपायों से राष्ट्रीय सरकार इंग्लैण्ड की आर्थिक दशा सँभाल सकी परन्तु 1935 से यूरोप के वातावरण में अशान्ति छाने लगी और जर्मनी की सैनिक नीति के कारण सभी देश शस्त्रास्त्र बढ़ाने लगे। इंग्लैण्ड ने महायुद्ध की समाप्ति के

बाद अपनी सैन्य शक्ति बहुत घटा ली थी, परन्तु कुछ वर्षों से उसने अपनी थल सेना तथा जल–सेना के व्यय में वृद्धि करना आरम्भ कर दिया था। अब उसमें और भी वृद्धि की गयी। इससे सरकार के व्यय में भारी वृद्धि होने लगा। इसके साथ ही, अभी तक बेकारों की सहायता के लिए भी काफी व्यय हो रहा था । इस व्यय के भार को कुछ तो, जैसा हम अभी लिख चुके हैं, गोल्ड स्टैण्ड का परित्याग करके और कुछ संयुक्त राज्य की ऋण की किस्त देना बन्द करके सरकार ने कम करने का प्रयत्न किया।

साम्यवाद और फासिज्म

युद्धोत्तर – काल के अधिकांश में, जैसा अभी तक प्रकट हो गया होगा, और सबसे अधिक संकटमय समय में इंग्लैण्ड में अनुदार दल के प्राधान्य रहा । उदार दल इस समय निर्बल पड़ गया था और अनुदार दल का विरोध करने वाला मुख्य दल मजदूर दल था। मैक्डॉनल्ड और उसके साथियों (छंजपवदंस स्ंइमतपजमे) के पृथक हो जाने से मजदूर दल की क्षति तो अवश्य पहुँची थी और वह कुछ निर्बल भी हो गया था, परन्तु यह निर्बलता अल्पकालीन थी और देश में अनुदारवाद का विरोध अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि इंग्लैण्ड में क्रांति या अधिनामकतन्त्र की तैयारी हो रही थी। इतना तो अवश्य था कि युद्धोत्तर काल में इंग्लैण्ड में पार्लियामेण्टरी शासन की असाधारण मात्रा में आलोचना होती रही। एक ओर तो कुछ मजदूर लोग और कुछ बुद्धिजीवी लोग रूसी ढंग के साम्यवाद का समर्थन कर रहे थे, और दूसरी ओर, एक व्यक्ति सर ओस्वाल्ड मोजले ;पत व्ेूंसक डवेसमल) जो कभी अनुदारवादी और कभी उग्र मजदूर दलीय रह चुका था, फासिज्म से प्रभावित होकर संसद तथा यहूदियों के विरुद्ध प्रचार कर रहा था और काली कुर्ती वालों का एक दल संगठित कर रहा था परन्तु साम्यवादियों की संख्या इंग्लैण्ड में अधि ाक नहीं थी और मोजले का कोई विशेष प्रभाव नहीं था उसका

और उसके साथियों का जनता मजाक उड़ाती थी। इन लोगों को जो इतनी कम सफलता प्राप्त हुई, वह इस बात का प्रमाण है कि इंग्लैण्ड की जनता में जनतंत्र के प्रति अगाध भक्ति थी । इंग्लैंड के बहुसंख्यक लोग या तो अनुदार दल के अथवा मजदूर दल के समर्थक थे और दोनों ही दल अपने देश की परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं को बनाये रखना चाहते थे।

पंचम जॉर्ज की मृत्यु के पहले ही 1935 में मैक्डॉनल्ड ने त्याग–पत्र दे दिया था

और उसके स्थान पर बाल्डविन तीसरी बार प्रधानमंत्री बन चुका था, वह 1937 तक प्रधानमंत्री रहा। उसके बाद जेलिव चेम्बरलेन प्रधानमंत्री बना। इन दोनों के समय में यूरोप की राजनीति अत्यन्त अशान्त रही और सरकार का ध्यान अधिकतर यूरोप के झमेलों में लगा रहा।

परराष्ट्र नीति

महायुद्ध की समाप्ति के बाद इंग्लैण्ड के लिए सबसे बड़ा काम मित्र राष्ट्रों से मिलकर पराजित राष्ट्रों के साथ संधि करना और यूरोप की नवीन व्यवस्था करना था। लॉयड जॉर्ज ने 1918 के सामान्य निर्वाचन के आरम्भ में घोषणा की थी कि हमारा प्रथम कार्य न्यायपूर्ण एवं स्थाई शान्ति की संधि करना और यूरोप का इस प्रकार नव–निर्माण करना है कि भविष्य में कभी युद्ध की आवश्यकता न पड़े।

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि लॉयर्ड जॉर्ज की नीति से दोनों उद्देश्य पूरे नहीं हुए। वर्साय के संधि न्यायपूर्ण नहीं हुई और यूरोप की व्यवस्था भी ऐसी हुई, जिससे 20 वर्ष बाद ही द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। इस अनर्थ का दायित्व बहुत कुछ अंशों में इंग्लैण्ड की परराष्ट्र नीति पर था ।

अव्यवस्थित नीति

वर्साय के बाद इंग्लैण्ड के समक्ष सुरक्षा की प्राप्ति के लिए केवल दो उपाय थे–यूरोपीय अथवा विश्व–संतुलन की नीति का परित्याग करके सामूहिक सुरक्षा के लिए राष्ट्र संघ का पूर्ण समर्थन करना या यूरोप में सबल राष्ट्र के विरुद्ध निर्बल राष्ट्रों की सहायता देने की परम्परागत नीति का अवलम्बन करना । इंग्लैण्ड को सामूहिक सुरक्षा में बिल्कुल विश्वास नहीं था। उस नीति के पालन में उसे अपने कन्धों पर बड़ी भारी जिम्मेदारियाँ लेनी पड़ती जिसके लिए वह तैयार नहीं था। दूसरी नीति के पालन के लिए वर्साय – संधि की सैनिक धाराओं पर अमल करना जर्मनी के पुनः सैन्यीकरण को रोकना और ऐसा सम्भव न होने पर फ्रांस तथा लघु मैत्री के राष्ट्रों को पूर्ण सहायता देना तथा जर्मनी पर रुकावट डालने के लिए रूस से सहयोग करना आवश्यक था परन्तु इंग्लैंड ने इन दोनों नीतियों में से किसी को भी नहीं अपनाया । उसने बड़ी अनिच्छापूर्वक राष्ट्र संघ का समर्थन किया और बाद में उसे धोखा दिया। उसने फ्रांस के विरुद्ध जर्मन गणतन्त्र का और बाद में नात्सी जर्मनी का समर्थन किया तथा रूस को रुष्ट कर दिया।

साम्यवाद का भय

जैसा हम देख चुके हैं, यह नीति आत्मघाती थीं। इसका कारण यह था कि राष्ट्र संघ के अन्तर्गत सामूहिक सुरक्षा और सहयोग में ब्रिटिश जनता का विश्वास होते हुए भी इंग्लैण्ड का अनुदार दल इन सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता था। दोनों युद्धों के बीच के काल में कुछ वर्षों के अतिरिक्त इसी दल के हाथ में सत्ता रही। उसकी धारणा थी कि भविष्य में यूरोप में जर्मनी और रूस तथा एशिया में रूस और जापान ही बड़े राज्य होंगे। वह रूस के साम्यवाद को अपने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के लिए बड़ा खतरनाक समझता था और चाहता था कि

पश्चिम में जर्मनी (और इटली) और पूर्व में जापान रूस पर आक्रमण करके उसे समाप्त कर दें। अतः वह जर्मनी और जापान को सहायता देता रहा और पूर्वी यूरोप के उसके मित्रों को 'सहायता देने से रोकता रहा । यह भी सम्भव था कि ये तीनों शक्तियाँ रूस को परास्त करने के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के लिए खतरनाक बन जायें परन्तु उसे यह खतरा साम्यवाद के खतरे के समक्ष तुच्छ दिखाई देता था। इस प्रकार सारतः साम्यवाद के खतरे को दूर रखना ही ब्रिटिश पर राष्ट्र नीति का मूल मंत्र था।

जर्मनी से सहानुभूति – फ्रांस की नाराजी

जर्मनी से सहानुभूति के अन्य कारण भी थे। यह बात इंग्लैण्ड के हित में नहीं थी कि यूरोप में फ्रांस ही एकमात्र शक्तिशाली राज्य रह जाये । अतः उसने पेरिस के शान्ति सम्मेलन में जर्मनी को खण्ड–खण्ड हो जाने से बचाने का प्रयत्न किया। इंग्लैण्ड व रूस से फ्रांस नाराज था। संधियाँ हो जाने के बाद शीघ्र ही फ्रांस और इंग्लैण्ड में मतभेद हो गया और इंग्लैण्ड की नीति स्पष्टतः जर्मनी के पुनरूत्थान की समर्थक बन गयी। इसके कई कारण थे। सर्वप्रथम अंग्रेज भूलने तथा क्षमा करने के लिए स्वभाव से तैयार रहता है, और इसके साथ ही वह अपने मित्रों और अपने साथ किये हुए उपकारों को भी सरलता से भूल जाता है । द्वितीय, फ्रांस अपनी सुरक्षा के लिए जर्मनी की ओर से चिन्तित था और उसे सदैव निर्बल ही देखना चाहता था। इसके विपरीत, इंग्लैण्ड का हित इसमें था कि जर्मनी का शीघ्रातिशीघ्र पुनरूत्थान हो जाये ताकि वह उसके साथ फिर से व्यापार कर सके । तृतीय सुरक्षा के विषय में दोनों के विचार बिल्कुल भिन्न थे। इंग्लैण्ड युद्ध से सुरक्षा चाहता था अर्थात् युद्ध को रोकना चाहता था। वह उन शिकायतों को दूर करना चाहता था जिनके कारण युद्ध होने की सम्भावना हो सकती थी। वह शस्त्रास्त्रों में कमी करना चाहता था कि युद्ध या शस्त्रास्त्र – प्रतियोगिता न हो और युद्ध का डर मिट जाये परन्तु फ्रांस युद्ध के समय सुरक्षा चाहता था अर्थात् अपने पक्ष को इतना सुदृढ़ बनाना चाहता था कि युद्ध छिड़ने पर उसकी पराजय न हो सके। इसलिए वह वर्साय की संधि ा में, जिसे वह किसी अंश तक अपनी सुरक्षा की गारण्टी समझता था, लेसमात्र भी संशोधन नहीं चाहता था और जर्मनी से बलपूर्वक उसका पूर्णतया पालन कराना चाहता था। इंग्लैण्ड झगड़ा मिटाने तथा युद्ध की आशंका को रोकने के लिए समझौते की बातचीत द्वारा संधि में संशोधन चाहता था। इंग्लैण्ड और फ्रांस के मनोमालिन्य का इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण दूसरा कोई नहीं था। अन्त में, क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध समझता था। जिस प्रकार शत्रु को उदारतापूर्वक क्षमा किया जा सकता है और उसका दण्ड कम किया जा सकता है उसी प्रकार वह क्षतिपूर्ति की राशि में कमी कराना चाहता था परन्तु फ्रांस ने क्षतिपूर्ति का शाब्दिक अर्थ ग्रहण कर रखा था। जर्मनी ने उसकी हानि की थी और उसकी पूर्ति करना उसका कर्त्तव्य था । क्षतिपूर्ति की राशि में कमी करना उसे अन्याय दिखायी देता था। इस प्रकार इंग्लैण्ड का रूख जर्मनी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था और इस कारण आरम्भ से ही दोनों में मतभेद हो गया। जब 1923 में फ्रांस ने

जर्मनी पर दबाव डालने के लिए रूर– प्रदेश पर आक्रमण किया तो इंग्लैण्ड ने उसका विरोध किया ।

फ्रांस को प्रसन्न करने का प्रयत्न

इतना होते हुए भी वह फ्रांस को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। फ्रांस जर्मनी की ओर से आक्रमण होने की दशा में इंग्लैण्ड से सैनिक सहायता की गारण्टी चाहता था। इस पर जनवरी, 1922 में लॉयर्ड जॉर्ज ने उसे सहायता की गारण्टी दी परन्तु फ्रांस का आग्रह था कि उसक साथ एक सैनिक समझौता भी हो जिसमें यह स्पष्ट कर दिया जाये कि इंग्लैण्ड क्या सहायता देगा। इंग्लैण्ड की सरकार इस प्रकार वचनबद्ध होना नहीं चाहती थी। अतः उसने गारण्टी वापस ले ली। इंग्लैण्ड को जैसा हम देख चुके हैं, सामूहिक सुरक्षा में विश्वास नहीं था, फिर भी उसने फ्रांस का भय मिटाने के लिए जर्मनी को फ्रांस के साथ सुरक्षा संधि करने और राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जिसका परिणाम लोकान–संधि में प्रकट हुआ।

राष्ट्र संघ के प्रति उदासीनता

इंग्लैण्ड ऊपर से तो राष्ट्र संघ के आदर्श के प्रति श्रद्धा प्रकट करता रहा परन्तु आरम्भ से ही उसके कार्य ऐसे रहे जिससे राष्ट्र संघ में निर्बलता आने लगी। राष्ट्र संघ के निर्माण के लिए उत्तरदायी स्वयं लॉयर्ड जॉर्ज भी उसे केवल एक अलंकारिक संस्था समझता था। यूरोपीय झगड़ों में बीच–बचाव करने में वह राष्ट्र संघ के द्वारा काम करने की अपेक्षा सदैव या तो राजदूतों की समिति के द्वारा अथवा केन्स में, जीनोआ (जिनोबा में नहीं) में या अन्यत्र विशिष्ट सम्मेलन आमन्त्रित करके काम करना अधिक पसन्द करता था। जब 1923 में कॉर्फ्यू के विवाद में इटली ने राष्ट्र संघ की उपेक्षा की तो इंग्लैण्ड ने राष्ट्र संघ का साथ नहीं दिया और जैसा हम देख चुके हैं राजदूतों

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ेमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

219

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ेमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

220

की समिति द्वारा विवाद का निर्णय करके उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचायी। इसी प्रकार जब 1931 में जापान ने चीन के मंचूरिया प्रदेश पर आक्रमण किया और चीन ने राष्ट्र संघ के समक्ष विवाद प्रस्तुत किया तब भी इंग्लैण्ड के ही रूख के कारण राष्ट्र संघ जापान के विरुद्ध कुछ नहीं कर पाया। आगे चलकर जब हिटलर ने राष्ट्र संघ से सम्बन्ध–विच्छेद कर दिया और जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण की घोषणा करके वर्साय की संधि को भंग कर दिया तब भी

इंग्लैण्ड नेउसका कोई खास विरोध नहीं किया। इसी प्रकार जब 1934 में उसने ऑस्ट्रिया की सरकार को पलटने का प्रयत्न किया तब भी ऐसा ही हुआ। उन दिनों इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय सरकार थी जिसमें सर जॉन साइमन परराष्ट्र मंत्री था। उदार फ्रांस में लावाल परराष्ट्र – मंत्री के पद पर था । उन दोनों को आशा थी कि जब 1935 से सार – प्रदेश जर्मनी के पास चला जायेगा तो जर्मनी से समझौता हो सकेगा और वह फिर से राष्ट्र संघ में शामिल हो जायेगा । परन्तु यह आशा पूर्ण नहीं हुई । हिटलर का साहस बढ़ता गया जिसमें मुसोलिनी की सफलता ने और भी वृद्धि की ।

–

ऑस्ट्रिया पर हिटलर के असफल आक्रमण के बाद इंगलैंड के रूख में परिवर्तन होता हुआ प्रतीत हुआ । 1934 में इंग्लैण्ड में शान्ति के प्रश्न पर जनमत संग्रह (ठतपजपेी छंजपवदंस च्मंबम ठंससवज) हुआ जिसे प्रकट हुआ कि इंग्लैण्ड की बहुसंख्यक जनता सामूहिक सुरक्षा की समर्थक थी। उन्हीं दिनों मैक्डॉनल्ड ने त्याग–पत्र दिया और संसद का निर्वाचन हुआ । अपने पक्ष में बहुमत प्राप्त करने के लिए बाल्डविन ने कहा कि राष्ट्र संघ ब्रिटिश नीति का मूलाधार बना हुआ है। हम राष्ट्र संघ का समर्थन करने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। इंग्लैण्ड ने अप्रैल 1935 में इटली और फ्रांस के साथ मिलकर स्ट्रेसा सम्मेलन में हिटलर के विरूद्ध संयुक्त मोर्चा स्थापित किया, और जब अबीसीनिया पर इटली ने आक्रमण किया तो उसने राष्ट्र संघ में इटली का जोरदार विरोध भी किया । परन्तु यह सब दिखावा मात्र ही था। स्ट्रेसा की घोषणा के पहले ही वह जर्मनी से नाविक समझौता करके वर्साय संधि को भंग करने में उसे स्वयं सहायता दे
चुका था और इटली के विरुद्ध कार्यवाही करने में भी उसने शिथिलता दिखलायी ।

यह दिखावा भी शीघ्र समाप्त हो गया । हिटलर इंग्लेण्ड की कमजोरी को अच्छी तरह समझ चुका था । अब उसने निर्भीक होकर अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करना आरम्भ किया। उसने राइन– प्रदेश में अपनी सेना भेज दी, ऑस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया और अन्त में चौकोस्लोवाकिया को हड़प लिया, जिसमें स्वयं इंग्लैण्ड और फ्रांस ने भी सहायता दी।

चौकोस्लोवाकिया के विनाश के बाद अवश्य इंग्लैण्ड की आँखें खुली और उसने अन्य राज्यों से मिलकर हिटलर के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयत्न किया, पोलैण्ड रूमानिया, ग्रीस तथा टर्की को सहायता की गारण्टी दी और रूस से भी संधि करने का प्रयत्न किया, परंतु उस समय तक काफी देर हो चुकी थी। यदि चौकोस्लोवाकिया के विषय में इंग्लैण्ड और फ्रांस रूस से सहयोग करके हिटलर का मुकबला करते तो वह अवश्य रूक जाता। रूस से संधि न हो सकी। उसने जर्मनी से संधि कर ली।

से

रूस की सोवियत सरकार से तो, जैसा हम आम्भ में ही कह चुके हैं, इंग्लैण्ड रुष्ट था और उसके नाश की दृष्टि से ही वह जर्मनी तथा इटली का समर्थन

कर रहा था। क्रांति के तुरन्त बाद ही इंग्लैण्ड ने अन्य राष्ट्रों से मिलकर क्रांति – विरोधियों को सहायता दी थी और स्वयं उसकी सेना ने रूस पर आक्रमण भी किया था। केवल 1924 में कुछ दिनों के लिए मैक्डॉनल्ड की प्रथम मजदूर सरकार के समय में रूस कुछ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो सके थे, परन्तु उसके बाद इंग्लैण्ड की अनुदार सरकार ने उसक साथ अपने सम्बन्ध सुधारने या सामूहिक सुरक्षा के लिए उसका सहयोग प्राप्त करने को कोई प्रयत्न नहीं किया, यद्यपि रूस दोनों बातों के लिए तैयार था। चौकोस्लोवाकिया के विषय में रूस सैनिक सहायता देने को तैयार था परन्तु इंग्लैण्ड ने उससे परामर्श तक नहीं किया। अन्त में जब उसने रूस से संधि करने का प्रयत्न किया उस समय भी उसका दिल साफ नहीं था। उन्हीं दिनों वह छिपे – छिपे हिटलर से भी समझौता करने का प्रयत्न कर रहा था।

सुदूर–पूर्व में

सुदूर–पूर्व में भी इंग्लैण्ड की नीति वैसी ही निर्बल रही जैसी यूरोप में थी । इंग्लैण्ड का हित इसी में था कि चीन अखण्ड और स्वतन्त्र बना रहे। संयुक्त राज्य जापान के अत्यधिक उत्कर्ष को सहन नहीं कर

सकता था। यदि इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य, दोनों मिलकर आरम्भ में ही जापान को रोकने का प्रयत्न करते तो मंचूरिया में उसका आक्रमण रोका जा सकता था, परन्तु इंग्लैण्ड ने इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किया। सुदूर–पूर्व में तो इंगलैण्ड ने अत्यधिक कायरता दिखलायी। जापानी लोग अंग्रेजों का अपमान करते रहे, परन्तु चेम्बरलेन उसको सहन करता रहा ।

–

इस प्रकार युद्धोत्तर काल में इंग्लैण्ड की परराष्ट्र नीति बढ़ी परन्तु स्वयं उसके तथा यूरोप के लिए घातक रही। यूरोप में प्राधान्य के भय से और ब्रिटिश शासक वर्ग के हितों को बॉल्शेविज्म की ओर से खतरा देखकर, इंग्लैण्ड न जर्मनी को उस सीमा तक बढ़ जाने दिया जहाँ वह स्वयं इंग्लैण्ड और फ्रांस की सुरक्षा के लिए खतरनाक हो गया। अपनी निर्बल नीति के कारण ही उसने इटली को भूमध्य सागर में और जापान को पूर्व में अत्यधिक शक्तिशाली हो जाने दिया और अपने साम्राज्य की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया । यदि जर्मनी के साथ किये हुए अन्याय का प्रतिकार करके इंग्लैण्ड और फ्रांस राष्ट्र संघ के द्वारा सामूहिक रक्षा के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करते तो विश्व को द्वितीय विश्व–युद्ध न देखना पड़ता ।

ब्रिटिश साम्राज्य

महायुद्ध का प्रभाव

–

प्रथम महायुद्ध का ब्रिटिश साम्राज्य पर काफी प्रभाव पड़ा । उसक फलस्वरूप इंगलैण्ड तथा साम्राज्य के अन्य प्रदेशों के पारस्परिक सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। युद्ध के आरम्भ में कोई नहीं कह सकता था कि साम्राज्य पर

उसका क्या प्राभाव होगा और साम्राज्य के विभिन्न भाग इंग्लैण्ड का कहाँ तक साथ देंगे, परन्तु इंग्लैण्ड ने जो साम्राज्यवादी नीति अपना रखी थी उसका युद्ध में औचित्य सिद्ध हो गया और आयरलैण्ड तथा दक्षिण अफ्रीका व ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति का प्रमाण प्राप्त होने के साथ ही इस महायुद्ध के फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में भी वृद्धि हुई। जैसा हम देख चुके हैं, राष्ट्र संघ ने इंग्लैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड को टर्की और जर्मनी के साम्राज्य के अनेक भागों का शासन आदेश के रूप में अपनी ओर से सौंपा।

युद्धकालीन साम्राज्य – मंत्रि–परिषद

किन्तु महायुद्ध का सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव परोक्ष था। युद्ध के पहले साम्राज्य की विदेश नीति का निर्धारण इंग्लैण्ड की सरकार करती थी और इसी परिणामस्वरूप समस्त साम्राज्य अपने आप ही युद्ध में शमिल हो गया था परन्तु 1915 से ही डॉमिनियनों के मंत्री उन पर प्रभाव डालने वाली नीतियों के निध ार्रण में भाग लेने की माँग करने लगे। इंग्लैण्ड ने इस माँग पर विचार करके दिसम्बर 1916 में एक युद्धकालीन साम्राज्य मंत्रि–परिषद (प्उचमतपंस ॅत ब्इप. दमज) का निर्माण किया, जिसमें समस्त डॉमिनियनों और भारतवर्ष के प्रतिनिधि ि ा आमन्त्रित किये गये। इसके पहले भी 1887 से साम्राज्य की सामान्य समस्याओं पर परामर्श करने के लिए समय–समय पर साम्राज्य – सम्मेलन होते रहते थे, परन्तु संविधानिक दृष्टि से यह कैबिनेट उन सम्मेलनों से भिन्न थी । यह 6 समकक्ष राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक समिति थी जिसमें इंग्लैण्ड का प्रध ाानमंत्री अध्यक्ष का पद ग्रहण करता था ।

डॉमिनियन – स्वराज्य

.

युद्ध समाप्ति पर शान्ति सम्मेलनों में इंग्लैण्ड के प्रतिनिधियों के साथ डॉमिनियनों तथा भारतवर्ष के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए और सभी राष्ट्र संघ के सदस्य भी बन गये। आगे चलकर धीरे – धीरे डॉमिनियनों की स्वतन्त्रता अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी। वे संसार के विभिन्न राज्यों में अपने–अपने राजदूत रखने लगे और विदेश नीति में भी स्वतंत्रता का व्यवहार करने लगे। लोकानों–संधि को इंग्लैण्ड ने स्वीकार किया परन्तु डॉमिनियिनों का दर्जा बढ़ने लगा और स्थिति को स्पष्ट करने तथा संविधानिक रूप देने के लिए बाल्फौर के नेतृत्व में 1926 में एक साम्राज्य – सम्मेलन किया गया। उसमें साम्राज्य के संविधान पर विचार हुआ और एक घोषणा (ठंसविनत क्मबसंतंजपवद) द्वारा समस्त डॉमिनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वेच्छा से शामिल, क्राउन के प्रति सामान्य भक्ति से परस्पर सम्बद्ध और ग्रह एवं बाह्म नीति में एक–दूसरे से स्वतंत्र परस्पर समकक्ष, स्वायत्तशासी राष्ट्र स्वीकार कर लिये गये। सन् 1930

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

221

पश्चिमी विश्व
छव्ज्नै
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
डमज
222

से 1931 में यह स्थिति और भी स्पष्ट कर दी गयी और ब्रिटिश साम्राज्य का नाम बदलकर ब्रिटिश कॉमनवेल्थ ऑफ नेशन्स रख दिया गया। सन् 1931 के स्टेट्यूट ऑफ वेस्टमिन्स्टर ([जंजनजम व ि मेजउपदेजमत) के अनुसार सभी डॉमिनियन सब प्रकार से स्वतंत्र और इंग्लैण्ड के समकक्ष हैं। डॉमिनियनों को तो इस प्रकार स्वतन्त्रता मिल गयी परन्तु साम्राज्य के अन्य उपनिवेश तथा अध ीनस्थ प्रदेशों को स्वतन्त्रता नहीं मिली। उनमें से कई भागों में विशेषकर भारतवर्ष और इजिप्ट में वहाँ के निवासियों को अपनी स्थिति से बड़ा असंतोष था और वहाँ स्वराज्य के लिए आन्दोलन होने लगा ।

आयरलैण्ड

डॉमिनियनों में भी आयरिश फ्री स्टेट की अपनी स्थिति असन्तुष्ट थी । प्रथम महायुद्ध के पहले अल्स्टर के प्रान्त के अतिरिक्त शेष आयरलैण्ड को स्वराज्य देने की व्यवस्था की गयी थी परन्तु उसका विरोध हुआ था और इतने में ही महायुद्ध छिड़ गया था। अतः वह व्यवस्था स्थगित कर दी गयी थी । महायुद्ध के दौरान 1916 में आयरलैण्ड में विद्रोह भी हुआ था परन्तु उसका दमन कर दिया गया था। युद्ध की समाप्ति पर इस समस्या को हल करना आवश्यक हो गया और दिसम्बर 1921 से सिनफिन दल के नेताओं तथा ब्रिटिश सरकार के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार अल्स्टर के अतिरिक्त शेष आयरलैण्ड को आयरिश फ्री स्टेट के नाम से डॉमिनियन का पद प्राप्त हुआ परन्तु सिनफिन दल के उग्र सदस्यों को यह व्यवस्था, जिसके अनुसार आयरलैण्ड का अंग–भंग हो गया था और वह ब्रिटिश साम्राज्य का भाग बना हुआ था, पसन्द नहीं आयी। उसका नेता डी बेलेरा था। वह नरम मिनफिन नेताओं का विरोध करता रहा। इन दोनों पक्षों में संघर्ष चलता रहा और कुछ दिनों तक तो आयरलैण्ड में एक भयंकर गृह–युद्ध चलता रहा। डीबेलनरा तथा उसके अनुयायी आयरिश संसद का वर्षों तक बहिष्कार करते रहे। अन्त में देश में जनमत उनका समर्थन करने लगा। यह देखकर डी–बेलरा और उसके अनुयायी राजनीतिक जीवन में भाग लेने लगे (1927) और शीघ्र ही संसद में बहुमत प्राप्त करके शासन अपने हाथों में लेने में सफल हो गये (1932)। उस वर्ष डी बेलेरा शासन का अध्यक्ष बन गया और उसने प्रेजीडेण्ट की पदवी धारण की। उसने अगले वर्ष इंग्लैण्ड के बादशाहों के प्रति भक्ति की शपथ ली तथा गवर्नर–जनरल के पद का अन्त करके इंग्लैण्ड से सांविधानिक सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। आगे चलकर (1937) उसने नये संविधान का निर्माण किया और आयरिश फ्री स्टेट के डॉमिनियन के स्थान पर आयर (म्पतम) के स्वतंत्र एवं पूर्ण संप्रभुत्व–युक्त राज्य की घोषणा

की। इस प्रकार आयरलैण्ड की स्वतंत्रता का युद्ध जो शताब्दियों से चला आ रहा था, समाप्त हुआ, परन्तु अल्स्टर फिर भी उससे लग रहा और बिटिश द्वीप समूह का भाग बना
रहा।

भारतवर्ष

महायुद्ध के दौरान भारतवर्ष में स्वशासन की माँग बढ़ रही थी और लोकमान्य तिलक तथा ऐनी बेसेण्ट के नेतृत्व में स्वराज्य के लिए आन्दोलन भी आरम्भ हो गया था। इंग्लैण्ड को भारतवर्ष से युद्ध में बहुमूल्य सहायता मिल रही थी और सरकार को अधिक सहायता की आवश्यकता थी। इस कारण भारतवासियों को सन्तुष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार भारत–सचिव मॉण्टेग्यू ने अगस्त, 1917 में घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की नीति शासन के प्रत्येक विभाग में भारतवासियों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने और स्वशासन सम्बन्धी संस्थाओं का सामान्य विकास करने की है ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवर्ष में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित हो सके। इस घोषणा के बाद माण्टेग्यू भारतवर्ष पहुँचा और तत्कालीन वामसराय चेम्सफोर्ड के साथ भारतवर्ष का भ्रमण करके उसने दोनों के परामर्श से एक रिपोर्ट (डवदजंहनम–त्मचवतज) प्रस्तुत की जिसमें भारतवर्ष के प्रान्तों में निर्वाचित विधानसभाओं की स्थापना करने और प्रान्तीय शासन के कुछ विभागों का प्रबन्ध विधानसभाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंपकर द्वैध शासन (क्लंतबील) स्थापित करने की सिफारिश की। केन्द्रीय सरकार में विधानसभा का विस्तार करने और उसे कुछ विशेष अधिकार देने के अतिरिक्त किसी खास परिवर्तन की सिफारिश नहीं की गयी ।

इस रिपोर्ट के आधार पर संसद ने 1919 में कानून बनाकर 1920 में नया संविध ाान लागू किया। कुछ लोगों ने इसका समर्थन किया परन्तु भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने उसका विरोध किया और निर्हिनतापूर्वक काम नहीं हो सका। 1921 में भारत में गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ जिसने
}

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को सही अर्थों में राष्ट्रीय – जन–संग्राम में परिवर्तित कर दिया। 1927 में ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष की स्थिति पर विचार करने के एक कमीशन नियुक्त किया जिसने 1930 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । परन्तु भारतवर्ष में सभी दलों ने कमीशन का बहिष्कार किया था और असंतोष बढ़ रहा था। इस असंतोष नहीं 1930–34 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन को जन्म दिया यह देखकर सरकार ने भारतीय समस्या पर पूर्ण रूप से विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार, ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की लन्दन में गोलमेज – सभाएँ की (1930–32) । इन सभाओं की सिफारिशों के आधार पर संसद ने 1935 में एक एक्ट पारित किया जिसके अनुसार प्रान्तों में गवर्नरों के विशेषाधिकारों के साथ पूर्ण स्वराज्य की व्यवस्था की गयी और समस्त भारतवर्ष

(देशी राज्यों सहित) के लिए संघ शासन की व्यवस्था की गयी और जिसमें वायसराय के हाथों में कुछ महत्वपूर्ण विषयों (रक्षा विदेश नीति आदि) के अतिरिक्त शेष विषयों को केन्द्रीय विधानसभा के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंपने का निर्णय किया गया। 1937 में प्रान्तों में तो नया संविधान लागू हो गया, परन्तु देशी राजाओं ने सम्मिलित होने में विलम्ब किया। अतएव केन्द्र में कोई परिवर्तन नहीं हो सका। 1939 में द्वितीय विश्व–युद्ध छिड़ जाने से संविध् ाान का केन्द्र सम्बन्धी भाग स्थगित कर दिया गया। नये संविधान का एक परिणाम यह हुआ कि वह भारतवर्ष से पृथक हो गया।

इजिप्ट

भारतवर्ष का स्वतन्त्रता आन्दोलन तो द्वितीय विश्व–युद्ध के पूर्व तक पूर्णतया सफल नहीं हुआ, परन्तु इजिप्ट को सफलता मिली। इजिप्ट पहले टर्की के साम्राज्य का भाग था। 1882 से वहाँ अंग्रेजों ने अपना प्राधान्य जमा लिया था और महायुद्ध के आरम्भ में ही उसे अपने साम्राज्य का एक संरक्षित प्रदेश घोषित कर दिया था। युद्ध की समाप्ति के बाद वहाँ स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन छिड़ गया जिसके परिणामस्वरूप 1922 में स्वेज नहर तथा इजिप्ट के अन्दर ब्रिटिश संचार – सांधनों (ब्वउउनदपबंजपवद) के संरक्षण के लिए कुछ नियन्त्रणों से बड़ा असंतोष हुआ, क्योंकि उनके कारण इजिप्ट में अंग्रेजी सेना रहती थी जिससे उनकी स्वतन्त्रता केवल दिखावटी ही रह गयी थी। इस कारण वर्षों तक गड़बड़ी होती रही। अन्त में 1936 में एक संधि की गयी जिसके अनुसार इंग्लैण्ड ने स्वेज नहर की रक्षा के अधिकार के बदले में काहिरा तथा अलेक्जेण्ड्रिया से अपनी सेना हटा लेने का वचन दिया और इजिप्ट ने अपनी परराष्ट्र – नीति को इंग्लैण्ड के अनुकूल रखना स्वीकार किया। सूडान में जैसी स्थिति थी वैसा ही बनी
रही।

इराक

जैसा हम बतला चुके हैं, महायुद्ध के बाद राष्ट्र संघ ने मेसोपोटामिया के शासन का भार इंग्लैण्ड को सौंपा था। 1921 में एक अरब सरदार अमीर फैजल वहाँ का बादशाह नियुक्त किया गया और उसे भविष्य में स्वतंत्रता प्रदान करने का वचन इजिप्ट पर लगायी गयी थी उसी प्रकार की मर्यादाओं के साथ उसे स्वतन्त्र कर दिया गया। स्वतंत्र मेसोपोटामिया का नाम इराक रखा गया और 1932 में वह राष्ट्र संघ का सदस्य भी बना लिया गया।

पेलेस्टाइन

मेसोपोटामिया के समान पेलेस्टाइन के शासन का भार भी राष्ट्र संघ ने इंग्लैण्ड को सौंपा था । यहाँ अंग्रेजों को आरम्भ से ही बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की ओर संसार में सर्वत्र बिखरे हुए यहूदियों में पेलेस्टाइन में जहाँ के वे मूल निवासी थे, अपना राष्ट्रीय घर बसाने के लिए आन्दोलन हो रहा था । उस आन्दोलन के नेता डॉ. बीजमेन के दबाव में ब्रिटिश सरकार ने 1917 में एक घोषणा (ठंसविनत क्मबसंतंजपवद) द्वारा पेलेस्टाइन में

यहूदियों को राष्ट्रीय घर प्रदान करने का वचन दिया था। अब उसे अपना वचन निभाना पड़ा और उसने यूरोप तथा अमेरिका के यहूदियों को पेलेस्टाइन में बसने का निमन्त्रण दिया। यहूदी धनी थे । वे बड़ी संख्या में आकर पेलेस्टाइन में बसने लगे और अरबों से अनाप–शनाप भूमि खरीदने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अरबों के हाथों से बहुत–सी भूमि निकल गयी थी और बहुत से अरब भूमिहीन मजदूर बन गये । अरब लोगों को यह बहुत बुरा लगा और वे यहूदियों

पश्चिमी विश्व

छव्ज्रै

स्व–प्रगति की जाँच करें

8. जापान का अभ्युदय पर एक टिप्पणी लिखें।

9. बॉक्सर विद्रोह पर टिप्पणी लिखें।

10. रूस, जापान युद्ध के कारण लिखें

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

223

पश्चिमी विश्व

छव्ज्रै

का विरोध करने लगे। वे ब्रिटिश सरकार से भी बड़े रुष्ट हुए जिसने बाल्फोर – घोषणा में ही उनके नागरिक तथा धार्मिक अधिकारी को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाने का वचन दिया था, और युद्ध करके के दिनों में अरबों को स्वतन्त्र कर देने की भी प्रतिज्ञा की थी।

अरबों का असन्तोष बढ़ता रहा और 1929 में उसने यहूदियों के विरुद्ध विद्रोह का रूप धारण कर लिया। दोनों में लड़ाई–झगड़ा और मार–काट होने लगी। इंग्लैण्ड ने पेलेस्टाइन में आकर बसने वाले यहूदियों की संख्या में कमी करके और कभी–कभी उनका आना बिल्कुल बन्द करके अरबों का असंतोष कम करने का प्रत्यन किया, परन्तु व्यर्थ धीरे–धीर दलों में राष्ट्रीयता और धार्मिक कट्टरता की भावना बड़े उग्र रूप में व्याप्त हो गयी और तनाव बढ़ता रहा ।

अन्त में 1936 में ब्रिटिश सरकार ने इस झगड़े पर विचार करते हुए और उसका अन्त करने के लिए सुझाव देने के निमित एक कमीशन नियुक्त किया जिसने पेलेस्टाइन के विभाजन का प्रस्ताव दिया। उसने सिफारिश की कि पेलेस्टाइन का उत्तरी भाग यहूदी राज्य बना दिया जाये, दक्षिणी भाग अरबों का राज्य रहे और बीच का भाग जिसमें जेरूसलम, बेथलेहम आदि ईसाई तीर्थ स्थान हैं, ब्रिटिश प्रबन्ध में ही रहे । योजना का दोनों ओर से विरोध हुआ, अतः वह निरस्त कर दी गयी और एक नयी योजना संसद के समक्ष प्रस्तुत की गयी परन्तु इसी बीच द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया और यह मामला टल गया।

सारांश

यूरोप की इस संयुक्त व्यवस्था से अनेक लाभ हुए। इस समय यूरोप के इतिहास में शान्ति रही । युद्ध, बेकारी, भुखमरी आदि को रोकने के लिए अनेक देशों की जनता ने प्रयास किए। परंतु यह केवल उन्हीं देशों तक सीमित रही। उन प्रयासों ने किसी प्रकार के युद्ध का रूप धारण नहीं किया । मित्र मण्डल को ही उसका सम्पूर्ण श्रेय प्राप्त है। वास्तव में मित्र मण्डल की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग पर एक महत्वपूर्ण प्रयास था तथा यूरोप में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने में उसने सराहनीय सफलता प्राप्त की थी। इस प्रकार यूरोपीय व्यवस्था को राष्ट्रसंघ तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ का अग्रगामी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पूर्वी समस्या की व्याख्या विभिन्न यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने भिन्न प्रकार से की है। यह समस्या भिन्न–भिन्न रूप धारण करती रही है कभी बलकान प्रदेश को जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये और कभी यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थी के कारण इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। तुर्क साम्राज्य के पतन के बाद किसको तुर्क राज्य पर शासन करने को मान्य किया जाए । यह समस्या यूरोपीय राष्ट्रों के बीच बनी रहीं। रूसी राजनीतिज्ञ इसे गठिया रोग के समान मानते हैं जो कभी पैरों को जकड़ लेता है, तो कभी हाथों को आसक्त कर देता है। हेजन के अनुसार पूर्वी समस्या तुर्की के भाग्य की समस्या थी, प्रिंस विस्मार्क इस समस्या को तुच्छ एवं सारहीन मानता था । वह कहा करता था, सम्पूर्ण पूर्वी समस्या ओमेरनियां की एक हथगोलाधारी सैनिक के हड्डियों के मूल्य के बराबर भी नहीं है। लार्ड मार्ले के अनुसार यह समस्या विभिन्न जाति एवं धर्म की न समझ में आने वाली समस्या थी।

अलेक्जेण्डर, द्वितीय को भी अपने राज्य सुधार करने पड़े। एक इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है, उसके काल में विश्व में लड़े जाने वाले भीषण युद्ध में क्रीमिया युद्ध सबसे अधिक निरर्थक था।

इस साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का वर्णन करते–करते कही–कहीं हमने 1914 तक की घटनाओं की चर्चा की है। परन्तु मोटे तौर से यह औपनिवेशिक लूट उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक समाप्त हो चुकी थी और प्रायः समस्त अफ्रीका एवं एशिया का बहुत बड़ा भाग तथा प्रशान्त महासागर के समस्त द्वीप यूरोपीय सत्ताओं तथा संयुक्त राज्य ने आपस में बाँट लिये थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो प्रदेश अब भी छीन लेने योग्य रह गये थे, वे थोड़े से ही थे – उत्तर पश्चिमी अफ्रीका में मोरक्की, एशिया में चीन तथा फारस ओर टर्की का सम्राज्य। अभी तक जितना बँटवारा हुआ था वह बिना युद्ध के ही हो गया था। जैसा हम देख चुके हैं, जापान ने उत्थान के कारण चीन यूरोपीय लोगों के आक्रमणों से बच गया । और फारस के सम्बन्ध में भी इंग्लैण्ड तथा रूस में

समझौता हो गया। मोरक्को के विषय में फ्रांस तथा जर्मनी में बड़ी तनातनी हुई, परन्तु अन्त में 1911 में दोनों में समझौता हो गया । किन्तु टर्की के साम्राज्य के विषय

में कोई समझौता हो, उसे पहले ही विभिन्न सत्ताओं का धैर्य छूट गया। वे परस्पर लड़ने लगी और प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। अगले खण्ड में हम उन घटनाओं का वर्णन करेंगे जिनका परिणाम इस विश्व युद्ध के रूप में प्रकट हुआ।

इस प्रकार युद्धोत्तर काल में इंग्लैण्ड की परराष्ट्र – नीति बढ़ी परन्तु स्वयं उसके तथा यूरोप के लिए घातक रही। यूरोप में प्राधान्य के भय से और ब्रिटिश शासक वर्ग के हितों को बॉल्शेविज्म की ओर से खतरा देखकर, इंग्लैण्ड न जर्मनी को उस सीमा तक बढ़ जाने दिया जहाँ वह स्वयं इंग्लैण्ड और फ्रांस की सुरक्षा के लिए खतरनाक हो गया। अपनी निर्बल नीति के कारण ही उसने इटली को भूमध्य सागर में और जापान को पूर्व में अत्यधिक शक्तिशाली हो जाने दिया और अपने साम्राज्य की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया। यदि जर्मनी के साथ किये हुए अन्याय का प्रतिकार करके इंग्लैण्ड और फ्रांस राष्ट्र संघ के द्वारा सामूहिक रक्षा के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करते तो विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध न देखना पड़ता ।

अन्त में 1936 में ब्रिटिश सरकार ने इस झगड़े पर विचार करते हुए और उसका अन्त करने के लिए सुझाव देने के निमित एक कमीशन नियुक्त किया जिसने पेलेस्टाइन के विभाजन का प्रस्ताव दिया। उसने सिफारिश की कि पेलेस्टाइन का उत्तरी भाग यहूदी राज्य बना दिया जाये, दक्षिणी भाग अरबों का राज्य रहे और बीच का भाग जिसमें जेरूसलम, बेथलेहम आदि ईसाई तीर्थ स्थान हैं, ब्रिटिश प्रबन्ध में ही रहे । योजना का दोनों ओर से विरोध हुआ, अतः वह निरस्त कर दी गयी और एक नयी योजना संसद के समक्ष प्रस्तुत की गयी परन्तु इसी बीच द्वितीय विश्व–युद्ध छिड़ गया और यह मामला टल गया।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. पवित्र संघ का महत्व (प्ुचवतजंदबम व िभ्वसल ।ससपंदबम) – अनेक कारणों से पवित्र संघ की बड़ी–बड़ी आलोचना की गई है, परन्तु फिर भी इसका अपना महत्व है। उसने वर्षों के रक्तपात तथा छल–प्रपंच के उपरांत अहिंसा और बन्धुत्व की भावना की स्थापना करने महत्वपूर्ण कार्य किया । पवित्र संघ (भ्वसल ।ससपंदबम) में ही यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि प्रत्येक शासक अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझे तथा जिस प्रकार एक पिता अपने परिवार पर शासन करता है उसी प्रकार शासक को भी अपनी प्रजा पर शासन करना चाहिए।

2.

‘‘ पवित्र मित्र संघ राजनैतिक एवं सामाजिक कष्टों का निवारण करने में इस कारण असफल नहीं रहा कि उसके समर्थकों में ईमानदारी की भावना का अभाव था, न ही उसके उद्देश्यों में किसी प्रकार का पाप छिपा था । वरन् इसलिए कि

इसके नियम अस्पष्ट थे साथ ही इस पर हस्ताक्षर करने वाले शासकों का इसे सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं था ।''

3. लैवेख सम्मेलन को समाप्त हुए अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि चौथे सम्मेलन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और पंचमुखी मित्र मण्डल का यह चतुर्थ अधिवेशन 1820 ई० में इटली के प्रसिद्ध नगर बेरौना में हुआ ।

4. यूनान तथा टर्की की स्थिति ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था। इस समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से जनवरी 1825 ई० सेंट पीटर्स वर्ग में रूस के शासक जार ने कन्सर्ट के सदस्य देशों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलन में भी इंग्लैंड ने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा । आस्ट्रिया का प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित अवश्य था परंतु इस अधिवेशन में उसने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया और इस प्रकार इस सम्मेलन में काई विशेष निर्णय नहीं हो पाया। इस प्रकार के व्यवहार से रूस क्रुद्ध हो गया और उसने घोषणा कर दी कि भविष्य में यूनान तथा टर्की के विषय में वह मित्र राष्ट्रों से विचार–विमर्श किये बिना ही इच्छानुसार कार्य करेगा। इस प्रकार सेंट पीटर्सवर्ग का अधिवेशन समाप्त हो गया और इसके साथ ही यूरोप की संयुक्त व्यवस्था समाप्त हो गई, क्योंकि भविष्य में इसका कोई अधिवेशन नहीं किया गया।

5. क्रांति के परिणाम (त्मेनसजे व जीम त्मअवसनजपवद)

प) सन् 1830 ई० की क्रांति का सबसे प्रमुख परिणाम यह रहा कि फ्रांस के शासन की बागडोर बोर्बो वंश की प्रथम शाखा के हाथ से निकलकर छोटी शाखा के राजकुमार लुई फिलिप के

पश्चिमी विश्व

छव्स्

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

225

पश्चिमी विश्व

छव्स्

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

226

हाथ में आ गई। राजकुमार लुई फिलिप अपने युवाकाल में फ्रांस की क्रांतिकारी सेना के साथ युद्ध–भूमि में जा चुका था। अतः क्रांतिकारियों ने उसे शासन –सूत्र प्रदान किये जाने पर किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। इस प्रकार क्रांति का विस्फोट तो हुआ, किंतु उसे फ्रांस से राजतंत्र की समाप्ति करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इतना अवश्य हुआ कि वैध राजसत्ता की स्थापना हो गई।

पप) फ्रांस के संविधान में कोई विशेष प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। नवीन संवैधानिक व्यवस्था में लुई 18वें के संविधान आज्ञा – पत्र की 10वीं धारा को रद्द कर दिया गया। इस धारा के अनुसार फ्रांस का शासक दमनकारी कानून लागू कर सकता था ।

पपप) प्रेस पर लगे नियंत्रण को हटा दिया गया।
पअ) कैथोलिक धर्म को राजधर्म स्वीकार नहीं किया गया। सभी फ्रांसीसियों को धार्मिक स्वतंत्रता
प्रदान की गई।
अ) सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उदारवादियों और गणतंत्रवादियों के निर्वाचन के अधिकार को विस्तृत करने की माँग पूरी नहीं की गई। फ्रांस की उस काल की 2 करोड़ 80 लाख की जनसंख्या में से केवल एक सीमित संख्या में ही मतदाताओं की सूची में उनके नाम सम्मिलित थे। इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया और मतदाताओं की संख्या यथापूर्ण बनी रही । इस प्रकार पेरिस के गली–कूचों और सड़कों पर रक्त की नदियाँ बहाकर गणतंत्रवादियों ने जिस सरकार का निर्वाचन किया उसी सरकार को सहयोग देने के लिए अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने के अधिकार से जनता पहले की भाँति ही वंचित रही ।
अप) इस क्रांति का अन्य सुखद परिणाम यह रहा कि कट्टर राजसत्तावादियों और उच्च पादरियों ने जिन राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति कर ली थी उन्हें स्थगित कर दिया गया। उनके द्वारा सम्पन्न श्वेत आतंक ँपजम ज्मततवत) जैसे अत्याचारपूर्ण कार्यक्रमों की पुनरावृत्ति की भी सम्भावना सदा के लिए जाती रही।
अपप) लुई फिलिप ने जनता के अधिकारों का आदर करने का आश्वासन दिया। यह कार्य भी कुछ
महत्वूपर्ण नहीं था । इस प्रकार सन् 1789 ई० की क्रांति के जो कार्य शेष रह गए थे उन्हें सन् 1830 ई० की राज्यक्रांति ने पूर्ण कर दिया। अब भविष्य के लिए क्रांति के मूल सिद्धान्तों एवं तत्वों अर्थात् समानता, वैधानिक स्वतंत्रता और धर्म निरपेक्षता को सुदृढ़ आधार की प्राप्ति हो गई।
–

6. जर्मनी का प्रभाव– जर्मनी में प्रशा जैसे विशाल और शक्तिशाली राज्य के अतिरिक्त हनोवर, हेस सेक्सनी आदि छोटे–छोटे राज्य भी थे। उन राज्यों में एकता का पूर्ण अभाव था। सन् 1830 ई० को फ्रांसीसी राज्य क्रांति के समाचारों ने जर्मनी राष्ट्रवादी उदार नेताओं में नवजीवन और स्फूर्ति का संचार किया। उन्होंने विभिन्न राज्यों में निरंकुश शासन को निर्मूल करने के अभिप्राय से विद्रोह खड़े कर दिये थे। छात्रों अध्यापकों ने विशाल जूलूस निकाले और सभाओं में उत्तेजनापूर्ण भाषण किये। मेटरनिख इस प्रकार की उदार प्रवृत्तियों का कट्टर शत्रु था । अतः उसने जर्मन संघ की अत्यावश्यक सभा आयोजित करके उससे अनेक दमनकारी कानूनों की घोषणा कराई गई। अतः जर्मनी में लेख लिखने, भाषण देने और समाचार पत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। छात्रों के जलूस पर फ्रैंकफुर्ट में गोली चलाई गई तथा देश के समस्त छात्र संघों को भंग कर दिया । विश्वविद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों पर अंकुश रखने के लिए कठोर प्रवृत्ति के निरीक्षकों (ब्नतंजवते) की नियुक्ति की

गई। जर्मन देशभक्तों की भारी संख्या देश से निर्वासित कर दी गई। उन सभी राज्यों में जहाँ उदार शासन की स्थापना की गई थी वहाँ सैनिक शक्ति का प्रयोग कर पुनः शासकों के निरंकुश शासन की स्थापना की गई। इस प्रकार मेटरनिख को जर्मनी में फ्रांस के क्रांति की प्रभावों को विनष्ट करने में सफलता प्राप्त हुई।

परंतु इतना होते हुए भी जर्मनी से राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को निर्मूल नहीं किया जा सका। वे उस समय तो दब सी गई थीं, परंतु भविष्य में किसी समय भी देश में विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित कर सकती थी । आगे चलकर यह बात सर्वथा सत्य सिद्ध हुई। सन् 1848 ई० में फ्रांस में फिर एक क्रांति हुई जिसके

प्रभाव से जर्मनी के राष्ट्रवादियों में एकता और संगठन का अद्भुत रूप से प्रसार हुआ और उन्होंने देश को संगठित राष्ट्र का रूप देने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की ।

7. भूमिका – लुई नेपोलियन अर्थात् नेपोलियन तृतीय का परिचय–

लुई नेपालियन का जन्म 1808 ई० में ईलरी के राज प्रसाद में हुआ था। वह हालैंड के राजा लुई बोनापार्ट का पुत्र था तथा फ्रांस के सम्राट नेपोलियन का भतीजा था। 1815 में वाटरलू में नेपोलियन की हार के बाद नेपालियन परिवार का पतन आरम्भ हो गया था नेपोलियन के कार्यों से बोनापार्ट परिवार का स्थान बहुत ऊँचा हो गया था। जनता की नेपालियन के प्रति विशेष श्रद्धा थी । अतः बोनापार्ट की इस प्रसिद्धि का लाभ लुई नेपोलियन को मिलना निश्चित था । 1832 में नेपोलियन के पुत्र की मृत्यु के बाद लुई नेपोलियन ही परिवार का एक मात्र सदस्य शेष था। 1840 में लुई फिलिप ने लुई नेपोलियन को कैद कर लिया किन्तु वह जनता के सहयोग से कारागार से भाग निकला तथा 1848 ई० के राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय उसे जनता का विशेष सहयोग मिला तथा वह निर्वाचित घोषित कर दिया गया। इसका एक मुख्य कारण यह भी था कि जनता केवल बोनापार्ट नाम पर ही अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार थी।

लुई नोपोलियन द्वितीय फ्रेंच गणराज्य के राष्ट्रपति के रूप में– 1848 ई० में कारागार से भाग जाने के उपरान्त लुई नेपोलियन इंग्लैंड पहुँचा तथा इस घटना के उपरान्त फ्रांस में क्रांति के स्पष्ट चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे तथा 1848 ई० में क्रांति का विस्फोट हो गया। क्रांति के हो जाने पर लुई नेपालियन क्रांति में भाग लेने हेतु फ्रांस आ गया। पेरिस आने पर उसका जनता द्वारा भव्य स्वागत किया गया तथा क्रांति की सफलता के उपरान्त उसे राष्ट्रीय असेम्बली के लिए चार स्थानों से निर्वाचित घोषित कर दिया गया। किन्तु उसने असेम्बली का सदस्य बनने से इनकार कर दिया। 26 सितम्बर 1848 ई० को उसे पाँच स्थानों से असेम्बली का सदस्य मनोनीत किया गया। इस समय तक फ्रांस की जनता में लुई नेपोलियन के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास पैदा हो चुका था। अतः परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए राष्ट्रीय सम्मेलन का सदस्य बनने के केवल तीन माह उपरान्त की फ्रांस के द्वितीय गणराज्य के राष्ट्रपति पद हेतु निर्वाचन

में भाग लिया तथा बहुत बड़े बहुमत से निर्वाचन में सफलता प्राप्त की। राष्ट्रपति पद के शपथ समारोह में उसने कहा था— मैं प्रजातन्त्र राज्य की प्रति बफादार रहूँगा । मेरा कर्तव्य स्पष्ट है और मैं इसे बचन पालक व्यक्ति की तरह मानूँगा तथा निभाऊँगा ।

8. जापान का अभ्युदय : उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जापान ने यूरोपीय लोगों को पास नहीं फटकने दिया था, परंतु 1853—54 में अमेरिकन नाविक मूथ्यू पेरी ने जापान से सौंध करके अमेरिका के जहाजों के लिए जापानी बन्दरगाहों का उपयोग करने को अधिकार प्राप्त करके उसे गोरी जातियों के लिए खोल दिया । शीघ्र ही यूरोपियन राष्ट्रों ने जापान से इसी प्रकार की रियायतें प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया और जापान पर पाश्चात्य प्रभाव बड़ी शीघ्रता से बढ़ने लगा। अगले वर्षों में जापान में महान् परिवर्तन हुए । सम्राट (मिकाडो) ने, जो दीर्घ काल से नाममात्र का शासक था, सत्ता अपने हाथ में ले ली, सामन्तवाद का अन्त कर दिया गया, पश्चिमी उद्योगवाद, शिक्षा तथा सैनिकवाद का प्रचार हुआ और जापानियों में अपने इतिहास तथा अपनी जाति का जो अभिमान था उसने पाश्चात्य राष्ट्रीयतावाद तथा साम्राज्यवाद के समान ही उग्र रूप धारण कर लिया। उसने यूरोपियन राष्ट्रों के समान साम्राज्य — निर्माण के लिए कमर कसी जिसके लिए उसे क्षीण प्रायः चीन में बड़ा उपयुक्त क्षेत्र दिखायी देता था ।

''

राष्ट्र

9. बॉक्सर — विद्रोह : इस प्रकार निर्बल चीन यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थ का शिकार बन रहा था । अनेक बन्दरगाह प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ और सब ने मिलकर उसके अधिकतम व्यापारिक शोषण के लिए उसे अनेक क्षेत्रों में विभक्त करने का निश्चय किया ताकि प्रत्येक अपने—अपने क्षेत्रों में अपनी मनमानी करते रहे परंतु इसी समय दो घटनाएँ ऐसी हुई जिन्होंने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया विदेशियों के अत्याचारों से क्रूद्ध होकर चीन के देशभक्तों (ठव•मते) ने उन्हें बाहर निकालने के लिए विदेशियों पर आक्रमण कर दिया (1900)। इस पर इंग्लैण्ड फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, रूस, इटली तथा जापन की सम्मिलित सेना ने चीन पर आक्रमण करके पेकिंग पर अधिकार कर लिया। चीन को दबना पड़ा और युद्ध के हर्जाने के रूप में एक भारी रकम देनी

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

227

पश्चिमी विश्व

छव्जै

पड़ी। सब राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय सेना के निर्माण के समय चीन से कोई प्रदेश न छीनने का निश्चय कर लिया था। अतः उन्होंने उससे कोई भूमि न ली और युद्ध

समाप्त होने पर उसकी अखण्डता की गारण्टी दी।

10. रूस, जापान युद्ध के कारण–

1. उपर्युक्त घटना के फलस्वरूप उत्पन्न वैमनस्य के कारण दोनों में युद्ध अनिवार्य हो गया। इस
वैमनस्य के अलावा युद्ध के अनेक अन्य कारण भी थे।

2. रूस के पास ऐसा कोई समुद्र तट नहीं था जो वर्ष भर खुला रहता हो । उसके उत्तरी व पश्चिमी
समुद्र–तट पर सर्दियों में बर्फ जम जाती थी। अतः वह किसी ऐसे समुद्र तट की तलाश में था जो बारहों महीने खुला रहे । पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट पर अधिकार करके वह अपनी इस इच्छा की पूर्ति करना चाहता था परन्तु जापान इसमें बहुत बड़ा बाधक था।

3. मंचूरिया अन्न और लकड़ी का भण्डार था। वहाँ अनेक प्रकार की खानें थी। रूस और जापान दोनों ही मंचूरिया को प्राप्त करने के लिए लालायित थे। साथ ही रूस की ट्रान्स–साइबेरियन रेलवे लाइन मंचूरिया से होकर जाती थी जिसकी सुरक्षा के लिए रूसी सैनिक व पदाधिकारी वहाँ रहते थे, जिससे जापान की सदैव खतरा बना रहता था और दोनों के मध्य तनावपूर्ण स्थिति बनी रहती थी।

4. कोरिया पर भी रूस–जापान दोनों अपना–अपना प्रभाव जमाने के इच्छुक थे। इन परस्पर विरोधी महत्वाकांक्षाओं के कारण दोनों देशों के बीच मनमुटाव बढ़ रहा था और उनमें कभी भी युद्ध छिड़ सकता था ।

5. अभी तक विश्व में जापान की गणना एक साधारण से छोटे राज्य के रूप में थी परन्तु 1902 में इंग्लैण्ड ने उसके साथ संधि कर उसे एक महान् सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया था जिससे उसका हौसला काफी बढ़ गया और वह रूस की चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया।

अभ्यास–प्रश्न

1.
पवित्र संघ (भ्वससल ंससपंदबम) से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों एवं सफलताओं का वर्णन कीजिये।

2. यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के कार्यों का विश्लेषण कीजिये ।

3.
संयुक्त व्यवस्था की असफलता के कारणों का वर्णन करें।

4.
1830 की फ्रांसीसी क्रांति का वर्ण करें। इसके कारणों की समीक्षा करें।

5.
1830 की फ्रांसीसी क्रांति का अन्य देशों पर प्रभाव का वर्णन करें।

6.
1848 की क्रांति का वर्णन कीजिये। यूरोपीय इतिहास में इसके महत्व का परीक्षण कीजिए ।

7.
1848 की क्रांतियों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
8. नेपोलियन तृतीय की गृह एवं विदेश नीति का वर्णन कीजिए।
9.
एक राजनेता के रूप में नेपोलियन तृतीय का मूल्यांकन करें।
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
228
10. पूर्वी समस्या की प्रकृति एवं यूरोपीय शक्तियों के हस्तक्षेप का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
11. क्रीमिया की लड़ाई के कारणों एवं परिणामों की विवेचना कीजिए ।
12. साम्राज्यवाद की नवजागृति के कारणों पर प्रकाश डालें द्य 1
13. अफ्रीका में यूरोपीय साम्राज्यवाद पर टिप्पणी लिखें।
14. एशिया से यूरोपीय साम्राज्यवाद के प्रसार की समीक्षा करें।
15. युद्धोत्तर समस्याओं का वर्णन करें।
16. इंग्लैण्ड की परराष्ट्र नीति की समीक्षा करें।
17. राष्ट्र संघ के प्रति इंग्लैण्ड की उदासीनता के कारणों पर प्रकाश डालें1॥8.
ब्रिटिश साम्राज्य की संक्षिप्त समीक्षा करें।

इकाई.4

अमेरिकी गृह–युद्ध

इस अध्याय के अन्तर्गत :अमेरिकी गृह–युद्ध के कारणसंवैधानिक सिद्ध
ान्तआर्थिक सिद्धान्त
राष्ट्रवाद, संघ स्तर पर इसके प्रभावसंघीय सम्पत्ति पर अधिकार
इकाई.5
गृह युद्ध का आरम्भ, लिंकन की भूमिका एवं अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनाएँ
दक्षिणी भाग पर उत्तरी भाग की जीत के प्रमुख कारण
अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे
अमेरिकी गृह–युद्ध के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे अमेरिकी संवैधानिक और आर्थिक सिद्धान्त समझ सकेंग राष्ट्रवाद, के कारण का विश्लेषण कर सकेंगे संघ स्तर पर इसके प्रभाव तथा संघीय संपत्ति पर अधिकार समझ सकेंगे गृह–युद्ध का आरम्भ, लिंकन की भूमिका एवं अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनाएँ जान सकेंगे
अमेरिका के दक्षिणी भागों पर उत्तरीभागों की जीत के प्रमख कारण समझ सकेंगे
पश्चिमी विश्व

छव्जै
ैमसा—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
229
पश्चिमी विश्व
छव्जै
परिचय

अमेरिका के गृह—युद्ध के कारणों की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। पर इस व्याख्या के करते समय यह विस्मृत कर दिया गया है कि युद्ध कभी किसी एक कारण से नहीं होता, बल्कि अनेक कारणों के मिले—जुले प्रभाव के परिणामस्वरूप होता है। कुछ कारण तो कई साल पहले उत्पन्न हो जाते हैं और धीरे—धीरे प्रभाव डालते रहते हैं। 1861—65 के गृह—युद्ध पर यह बात पूर्णतया लागू होती है। इस गृह—युद्ध के कारणों की व्याख्या निम्न प्रकार की गयी है—

1. गृह—युद्ध का कारण शैतान लोग थे ̄वउम डपेबीपमअवनतमे च्मतेवदे ूमतम ब्नेम वि्बिअपस ̆त) — युद्ध का कारण शैतान लोग थे यह विचार 1861 से 1900 तक मान्य रहा। इस सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि उत्तर दक्षिण के कुछ शैतान लोग ही इस युद्ध के कारण थे ।

(प) दक्षिण के लेखकों का विचार (टपमू वि जीम ̆तपजमते वि जीम ैवनदजी) — दक्षिण के लेखकों ने उत्तर के लोगों के विरुद्ध यह आरोप लगाया कि वे दक्षिण को और उसके रीति—रिवाजों को नष्ट करना चाहते थे। उनके अनुसार गृह—युद्ध के मुख्य कारण निम्न प्रकार थे—

() एण्टी स्लेवरी सोसाइटियाँ।

(इ) कांग्रेस में एण्टी स्लेवरी सदस्य ।

(ब) दास प्रथा समाप्त करने की माँग करने वाली याचिकाओं में निरन्तर वृद्धि ।

(क) दक्षिण को टैक्सास तथा मैक्सिको में प्राप्त लाभों में वंचित करने का प्रयास ।

(म) विलमोट सुझावों का अनेक बार उठाया जाना,

(f) कन्सास में जॉन ब्राउन के कार्य,

(ह) कन्सास को लोकोम्पटन संविधान के अन्तर्गत यूनियन में सम्मिलित न किया जाना, (ी) उत्तर के लोगों द्वारा भगोड़े गुलामों से सम्बंधित कानूनों का पालन न किया जाना,

(प) कोलम्बिया डिस्ट्रिक्ट में गुलामों के व्यापार और गुलाम प्रथा पर प्रहार,

(प)

दक्षिण को नष्ट करने तथा उस पर शासन करने के लिये रिपब्लिकन पार्टी की एक क्षेत्रीय पार्टी बनाया जाना,

(ा) उत्तर द्वारा ड्रेड स्काट मुकदमे के निर्णय को अस्वीकार कर देना,

(Ü) गुलाम प्रथा और दक्षिण के प्रति लिंकन का क्रांतिकारी दृष्टिकोण

उपरोक्त उदाहरण देकर लेखकों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि दक्षिण के लोगों को उत्तर द्वारा प्रस्तुत अनेक कारणों से बाध्य होकर यूनियन

से अलग होना पड़ा और अन्त में अपनी सुरक्षा के लिए युद्ध करना पड़ा।

(प्प्) उत्तर के लेखकों का विचार आक्रमण (टपमू वˆजीम ˇतपजमते वˆजीम छवतजी) उत्तर के लेखकों ने दक्षिण के लोगों पर यह आरोप लगाया कि वे यूनियन को तोड़ना चाहते थे। उत्तर के लोगों का कहना है कि दक्षिण के लोग देश को इस बात के लिये बाध्य करना चाहते थे कि देश गुलाम प्रथा को न केवल वैध माने बल्कि उसकी सुरक्षा भी करे और दक्षिण तथा अन्य किनारों के साथ – साथ उत्तर में भी इसे फैला दे । इन लेखकों ने भी गृह–युद्ध के कारण नहीं बताये हैं जो दक्षिण के राज्यों ने बताये हैं परन्तु उन्होंने उसके लिए उत्तरदायित्व दक्षिण के लोगों पर डाला हैं इन लेखकों ने निम्न कारण बताये है।

ˆमसम–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

(प) आक्रमण

गुलाम प्रथा के विरोधी लोगों पर लगातार आक्रमण ।

230

(पप) गैंग प्रस्ताव – गैंग प्रस्ताव जिसके बल पर कांग्रेस में याचिकाएँ नहीं भेजी जा सकती

(पपप)

थीं।

टकसाल को कब्जे में करके गुलाम प्रथा का क्षेत्र बढ़ाने का षड़यन्त्र ।

(पअ) षड्यन्त्र – दास – समर्थक सीनेटरों द्वारा कन्सास – नेब्रास्का एक्ट पास कराने का षड़यन्त्र । (अ) समझौता तोड़ना मिसौरी समझौते को रद्द किया जाना । (अप) निर्णय – ट्रेड स्काट मुकदमे का फैसला जिसे प्रायः गुलामों के मालिकों सुप्रीम कोर्ट

के जजों, प्रेसीडेण्ट के बीच साँठ–गाँठ माना जाता है।

(अपप) विभिन्न कानून – उत्तर पर जबरदस्ती भगोड़े तथा गुलामें से संबधित विभिन्न कानूनों

का लादा जाना।

(अपपप) गुलामों का आयात

–

अमेरिका में चोरी–छिपे गुलामों का लाया जाना और विदेशी

गुलाम व्यापार को कानूनी मान्यता दिलाने का प्रयास करना ।

(प•) शक्ति– प्रदर्शन – कांग्रेस में दक्षिण वालों द्वारा शक्ति का प्रयोग द्य

(•)

पार्टी का विखंडन – लिंकन को प्रेसीडेण्ट बनवाने के लिए 1860 में बार्ल्सटन डेमोक्रेटिक पार्टी को तोड़ने का प्रयास ताकि दक्षिण के यूनियनिस्टों को यूनियन से अलग होने के लिए बाध्य होना पड़े और इस शक्ति के बल पर उत्तर के हितों को क्षति पहुँचाना और अपने स्वार्थों को पूरा करना ।

(•प) गोलाबारी – फेडरिल सम्पत्ति पर आधिपत्य करना और सूस्टर पर

गोलाबारी करना । (•पप) संविधान की रक्षार्थ – उत्तर के लोगों ने तर्क दिया है कि उत्तर को यूनियन व संविधान की रक्षा के लिए उन पर हो रहे आक्रमण के विरुद्ध यह युद्ध लड़ना पड़ा।

निष्कर्ष – वर्तमान मान्यता यह है कि यह युद्ध किसी पक्ष के षडयंत्र के कारण नहीं हुआ था बल्कि इसलिये हुआ था कि दोनों पक्षों के हितों के बीच संघर्ष था, ये हित ऐसे थे कि उनके बीच कोई समझौता या तालमेल बैठा पाना संभव नहीं था ।

2. संवैधानिक सिद्धांत (ब्वदेजपजनजपवदंस जीमवतल) – कुछ विद्वानों के अनुसार राज्यों को प्रभुसत्ता के बारे में संविधान का अलग–अलग अर्थ लगाया जाना भी इस युद्ध का मुख्य कारण था । ये अर्थ निम्न प्रकार थे–

(प) केन्द्रीकृत सरकार– उत्तर के लोग एक ऐसी केन्द्रीकृत केन्द्रीय सरकार के पक्ष में थे, जिसके
पास व्यापक अधिकार हो।

(पप) राज्यों का प्रभुत्व – दक्षिण के लोग चाहते थे कि अधिकार राज्यों के साथ रहे, क्योंकि
संविधान के निर्माता ऐसा ही चाहते थे।

दक्षिण का पक्ष (जीमˆजंजमउमदज वˆजीम`वनजी) दक्षिण के लोगों ने निम्न प्रकार कहा–

.

(प) केन्द्र सरकार के प्रयास– गृह–युद्ध का वास्तविक कारण गुलाम प्रथा नहीं थी बल्कि केन्द्र
सरकार द्वारा शक्ति को अपनी मुट्ठी में रखना था ।

(पप) यूनियन का तोड़ा जाना– उत्तर बालों पर आरोप लगाते हुए उन्होंने कहा कि संविधान बनाने वालों ने जो यूनियन बनायी थी, उसे तोड़ने का कार्य उत्तर वालों ने किया और उत्तर के लोगों ने संविधान में दी गई गारन्टियों को मानने से इन्कार कर दिया। इसी कारण दक्षिण को बाध्य होकर यूनियन को छोड़ना पड़ा।

(पपप) राज्य के पृथक होने का अधिकार– दक्षिण वालों ने यह तर्क दिया कि यूनियन प्रभुसत्ता राज्यों का एक कनफेडरेशन है और उसमें सम्मिलित प्रत्येक राज्य यूनियन से अलग हो जाने का अधिकार रखता है। इसके विपरीत उत्तर के लोगों का कहना था कि दक्षिण के लोगों को यूनियन से अलग होने का कोई अधिकार नहीं था, उनका प्रयास असंवैधानिक था ।

पश्चिमी विश्व
छव्ज्मे
ˆमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
231
पश्चिमी विश्व
छव्ज्मे

उत्तर पक्ष (जीमै जंजमउमदज व जीम छवतजी) – उत्तर के लेखक मानते थे कि यद्यपि संविधान
में
गुलाम प्रथा को स्थान दिया गया है, लेकिन यह प्रथा अमेरिकी लोकतंत्र के सिद्धांतों के विरुद्ध थी, इसलिए इसकी समाप्ति करनी पड़ी। गुलाम प्रथा की बुराई के प्रति उत्तर के लोगों के मन में बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई थी।

3. आर्थिक सिद्धान्त (म्बवदवउपब जीमवतल) – प्रथम विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी गृह–युद्ध के कारणों की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि गृह युद्ध का मुख्या कारण था – चार्ल्स मेरी बीयर्ड ने यह व्याख्या प्रारम्भ की। इस व्याख्या में उसने यह बताया कि उत्तर और दक्षिण में अलग–अलग मजदूर प्रथा प्रचलित थी। इस बात को दोनों एक दूसरे के लिए खतरा मानते थे। दक्षिण के राज्यों की अर्थ–व्यवस्था मुख्यतः गुलामों पर निर्भर थी। इसके विपरीत उत्तर के राज्यों की अर्थ–व्यवस्था ऐसे किसानों पर निर्भर थी जो मजदूरों पर श्रमिक रखकर अपना काम कराते थे। पश्चिम की ओर विस्तार के कारण इन व्यवस्थाओं के बीच टकराव उत्पन्न हो गया था। उत्तर–दक्षिण दोनों राज्यों के लोग यह चाहते थे कि मिसौरी के आगे के क्षेत्र में उनकी मजदूरी प्रथा की जड़े जम जाये। इसी प्रयास के कारण दोनों में मुख्य संघर्ष हो गया। इस संघर्ष का परिणाम गृह–युद्ध था ।

इन लेखकों के अनुसार अमेरिका में उद्योगों का विकास हो जाने के पश्चात् कृ षि प्रधान दक्षिणी राज्यों और उद्योग प्रधान उत्तरी राज्यों के मध्य विरोध और भी बढ़ गया। उत्तरी अमेरिका के नये उद्योगपतियों ने केन्द्रीय सरकार से संरक्षण तथा सहायता की। दक्षिण के बागवानों के स्वामियों तथा पश्चिम के किसानों ने उद्योगपतियों की इस माँग का विरोध किया लेकिन रेलों के बनने के बाद उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र के किसान उत्तर के उद्योगपतियों के साथ हो गए और दोनों ने मिलकर गुलाम प्रथा के नाम पर दक्षिण का विरोध प्रारम्भ कर दिया।

4. राष्ट्रवाद (छंजपवदसपेउ) – एक विचारधारा के अनुसार गृह–युद्ध का कारण राष्ट्रवाद की भावना थी । आर्थिक विकास तथा भौतिक उन्नति के परिणामस्वरूप उत्तरवासियों में राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ हो गयी थी, लेकिन दक्षिण में इस भावना की कमी थी । यद्यपि दक्षिण में भी यूनियनिस्ट जैसे ग्रुप अमेरिकी राष्ट्रवाद की भावना के स्थान पर दक्षिण के प्रति राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ थी वहाँ पर इन लोगों की संख्या पर्याप्त थी, जिन पर राष्ट्रवाद का कोई प्रभाव नहीं था, अतएव वे संघ से पृथक होना चाहते थे।

5. सामाजिक और राजनैतिक कारण ैवबपंस ंदक च्वसपजपबंस ब्नेमे) कुछ लोगों के अनुसार उत्तर और दक्षिण में आधारभूत सामाजिक और राजनैतिक अन्तर था। इसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है–

(प) दक्षिण (जीमै वनजी) दक्षिण के लोगों का मत था कि गुलामी प्रथा पर आध

Notes

ाारित सामाजिक व्यवस्था में गुलामों तथा उनके मालिकों दोनों का सुख था । दक्षिण की अर्थ–व्यवस्था पर बागानों के गिने–चुने मालिकों का पूर्ण नियंत्रण था ओर बागानों के मालिक तत्कालीन समाज में कुलीन – वंशी लोग बन गये थे।

(पप) उत्तर (जीम छवतजी) उत्तर के लोगों का सामाजिक लोकतंत्र में विश्वास था । गुलाम प्रथा को
वे सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना में एक भारी बाधा मानते थे ।

संघ स्तर पर प्रभाव (म्मिबज वद जीम न्दपवद स्मअमस) – संघ स्तर की राजनीतिक व्यवस्था पर दक्षिण के लोगों का प्रभुत्व था। वे इस सत्ता का प्रयोग अपने हितों की वृद्धि करने के लिए करना चाहते थे। उत्तर के लोगों दक्षिण के लोग के इस प्रभुत्व को समाप्त करना चाहते थे। अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति के लोगों ने गुलाम प्रथा का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार गुलाम प्रथा ने उत्तर के लिए कोई व्यावहारिक महत्व था और न दक्षिण के लिये। उनका मत है कि दोनों पक्षों के राजनीतिज्ञों ने निजी राजनीतिक लाभ उठाने के लिए ही इस मसले को इतना महत्वपूर्ण
बनाया था।

6. रोमांचवाद और भौतिकवाद के मध्य संघर्ष – (ब्वदसिपबज ठमजूममद त्वउंदजपबपेउ ंदक डंजमतपंसपेउ) कुछ अन्य विद्वानों ने गृह–युद्ध दक्षिण के रोमांचवाद तथा उत्तर के भौतिकवाद के मध्य एक संघर्ष था। दोनों के मध्य दृ ष्टिकोण में अन्तर होने के कारण उनके बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाया जिसका परिणाम संघर्ष में निकला।

7. अन्य कारण (व्जीमत त्मेंवदे) – कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार उत्तर और दक्षिण के मध्य जलवायु की भिन्नता तथा भौतिक कारणों से गृह–युद्ध हुआ । विलियम टेलर का कहना है कि यह युद्ध – अमरीका के बदले में कठोर दण्ड के रूप में ईश्वर का अभिशाप था ।

अमेरिका के इतिहास में 1840 से कुछ पूर्व नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ । आर्थिक परिवर्तन ने जो 19वीं शताब्दी के पहले दस–बीस वर्षों में प्रारम्भ हुआ और लगभग गृह–युद्ध तक चला, वहाँ की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों को काफी मात्रा में प्रभावित किया । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह परिवर्तन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि यूरोप में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् का परिवर्तन है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अमेरिका के जन–जीवन में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ देखी गयीं–

1. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि

पश्चिमी विश्व

छव्जम्

2

जनसंख्या का पश्चिमी प्रदेशों की ओर प्रवास तथा

3. ग्रामीण क्षेत्रों सें घनी जनसंख्या का नगरों और कस्बों की ओर जाना ।
1790 में अमेरिका की जनसंख्या लगभग 40 लाख थी। 1820 तक एक करोड़ 1830 तक 1.3 करोड़ 1846 में 1.7 करोड़ तथा 1850 और 1860 में यह क्रमशः 2.3 करोड़ और 3.1 करोड़ तक पहुँच गई थी। इस काल में नीग्रो दासों की जनसंख्या में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई ।
1808 के पश्चात् नीग्रो दासों का अमरीका में लाया जाना विधि द्वारा वर्जित कर दिया गया था। अमरीका निग्रो की जनसंख्या की वृद्धि अनुपात से, तुलनात्मक दृष्टि से, श्वेत अमेरिका जनसंख्या की वृद्धि दर से बहुत काम थी।
अमेरिका की जनसंख्या वृद्धि का श्रेय केवल वहाँ की स्थानीय जनता को ही नहीं है वरन् यूरोप के प्रवासियों का भी इस जनसंख्या में वृद्धि का श्रेय है। 1840 और 1850 में यूरोप के 15 लाख प्रवासी अमेरिका में आये। इस अवधि में यूरोप से प्रतिवर्ष तीन लाख व्यक्ति अमेरिका में आ रहे थे। ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैंड, स्कैन्डीनेविया, नीदरलैण्ड, बैल्जियम, फ्रांस और स्विटजरलैण्ड से आने वाले लोगों की संख्या सबसे अधिक थी। तीसरे नम्बर में रूस, बाल्टिक राज्यों और टर्की के लोग आते है। सबसे कम संख्या इटली, स्पेन, पुर्तगाल और ग्रीस से आने वाले लोगों की थी।
इस प्रकार आने वाले लोग अधिकतर पश्चिम की ओर बढ़े। इस पश्चिमी प्रवाह को फ्रेडिल जैकसन टरनर जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार ने अमेरिका के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।
टरनर के अनुसार, इस प्रकार की प्रगति ने अमेरिका की सभ्यता तथा राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला हैं यह पश्चिमी प्रवाह अमेरिका के इतिहास में वहाँ के साहित्य में और पूर्ण जन–जीवन में एक अद्भुत स्थान रखता हैं इस पश्चिमी प्रवाह के मुख्य राज्य ये थे – उत्तरी डैकोटा, दक्षिणी डैकोटा, नेब्रास्कार, कैन्सास, ओकलाहोमा तथा टैक्सास। इन्हीं राज्य में मोन्टाना, आयोबा, वायोमिग, कोलोरोड़ो, ऊटाह नैवदा, न्यू मैक्सिकों और ऐरीबोना, जो कि पहाड़ी राज्यों के नाम से जाने जाते हैं तथा प्रशान्त महासागर के राज्यों में वाशिंगटन, औरेंगन तथा केलीफोर्निया भी सम्मिलित थे।
इस विकासोन्मुख सभ्यता में आर्थिक उपकरणों का बहुत अधिक हाथ था। जैसे–जैसे औद्योगिक प्रगति हुई, लोग ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर आने लगे । यातायात एवं परिवहन के साधनों में उन्नति हुई। जल–परिवहन मिसिसीपी और ओहायों जैसी नदियों में तेजी से बढ़ने लगा। भाप नौकाओं (स्ट्रीम बोटों) के विकास से जल – परिवहन तीव्र और सुविधाजनक हो गया। राष्ट्रीय राजपथ (हाइवेज) और टर्पपाइक
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
233
पश्चिमी विश्व
छव्जमे
जैसे फिलाडेल्कि – पिटसवर्ग और राष्ट्रीय मार्ग (नेशनल रोड) ने परिवहन के

साधनों में काफी सहायता दी।
1830 में और इसके पश्चात् रेलगाड़ियों में तथा रेलगाड़ी सम्बन्धी तकनीकी में उन्नति हुई। इसी कारण रेल और सड़क यातायात के बहुत महत्वपूर्ण साधन बन गये। इन सभी कारणों से माल और व्यक्तियों की गतिशीलता में तीव्रता से वृद्धि हुई । नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी और साथ–ही–साथ कस्बों की जनसंख्या में भी वृद्धि हुई।
1840 से 1860 तक उत्तर–पूर्व के नगरों का काफी तेजी से उत्थान हुआ। ये नगर कुछ ही वर्षों में जनसंख्या के दृष्टिकोण से दुगने और तिगुने बड़े हो गये थे ।
1860 के निर्वाचन – अभियान काल में दक्षिण के अनेक नेताओं ने यह धमकी दी कि यदि राष्ट्रगान के निर्वाचन में गणतंत्रवादियों की विजय होगी तब दक्षिण संघ से अलग हो जाएगा। इस अलगाववादी प्रवृत्ति का आधार राजनीतिक था। दक्षिण अपनी अल्पसंख्यक स्थिति की रक्षा चाहता था ।
दक्षिण द्वारा प्रस्तुत तर्क– (।हतनउमदज च्नजवितजी इल जीम ैवनजी) दक्षिण द्वारा प्रस्तुत तर्क निम्न प्रकार थे–
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
234
(प)
संघ सम्प्रभु राज्यों का एक समुदाय था ।
(पप)
वे जब कभी चाहें इससे अलग हो सकते हैं। गवर्नर और विधानसभा निर्वाचन कराकर राज्य सम्मेलन बुला सकते हैं।
(पपप) दक्षिण पृथकतावादी अध्यादेश पारित करवाकर संघ से अलग हो सकता है।
अमेरिका का परिसंघ राज्य (ब्वदमिकमतंजम ैजंजमे वि ।उमतपबं) दक्षिण कैरोलीना संघ से पृथक होने का विचार कर रहा था। 20 दिसम्बर 1860 को उसने संघ से स्वयं को पृथक कर लिया। लिंकन के राष्ट्रपति बनने के छः महीने के भीतर ही दक्षिण के छः राज्य संघ से पृथक हो गये। फरवरी 1861 में छः पृथक राज्यों के प्रतिनिधियों ने मोटगोमरी (डवदजहवउमतल) में एक नये दक्षिणी राष्ट्र का निर्माण किया जिसे अमेरिका का परिसंघ राज्य (ब्वदमिकमतंजम ैजंजमे वि ।उमतपबं) कहते है ।
संघीय सम्पत्ति पर अधिकार– (।ददम•जपवद वि न्दिपवद च्तवचमजजल). पृथक् राज्यों ने अपनी सीमा के अन्तर्गत स्थित संघीय सम्पत्ति पर अधिकार स्थापित कर लिया। पर दूर तटवर्ती किलों पर वे अधिकार नहीं कर सके। इनमें दक्षिण कैरोलीना के चार्ल्सटन बन्दरगाह का फोर्ट सुम्टर और फ्लोरिडा के पेसकोला बन्दरगाह में फोर्ट पिकेस प्रमुख दुर्ग थे। दक्षिण कैरोलीना ने मुम्टर दुर्ग के आत्मसमर्पण के लिये वाशिंगटन में प्रतिनिधि भेजे। इस समय सुम्टर मेजर राबर्ट ऐंड्रसन के अधीन एक सेना थी । राष्ट्रपति बुचानन ने उसे दुर्ग समर्पित करना

अस्वीकार कर दिया। जनवरी 1861 में उसके आदेश पर एक शस्त्रविहीन मालवाहक जहाज स्टार ऑफ दी वेस्ट ̆(जंत व ̄जीम ̆मेज) कुछ सामान और सेना लेकर सुम्टर दुर्ग की ओर चल पड़ा पर इसके बन्दरगाह पहुँचने से पूर्व ही इस पर गोलाबारी शुरू कर दी गई, जिसके कारण यह लौट
गया।

समझौते के प्रयास (र्मिितजे वित त्मबवदबपसपंजपवद) – इस मध्य बुचानन ने कांग्रेस से यह सिफारिश की कि वह दक्षिणी राज्यों से समझौता करने और संघ को अक्षुण्ण रखने के लिये कदम उठाये। सीनेट और प्रतिनिधि सदन ने समझौता करने के लिये समितियाँ नियुक्त की। सीनेट समिति ने केटकी के सीनेटर जाॅन जे० क्रीटनडेन के प्रस्ताव पर विचार किया। इसे क्रीटेनडेन समझौता कहते हैं। इसमें अनेक संवैधानिक संशोधनों के सम्बन्ध में बतलाया गया । था कुछ प्रमुख विषय निम्न प्रकार थे–

(प) राज्यों में दासत्व – राज्यों में दासत्व बनाये रखने के सम्बन्ध में प्रावधान।

(पप) भगोड़े दास – भगोड़े दासों के बारे में दक्षिण को संतुष्ट करने के प्रावधान।

(पपप) कोलम्बिया में दास कोलम्बिया जिले में दासत्व के बारे में प्रावधान।
ूपदह

व्यवस्था (।ततंदहमउमदजे) दासत्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था का प्रस्ताव रखा गया–
–

(प) क्रीटेनडेन मिसौरी समझौता रेखा की 361ध्2 अक्षांश पर पुनः स्थापित करना चाहता था जिसके उत्तर में दासत्व पर प्रतिबन्ध लगाना और जिसके दक्षिण में दासत्व बने रहने के बारे में कहा
गया।

(पप) समिति के दक्षिणी सदस्य क्षेत्रीय विभाजन मान लेना चाहते थे ।
गणतंत्रवादियों ने इस व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया। राष्ट्रपति लिंकन का यह मत था कि मिसौरी समझौते के पुनर्सस्थापन से लैटिन अमेरिका में दक्षिणी साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन मिलेगा ।

शान्ति सम्मेलन (च्मंबम ब्वदमितमदबम) – बर्जीनिया के विधानमण्डल ने वाशिंगटन में एक शान्ति सम्मेलन आयोजित किया। इससे अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया गया था। फरवरी 1861 में 12 राज्यों के प्रतिनिधियों ने समझौते के प्रस्ताव पर विचार–विमर्श किया। इसमें मुख्यतः क्रीटेनडेन परियोजना पर ध्यान दिया गया। सम्मेलन की योजना को सीनेट में कोई समर्थन नहीं मिला।
अतः यह प्रयास असफल रहा।

लिंकन के प्रयास (र्मिवितजे उंकम इल स्पदवबवसद) – 4 मार्च 1861 को राष्ट्रपति लिंकन राष्ट्रपति बने । इस समय तक उत्तर दक्षिण के बीच कोई समझौता नहीं हो पाया था। अपने उद्घाटन भाषण में लिंकन ने कहा संविधान की अपेक्षा संघ अधिक पुराना है, कोई भी राज्य स्वेच्छा से संघ से अलग नहीं

हो सकता, पृथकतावादी अध्यादेश अवैध है। पृथकतावाद के लिए हिंसात्मक कार्य विद्रोहात्मक और क्रांतिकारी है इस प्रकार राष्ट्रपति ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सभी राज्यों में कानून लागू करने तथा पृथक हुए राज्यों में संघीय सम्पत्ति पर पुनराधिकार करने के लिये कृत–संकल्प है। इसमें सुम्टर और पिकेस के दुर्ग भी सम्मिलित थे।

सुम्टर दुर्ग ̈(नउचजमत थ्वतज) – लिंकन को सुम्टर दुर्ग पर अधिकार करने का अवसर मिला । वहाँ मेजर एन्डर्सन को रसद का अभाव होने लगा था। स्थिति इतनी भयावह हो गयी थी कि यदि समय पर रसद नहीं पहुँच पाती तो दुर्ग को खाली करना पड़ता । लिंकन इस अवसर का लाभ उठाकर सुम्टर दुर्ग पर अध्िाकार करना चहाता था । उसने राहत के लिये नौ सैनिक अभियान भेजने का निश्चय कर लिया तथा दक्षिण कैरोलिना के अधिकारियों को इसकी सूचना दे दी। लिंकन की इस चाल ने परिसंघ सरकार को धर्म संकट में डाल दिया। अभियान का विरोध न करने का तात्पर्य संघ के सामने आत्मसमर्पण करना था । मोटगोमरी सरकार ने चार्ल्सटाउन स्थित परिसंघ सेना के प्रभारी जनरल पी०टी० बौरेगार्ड को

सुम्टर दुर्ग पर अधिकार करने के लिये भेज दिया 12, 13 अप्रैल 1861 को दुर्ग पर बमबारी की गई। 14 अप्रैल को एन्डर्सन ने आत्म–समर्पण कर दिया। इस प्रकार गृह–युद्ध शुरू हो गया।

लिंकन ने संघ के सदस्य राज्यों को सेना भेजने का आदेश दे दिया । इसी समय चार अन्य दास राज्य संघ से अलग होकर परिसंघ में मिल गये । इसी समय एक परिवर्तन भी हुआ – वर्जीनिया का पश्चिमोत्तर क्षेत्र 1863 में संघ में पश्चिम वर्जीनिया ̆(मेज टपतहपदपं) के नाम से पुनः सम्मिलित हो गया। शेष चार दास, राज्यों अर्थात मेरीलैंड, डिलावेयर केटकी और मिसौरी ने संघ का साथ दिया। लिंकन ने मेरीलैड और मिसौरी के सैनिकों को पुनः नियुक्त कर दिया।

गृह–युद्ध का आरम्भ (ठमहपद ् दपदह व ़जीम ब्पअपस ̆त)– गृह–युद्ध के प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी विचार निम्न प्रकार है–

(प) परिसंघ पर उत्तरदायित्व – एक विचार के अनुसार गृह–युद्ध परिसंघ ने शुरू किया।

(पप) संघ पर उत्तरदायित्व – दूसरा विचार यह है कि गृह–युद्ध लिंकन ने शुरू किया। 4 जुलाई 1861 को लिंकन ने शुम्टर दुर्ग के सम्बन्ध में कांग्रेस में यह संदेश दिया, इस संकट काल में – दक्षिण कैरोलीना के गवर्नर को सूचित करना है कि सुम्टर दुर्ग की रक्षा के लिये हमें कुछ करना है । इससे यह प्रकट होता है कि लिंकन किसी भी स्थिति में सुम्टर दुर्ग को परिसंघ से बाइट

रखना चाहता था। इसी मध्य परिसंघ ने सुम्टर दुर्ग पर बमबारी करके उसे आत्म–समर्पण करने के लिये विवश कर दिया। अतः गृह–युद्ध के लिए लिंकन उत्तरदायी था ।

परिसंघ के राष्ट्रपति डेविस और उपराष्ट्रपति स्टीफेनस तथा विभिन्न परिसंधियों ने गृह–युद्ध के लिए लिंकन को दोषी ठहराया। स्टीफेन्स ने 1868 में प्रकाशित अपनी पुस्तक (। ब्वदेजपजनजपवदंस अपमू व जीम संजम ॅत ठमजूममद जीम ेजंजमे) में लिखा है कि यह ठीक है कि परिसंघ ने ही पहली गोली चलाई। लेकिन क्या सुम्टर दुर्ग पर अधिकार ने युद्ध को जन्म दिया। इसके प्रश्नोत्तर में अन्तर्राष्ट्रीय – विधि, विशेषज्ञ हैलम (भ्ंससंउ) ने कहा है, युद्ध में आक्रमण वह नहीं जो पहले बल का प्रयोग करता है, बल्कि वह है जो बल का प्रयोग करने के लिये बाध्य कर देता है हैलम के अनुसार लिंकन ने ग्यारह जहाजों के साथ राहत संगठित दल जिसमें 280 तोपें और 2400 सैनिक थे, न्यूयार्क से सुम्टर दुर्ग भेजे। उन्हें सुम्टर दुर्ग पर अधिकार करने का आदेश भी दिया था, इस प्रकार लिंकन परिसंघ सरकार द्वारा सुम्टर दुर्ग पर बमबारी करने के लिये उत्तरदायी था ।

दोनों पक्षों की स्थिति (जैम च्वेजपजपवद व जीम ठवजी च्ंतजपमे), गृह–युद्ध के समय दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की स्थिति काफी दृढ़ थी। इसके प्रमुख निम्न कारण थे–

(प) आर्थिक सुदृढ़ता – आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तर काफी सम्पन्न था।

(पप) उत्पादन – युद्धकाल में इसका उत्पादन काफी बढ़ गया था।

–

(पपप) जनाधिक्य उत्तर में जनाधिक्य भी अधिक था अतः सैनिकों की भर्ती की सुविधा थी । उत्तर
में 93 राज्य थे वहाँ की जनसंख्या लगभग दो करोड़ बीस लाख थी ।

–

दक्षिण ैवनजी) दक्षिण या परिसंघ राज्यों की संख्या नौ थी । वहाँ की जनसंख्या नब्बे लाख थी इनमें साढ़े तीस लाख दास थे। परिसंघ के तोपखाने के प्रधान जोसिया गोर्गस ने शस्त्रास्त्रों के निर्माण में भारी योगदान किया फिर भी परिसंघ के शास्त्रों में गुणात्मक और परिमाणात्मक कमी थी । दक्षिण की अर्थव्यवस्था भी उन्नत नहीं थी । वहाँ सैन्य आपूर्तियों जैसे वस्त्र जूते, कम्बल तथा औषाधियों आदि का भी अभाव था । परिणामतः सन् 1863 के बाद गृह–युद्ध में दक्षिण का मनोबल मिरने लगा था।

उत्तर (छवतजी) उत्तर का यातायात और परिवहन दक्षिण की अपेक्षाकृत उत्तम था। उत्तर में रेलमार्ग लगभग 20,000 मील और दक्षिण में 10,000 मील था।

उत्तर में जलमार्ग की सुविधा थी । यही कारण था कि युद्ध काल में यह सुविध ापूर्वक अपनी सेना और सैन्य सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजने लगे।

ने

संघीय सेना में वृद्धि (प्दबतममेम पद न्दपवद ।तउल) – गृह–युद्ध आरम्भ होने के समय संघ की नियमित सेना की संख्या 16000 थी। इसकी अधिकांश टुकड़ियाँ पश्चिमी प्रदेशों में बिखरी थी । लिंकन गृह–युद्ध लड़ने के लिये 75000 सैनिकों की आवाश्यकता अनुभव की। उसने संवैधानिक अनुमति के प्राप्त किये बिना ही तीन वर्षों के लिये 42000 स्वयं सेवकों की सेना संगठित की और नियमित सेना में 23000 सैनिकों की वृद्धि की ।

1863 में कांग्रेस ने अनिवार्य सैनिक सेवा अधिनियम पारित किया। संघ और राज्यों के उच्च पदाधिकारियों, कृषकों, धमोपदेशकों आदि को इस अनिवार्य सैनिक सेवा से छूट दी गई थी। यह व्यवस्था की गयी थी कि कोई भी व्यक्ति अपने स्थान पर दूसरे व्यक्ति को देकर या सरकार को तीन सौ डालर शुल्क देकर अनिवार्य सैनिक सेवा से मुक्त हो सकता था। इस कानून का उद्देश्य अनिवार्य सैनिक सेवा को प्रोत्साहित करना था । प्रत्येक राज्य को विभिन्न भर्ती या पंजीयन जिलों में बाँट दिया गया था। प्रत्येक जिले को यह आदेश दे दिये गये थे कि उसने एक निश्चित संख्या में स्वयंसेवक भर्ती करते है । इन प्रयासों के परिणामस्वरूप संघ की सेना में सैनिकों की संख्या लगभग पन्द्रह लाख हो गयी। दूसरी ओर परिसंघ में सैनिकों की संख्या केवल नौ लाख थी ।

विरोध – (व्चचेपजपवद) – कुछ लोगों ने अनिवार्य सैनिक भर्ती का कड़ा विरोध ा किया । प्रवासियों, मजदूरों और शांतप्रिय लोकतंत्रवादियों ने इसका कड़ा विरोध किया। कुछ स्थानों में इसके विरोध में हिंसात्मक कार्यवाहियाँ भी हुई हैं। जुलाई 1863 में न्यूयार्क नगर में चार दिनों तक दंगा जारी रहा। दंगा शान्त करने के लिए संघ सेना का बुलाना पड़ा । लोकतांत्रिक गवर्नर ने अनिवार्य सैनिक सेवा की निन्दा की। न्यूयार्क के होराशियों सिमूर का यह तर्क था कि संघीय सरकार को अनिवार्य सैनिक सेवा का कोई संवैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं था । इस आधार पर उन्होंने लिंकन प्रशासन को खुलेआम चुनौती दी।

लिंकन की भूमिका (त्वसम व स्पदबवसद) – स्थिति पर नियंत्रण करने के लिये लिंकन ने अपने परामर्शदाताओं को नियुक्त किया। इसमें गणतंत्रवादी दल की प्रत्येक विचारधारा के लोग थे । सेवार्ड नेज और स्टैनटन उच्चकोटि के परामर्शदाता थे।

गृह–युद्ध काल में लिंकन युद्ध विभाग का प्रधान था। उसने निम्न व्यवस्था की –

लिंकन

(प) उसने विद्रोह के दमन के लिये सेना बुलाई,

(पप) उसने अनियमित ढंग से नियमित सेना की संख्या में वृद्धि की,

(पपप) उसने दक्षिण की नौ सैनिक नाकेबन्दी करने की घोषणा की।

दो दल (ज़्व ळतवनचे)
–
संघ के दो दल बन गये थे–
(प) गृह–युद्ध के विरोधी – संघ में दक्षिण दास राज्यों के प्रति सहानुभूति रखने वाले लोकतांत्रिक
दल के शान्ति समर्थक गृह–युद्ध का विरोध करने लगे।
(पप) गृह–युद्ध के समर्थक– लोकतंत्रवादी युद्ध का समर्थन करते थे और लिंकन प्रशासन में पद भी ग्रहण करना चाहते थे । राष्ट्रवाद की बलिवेदी पर राज्य के अधिकारों का बलिदान किया
जा रहा था।
युद्ध विरोधियों को बन्दी बनाने लगा। स्थिति पर नियंत्रण रखने के लिये उसने बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम को स्थगित कर दिया।
1862 में यह घोषणा की गयी कि जो व्यक्ति या राज्य अनिवार्य सैनिक सेवा को हतोत्साहित करेगा, उनकी सुनावाई सैनिक अदालत में होगी। इस आरोप में लगभग 13000 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और जेल में डाल दिये।
गुटों का निर्माण (थ्वतउंजपवद व ि ळतवनचे) गणतंत्रवादी और लोकतंत्रवादी दलों में आतिवादी (त्मकपबंसे) और उदारवादी (स्पइमतंसे) दो गुट हो गये थे । दासत्व प्रश्न पर दोनों में काफी भिन्नता थी ।
(प) अतिवादी (त्मकपबंसे) अतिवादियों के नेता पेंसिलवेनिया के थैडस स्टेबेस तथा मेसाचुसेट्स के सीनेटर चार्ल्स सुमनगर और औहियों के सीनेटर बेजामिन एफ० वार्ड थे ।
–
(पप) उदारवादी (स्पइमतंसे) उदारवादियों का नेता राष्ट्रपति लिंकन था। अतिवादी गृह–युद्ध काल में दासत्व का अंत चाहने लगे। इसके लिये वे हिंसात्मक कार्यवाही करने से भी नहीं हिचकते थे। उदारवादी भी दासत्व का अन्त चाहते थे पर वे ऐसा धीरे–धीरे और शान्तिमय ढंग से करना चाहते थे। लिंकन स्वामिभक्त दास राज्यों में दास स्वामियों को उचित क्षतिपूर्ति देकर दासत्व का उन्मूलन के प्रश्न पर गृह–युद्ध भी लड़ना नहीं चाहता था। इसका कारण यह था कि इससे सीमा स्थित दास राज्यों के संघ से विमुख होने की संभावना थी ।
.
जब्ती अधिनियम (ब्वदपिबंजपवद ।बज) अगस्त 1861 में पारित जब्ती अधिनियम (ब्वदपिबंजपवद ।बज) के अनुसार उन दासों को उन्मुक्त कर दिया गया जिन्हें विद्रोह कार्यों में लगाया गया था । दासत्व के उन्मूलन की दशा में प्रमुख कदम निम्न प्रकार उठाये गये–
(प) अप्रैल 1862 में कोलम्बिया में दासत्व का उन्मूलन कर दिया गया था।

`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
237
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
238

(पप) जून 1862 में राष्ट्रीय प्रदेशों में दासत्व का उन्मूलन किया गया। (पपप) 1862 में अतिवादियों ने दासत्व उन्मूलन का निश्चय किया ।

(पअ) जुलाई में उन्होंने कांग्रेस के सामने दूसरी बार जब्ती अधिनियमन रखा। इस अधिनियम ने विद्रोह में भाग देले वाले दासों को उन्मुक्त घोषित कर राष्ट्रपति को नीग्रो लोगों को सेना में बहाल करने के लिये अधिकृत किया ।

.

अतिवादी (त्कपबंसे) अब गणतंत्रवादी दलों पर अतिवादियों का नियंत्रण होने लगा । सम्पूर्ण राष्ट्र यह मानने लगा कि गृह–युद्ध का एकमात्र उद्देश्य दासत्व का उन्मूलन है। लिंकन संघ की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण रखना चाहता था। इसके लिये वह अपने दल और विशेषकर अतिवादियों का समर्थन प्राप्त करना चाहता था।

–

लिंकन के प्रयास (थ्वितजे उंकम इल स्पदबवसद) – जुलाई 1862 में लिंकन ने अतिवादियों के हाथ से स्वयं अपने हाथ में दासत्व मुक्ति का नेतृत्व लेने का निश्चय किया। 22 सितम्बर 1862 को उसने अपनी अंतिम उन्मुक्ति घोषणा जारी की। इसने परिसंघ प्रदेशों के दासों को सर्वदा के लिये उन्मुक्त कर दिया। टेनेसी, पश्चिम वर्जीनिया और दक्षिणी लुईसियाना अपवाद स्वरूप थे इन प्रदेशों को इस कारण छोड़ दिया गया क्योंकि ये शत्रु प्रदेश नहीं थे, अतः राष्ट्रपति की युद्ध शक्तियों की परिधि से बाहर थे। उन्मुक्ति की घोषणा का प्रभाव (म्ममिबज व िम्उंदबपचंजपवद क्मबसंतंजपवद)

उन्मुक्ति घोषणा द्वारा शीघ्र ही कुछ दासों को उन्मुक्त कर दिया गया तथा इस घोषणा ने यह भी निश्चित कर दिया कि दासत्व उन्मूलन और संघ की एकता के लिये युद्ध अवश्यम्भवी है। संघीय सेना द्वारा दक्षिणी प्रदेशों पर अधिकार स्थापित करते ही उन्मुक्ति घोषणा एक तथ्य बन गई और हजारों दास स्वतंत्र हो गए। दासों को सेना में भर्ती कर लेने से भी वे उन्मुक्त हो गये । गृह–युद्ध के दौरान लगभग 186000 दास सेना में भर्ती किये गये थे । ग्रहयुद्ध के अन्त तक दो संघ दास – राज्यों मैरीलैंड और मिसौरी तथा परिसंघ के तीन अधिकृ त राज्यों टेनेसी अकन्सिस और लुइसियाना में दासत्व का उन्मूलन कर दिया गया था। सन् 1865 के आरम्भ में कॉंग्रेस ने संविधान के तेरहवें संशोधन का अनुसमर्थन कर दासत्व का सर्वत्र उन्मूलन कर दिया। इस समय तक दास प्रथा नामक सामाजिक संस्था का अस्तित्व शेष नहीं रहा था ।

जून 1864 में संघ सम्मेलन की बैठक ने लिंकन को राष्ट्रपति पद के लिये

मनोनीत किया। इस कार्य में अतिवादियों ने लिंकन का समर्थन नहीं किया। टेनेसी के एड्रिव जॉनसन का मनोनयन उपराष्ट्रपति पद के लिये किया गया। निर्वाचन में लिंकन को विजय प्राप्त हुई। उसे 212 मत मिले। इसके विपरीत उसके विरोधी मैक्कलेलन को केवल 21 मत मिले। लिंकन को जन – निर्वाचन में 2,213,000 मत मिले और मैक्कलेलन को 180500 मत मिले। इस प्रकार लिंकन केवल 4,00,000 मतों से आगे था ।

लिंकन की भावना (त्वसम व सिपदबवसद) – युद्ध के प्रथम तीन वर्षों में लिंकन ने बहुत कुछ किया। नीति निर्धारण करने सांमरिक, योजनाएँ बनाने और यहाँ तक कि रणनीति निर्देशन करने में उसकी भूमिका प्रमुख थी।

(प) जनरल विनफील्ड स्कॉट– प्रारम्भ में लिंकन जनरल विनफील्ड स्कॉट से परामर्श लेता था । स्कॉट इस समय काफी वृद्ध हो चुका था और कोई निर्णय नहीं ले पाता था । उसने नवम्बर 1861 को अवकाश गृहण किया।

(पप) जार्ज बी. मैक्लालन– लिंकन ने उसके स्थान पर युवक जार्ज बी० मैक्लालन को सेनाध्यक्ष नियुक्त किया किन्तु मैक्लालन में रणनीति निर्धारण की योग्यता न थी । अतः लिंकन ने उसे मार्च 1862 में हटा दिया।

(पपप) हेनरी डब्ल्यू हैलेक– जुलाई में जनरल हेनरी डब्ल्यू. हैलेक को नियुक्त किया गया।

(पअ) यूलीसिस एस. ग्रांट – 1864 में यूलोसिस एस. ग्रांट को सेनाध्यक्ष बनाया गया। उसे वाशिंगटन
की राजनीति पसंद न थी, अतः अपने सेना का प्रधान कार्यालय वाशिंगटन से ले जाकर पोटमेक
में स्थापित किया। वह युद्ध के हर पक्ष के बारे में काफी सोच सकता था और राजनीति का निर्धारण कर सकता था। लिंकन भी ग्रांट पर काफी विश्वास करता था।

युद्ध संचालन समिति ॅत ब्वउउपजजमम) – युद्ध में लिंकन की सक्रियता आध ुनिक युद्ध प्रणाली में उस महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर सकेत करती है। जिसमें असैनिक पदाधिकारी भी राजनीति का निर्माण करते हैं। सैनिक मामलों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण असैनिक आविष्कार युद्ध संचालन समिति है। यह कांग्रेस के दोनों सदनों की एक संयुक्त अन्वेषण समिति है । यह युद्ध नीतियों की निर्धारण करती है। दिसम्बर 1861 में ओहयो के सीनेटर बेडामिन एफ. वार्ड की अध्यक्षता में इस समिति की नियुक्ति की गई। आदिवासियों ने लिंकन की योजना का विरोध यह कहकर किया कि युद्ध संचालन समिति द्वारा नियुक्त किये गये अनेक सेनाध्यक्षों में योग्यता का अभाव है। वास्तव में ये आक्षेप निराधार थे।

अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनायें निम्न प्रकार हैं–

1. दक्षिण कैरोलीना का यूनियन से पृथक होना ैमचंतंजपवद व ैवनजी बंतवसपदं तिवउ न्दपवद)– दक्षिण के राज्यों ने पहले से ही धमकी दे रखी थी कि रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार को राष्ट्रपति चुन लिया गया तब वे यूनियन से पृथक हो जायेंगे। लिंकन के राष्ट्रपति चुने जाते ही उन्होंने अपनी धमकी के

अनुसार कार्यवाही शुरू कर दी। इस मामले में पहला पग दक्षिण कैरोलीना के विधान मण्डल ने यूनियन से पृथक होने के प्रश्न पर विचार करने हेतु एक विशेष कन्वेशन बुलाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास कर दिया। कन्वेशन की बैठक 8 दिसम्बर 1860 में ई। उसने यूनियन के
पृथक
होने का प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास कर दिया। इस कार्यवाही के लिये मुख्य कारण निम्न प्रकार बताये गये–
(प) उत्तर के तेरह राज्यों ने संविधान का उल्लंघन करते हुए व्यक्तिगत स्वाध ीनता सम्बन्धी कानून
पास कर दिये हैं।
(पप) एक ऐसा व्यक्ति अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया है जो गुलाम प्रथा का कट्टर विरोधी है। (पपप) उत्तर के लोगों के लाभ के लिये दक्षिण के लोगों पर भारी प्रशुल्क लगाये गये हैं।
2. कॉनफेडरेट स्टेट्स ऑफ अमेरिका (ब्वदमिकमतंजम ैजंजमे व ।उमतपबं) – यूनियन से पृथक होने की घोषणा करने के बाद शीघ्र ही दक्षिण कैरोलीना ने अन्य दास राज्यों के नाम एक खुला पत्र जारी किया । पत्र में कहा गया कि वे उसके साथ मिलकर दक्षिण के राज्यों की एक अलग कॉनफेडरेसी बनायें। एक महीने के भीतर ही चार अन्य राज्यों अर्थात् फ्लोरिडा, अलबामा, मिसीसिपी और जार्जिया ने भी यूनियन से पृथक होने को घोषणा कर दी। लुइसियाना और टैक्सास भी यूनियन से पृथक हो गये। इस प्रकार सात राज्य यूनियन से पृथक हो गये।
फरवरी 1861 में उपरोक्त सातों राज्यों के प्रतिनिधियों की बैठक माण्टगोमरी अलाबामा में हुई। उन्होंने कानफेडरेट ऑफ अमरीका गठन का लिया। इस कानफेडरेसी ने अपना संविधान स्वीकार किया और मिसीसिपी के जेफरसन डेविस को अपना प्रेसीडेण्ट चुन लिया।
3. वाशिंगटन में प्रतिक्रिया (त्म–बजपवद पद ॅ।पदहजवद) – कपास उत्पन्न करने वाले दक्षिण के राज्यों की इस कार्यवाही से वाशिंगटन के राजनीतिज्ञ बड़े चिन्तित थे। राष्ट्रपति जेम्स बुचानन ने दक्षिण में इन राज्यों के प्रति समझौते का दृष्टिकोण अपनाया। कांग्रेस को भेजे गये अपने वार्षिक सन्देश में राष्ट्रपति बुचानन ने यह घोषणा की कि दक्षिण के राज्यों का यूनियन से पृथक होना गैर संवैधानिक है। पर इसके साथ उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि न तो कांग्रेस के पास और न ही राष्ट्रपति के पास ऐसा कोई अधिकार है कि वे किसी राज्य को यूनियन से पृथक होने से रोक सके। बुचानन के इस संदेश पर उत्तर के लोगों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथापि उत्तर का रवैया दक्षिण के साथ समझौता का रहा ।
□
4. समझौता के प्रयास (म्ििवतजे वित त्मबवदबपजपंजपवद)– उत्तर और दक्षिण के मध्य समझौता

कराने के लिय अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव 'क्रिटेनडेन समझौता' प्रस्ताव था। क्रिटेनडेन ने अपने प्रस्ताव में निम्नलिखित सुझाव रखे–

(प) पुराने मिसौरी समझौते की 30. 30 इंच उत्तरी अक्षांश रेखा के दक्षिण की ओर के किसी राज्य में गुलाम प्रथा के मामले में कांग्रेस को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। (पप) भविष्य में किसी अप्रिय विवाद को न उठने के लिये इस बात को एक संशोधन के द्वारा

संविधान में सम्मिलित कर दिया जाना चाहिये।

(पपप) भविष्य में इस बात में कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिये ।

5. प्रतिनिधि सदन के प्रयास– दक्षिण के राज्यों से समझौता करने के लिये हाउस ऑफ रिप्रिजेन्टेटिव ने भी एक प्रस्ताव पास करके कांग्रेस और जनता पर सदैव के लिये इस बात पर रोक लगा दी कि जिस राज्य में गुलाम–प्रथा पहले से ही हो उस राज्य की जनता की सहमति के बिना वे उस राज्य में गुलाम प्रथा के मामले में कोई हस्तक्षेप न करे ।

6. संघीय किलों पर आधिपत्य – (।द् दमंजपवद व न्दिपवद थ्वतजे) – दक्षिण के राज्यों ने अमेरिका के किलों, शस्त्र – भण्डार युद्ध–सामग्री गोला–बारूद और अन्य सम्पत्ति पर आधिपत्य करना शुरू कर दिया । दक्षिण के राज्यों को कानफेडरेट सरकार ने फोर्ट सुम्टर, फोर्ट पिकेन्स की वेस्ट और ड्राई पुर्तगाल को छोड़कर इन सात राज्यों में यूनियन के स्थित सभी किलों, टकसाल, डाकघर, कस्टम – हाउस आदि पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

7. राष्ट्रपति लिंकन का प्रथम भाषण– (थ्पतेज ैचममबी व च्तिमेपकमदज स्पद. बवसद)– अपने भाषण में राष्ट्रपति लिंकन ने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुये यह घोषणा की कि जिन इलाकों में गुलाम–प्रथा विद्यमान है, उनमें वह हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। उन्हें हस्तक्षेप करने का कोई कानूनी अधिकार भी नहीं है, लेकिन सार्वभौमिक कानून और संविधान को देखने हुये इन राज्यों की यूनियन एक स्थायी यूनियन है । अतएव जो राज्य यूनियन से अलग हो गये हैं अगर वे पुनः वापस नहीं आ जाने तो अन्ततः युद्ध का आश्रय लिया जायेगा। उन्होंने यह सुझाव रखा कि जिन चौकियों पर अभी तक कानफेडरेट्स ने कब्जा नहीं किया है, वे अपने इलाके में फेडरेल कानूनों को लागू करें।

8. युद्ध का प्रारम्भ (ठमहद्दपदह व ित) – 12 अप्रैल को सुम्टर पर आक्रमण

होने से पहले उत्तर के अधिकांश लोगों की यह धारणा थी कि अभी भी युद्ध से भिन्न कोई रास्ता निकल सकता है। फोर्ट सुम्टर नामक किला चार्ल्सटन बन्दरगाह में एक टापू पर स्थित है। दक्षिण के लोगों ने इसे चारों ओर से घेर लिया। परिणामतः यहाँ रसद कम पड़ गयी थी और नई रसद न पहुँचने पर इसे हथियार डालने का अभिप्राय होगा कि उत्तर के लोगों ने कानफेडरेसी को स्वतंत्र मान लिया है। लिंकन ने अपनी कैबिनेट की राय के विरुद्ध फोर्ट सुम्टर को बचाने के लिये वहाँ सहायता दल भेजने का निर्णय ले लिया। प्रत्युतर में जेफरसन डेविस ने चार्ल्सटन की सेनाओं को इस किले पर गोलाबारी करने की आज्ञा दी। 12 अप्रैल 1861 को कानफेडरेट की सेनाओं ने इस किले पर गोलाबारी करके इसे हथियार डालने के लिये बाध्य कर दिया। यह गृह–युद्ध का प्रथम धमाका था। लिंकन ने इस विद्रोह को दबाने के लिये 75,000 स्वयं सेवक भेज दिये इसके साथ ही उसने आदेश दिया कि कानफेडरेट के सभी बन्दरगाहों की नाकेबन्दी कर दी जाये। इस प्रकार युद्ध आरम्भ हो गया।

9. अन्य राज्यों की स्थिति (जैम च्वेपजपवद व्ज्ीमत ैजंजमे) – अन्य आठ गुलाम राज्यों की स्थिति अभी तक अनिर्णीत थी। उन्होंने यह निर्णय नहीं किया था कि वे किस और जायें। अब उनके लिये यह निर्णय लेना आवश्यक हो गया कि उन्हें उत्तर के साथ रहना है या दक्षिण के साथ जाना है। चार राज्यों अर्थात् वर्जीनिया, अरकन्सास, केनेसी और नार्थ कैरोलीना ने कानफेडरेसी का पक्ष ग्रहण किया। शेष चार गुलाम राज्य अर्थात् मेरीलैंड, डेलावेयर, केन्टकी और मिसौरी यूनियन में शमिल रहे।

10. युद्ध

के चढ़ाव व उतार (न्चे ंदक क्वूदे वि ित)– दोनों पक्षों के मध्य गृह युद्ध मुख्यतः पूर्वी और पश्चिमी मोर्चे पर हुआ। पूर्वी मोर्चे पर वर्जीनिया के निकट घमासान युद्ध हुआ। पश्चिमी मोर्चे पर टेनसी और मिसौरी की सीमा पर युद्ध हुआ। यूनियन की सेना ने दक्षिण के सभी महत्वपूर्ण बन्दरगाहों की नाकेबन्दी कर दी ताकि वहाँ से न कोई माल बाहर जा सके और न कोई माल बाहर से वहाँ आ सके।

() पूर्वी मोर्चे पर लड़ाई (ॅत वद म्ंेजमतद थ्तवदज)– पूर्वी मोर्चे पर लड़ाई का प्रमुख उद्देश्य कानफेडरेसी की राजधानी रिशमाण्ड पर आधिपत्य स्थापित करना था। जुलाई 1861 में मैकडोवेल की अधीनता में 30,000 सैनिकों की एक सेना ने वर्जीनिया आक्रमण करने का प्रयास किया। इस आक्रमण में कानफेडरेसी की सेना ने व्यूरीगार्ड ओर जानस्टन के नेतृत्व में उत्तर की सेना को बुलटन नामक स्थान पर पराजित कर दिया। परिणामतः यूनियन की सेना भाग कर वाशिंगटन आ गई।

सन् 1862 में बी0 मैक्ललान के नेतृत्व में यूनियन की सेना ने रिशमाण्ड पर आधि ापत्य स्थापित करने की पुनः कोशिश की । युद्ध में यूनियन की सेना को सफलता प्राप्त हुई। वह रिशमाण्ड से केवल पाँच मोल की दूरी तक जा पहुँची

थी पर उसके बाद मैक्लालन को समुद्र तट की ओर पीछे हटना पड़ा। सात दिन के युद्ध में जो 26 जून से 1 जुलाई तक चला, जानस्टन घायल हो गया था। अतः उसके स्थान पर जनरल राबर्ट ई० ली को कानफेडरेसी को सेवा की कमान सौंप दी गई। न्यू आर्लियन्स तथा लुईसियानों के दक्षिणी भाग पर यूनियन की सेना का आधिपत्य स्थापित हो गया।

(इ) पश्चिमी मोर्चे पर युद्ध ॅ(त वद ॅमेजमतद थ्तवदज)— पश्चिमी मोर्चे पर एक वर्ष तक सीमावर्ती राज्यों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये युद्ध होता रहा । केन्टकी और मिसौरी से दक्षिण की सेनाओं को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। वर्जीनिया की पश्चिमी काडण्टियों की कानफेडरेसी से पृथक करने का एक स्वतंत्र राज्य के रूप में यूनियन में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार दक्षिण ने ओहिया नदी के साथ की एक मजबूत रक्षा पंक्ति खो दी।

पश्चिमी मोर्चे पर यूनियन की सेना ने फोर्ट हेनरी और फोर्ट डोमेलसन पर आधि ापत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार पश्चिमी टेनेसी के एक लम्बे—चौड़े हिस्से पर यूनियन का आधिपत्य स्थापित हो गया। तत्पश्चात् यूनियन की फौजें दक्षिण की ओर कोरिन्थ, मिसीसिपी और सेम्फीस टेनेसी की ओर अग्रसर हुई। अप्रैल 1862 में कानफेडरेसी की फौज ने शिलोह में ग्राण्ट पर आक्रमण किया। भारी कष्ट सहन करने के बाद भी ग्राण्ट मोर्चे पर डटा रहा। इसी मध्य यूनियन की समुद्री ने न्यू आर्लियन्स पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार विक्सवर्ग पर आक्रमण करने का मार्ग साफ हो गया। विक्सवर्ग से ही कानफेडरेसी फौज पश्चिम के साथ अपना सम्पर्क बनाये हुये थी। इन सैनिक गतिविधियों का यूनियन को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ था कि जनरल ग्रान्ट जैसा सेनापति उभर कर सामने आ गया, जिसने अन्त में ली को पराजित किया।

इसी मध्य पूर्वी मोर्चे पर कानफेंडरेसी की सेना ली के नेतृत्व में आक्रमण शुरू कर दिये । कानफेडरेसी की फौजों ने उत्तर की और बढ़ गयी। ली पेनसिलबेनिया पर आक्रमण करके अंटलांटिक तट और पश्चिम के बीच रेल मार्ग को काटना चाहता था। इस प्रकार उत्तर के सामने पराज्य का गम्भीर खतरा था । इस अवसर पर लिंकन ने मैक्लालन को पुनः भेजा। मैक्लालन ने परिसंघीय सेना पर मनासांस में आक्रमण कर दिया। पर यह आक्रमण असफल रहा। ली के नेतृत्व में परिसंघ सेना ने मेरी लैण्ड पर आक्रमण कर दिया, पर मैक्लालन ने उसके आक्रमण को विफल कर दिया। ली को वर्जीनिया से पीछे हटना पड़ा। मैक्लालन ने ली का इससे अधिक पीछा नहीं किया। लिंकन ने रुष्ट होकर मैक्लालन को हटा दिया।

(ब) समुद्री युद्ध (डंतपजपउम ॅंत) — यूनियन की सेना ने दक्षिण के समस्त महत्वपूर्ण बन्दरगाहों की नाकेबन्दी कर रखी थी, अतः दक्षिण के आयात—निर्यात को इसे भारी क्षति हो रही थी ।

पश्चिमी विश्व

छव्जे

स्व— प्रगति की जाँच करें : 1. क्या अमेरिकी गृह—युद्ध का एक कारण राष्ट्रवाद

की भावना भी महत्वपूर्ण रही है?

2. उत्तर – दक्षिण के बीच विचार संघर्ष में शान्ति के प्रयास हेतु लिंकन के प्रयास स्पष्ट करें।

ँमसा—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

इकाई.5

कानफेडरेसी की सेना इस नाकेबन्दी को तोड़ने के प्रयास में थी ।

(प) लोहे से मढ़े जहाजों का प्रयोग (न्म व प्तिवद – ब्वंजमक ँपच) – मार्च 1862 में वर्जीनिया के नॉरफॉक समुद्री अड्डे से यूनयिन के पुराने फ्रीगेट मैरीमैक नामक विशाल पोत को वर्जीनिया नाम देकर बाहर निकाला गया। इसको चारों ओर से लोहे से मढ़ दिया गया। इसके ऊपर एक तोप भी फिट कर दी गई थी। इस फ्रीगेट ने यूनियन के दो जहाज डुबो दिये। कुछ समय बाद प्रत्युत्तर में यूनियन के समुद्री बेड़े ने लोहे से मढ़ा हुआ अपना जहाज मोनीटर समुद्र में उतार दिया। इस पर घूमने वाली तोपें फिट थी। दोनों जहाजों में टक्कर हुई। इस लड़ाई में उत्तरी अमेरिका की विजय हुई क्योंकि उसके बाद वर्जीनिया पुनः दिखाई नहीं पड़ा ।

(पप) विदेशों से जहाज मँगाना (ब्सस थ्वतँ ीपचे थ्तवउ थ्वतमपहद ब्वनदजतपमे) – कानफेडरेसी ने विदेशी से लड़ाकू जहाज प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने इंग्लैण्ड से शक्तिशाली तोपें भी प्राप्त कीं। दक्षिण ने इंग्लैंड से अलबामा नामक प्रसिद्ध जहाज प्राप्त कर लिया। इस जहाज ने यूनियन की 63 नावों को महासागर में डुबो दिया। पर शीघ्र ही यूनियन ने अन्य देशों विशेष रूप से इंग्लैंड को इस बात के लिये सहमत कर लिया कि वह कानफेडरेसी को कोई जहाज न दो।

(क) दासों की मुक्ति की घोषणा (क्मबसंतंजपवद व म्उंदबपचंजपवद व ँसंअमे) – गृह—युद्ध शुरू होने के समय से ही लिंकन पर दबाव डाला जाता रहा कि वह दास प्रथा की समाप्ति के नाम पर युद्ध की घोषणा कर दे । लिंकन को यह कार्य उपयुक्त व समयानुकूल प्रतीत हुआ । अतएव उसने अमेरिका की सेना के कमाण्डर इन चीफ के रूप में 22 सितम्बर 1862 को दासों की मुक्ति की घोषणा कर दी। इस घोषणा में कहा गया कि ऐसे हर राज्य या राज्य के किसी विशिष्ट भाग, जिसके निवासी उस दिन अमेरिका के विरुद्ध विद्रोह कर रहे होंगे, में रहने वाले वे लोग जो गुलाम हैं, वे सब जनवरी 1863 को स्वतंत्र हो जायेंगे और आगे वे सदैव स्वतंत्र रहेंगे।

(म) सन् 1863 के मुख्य युद्ध (डंपद ठंजजसमे व 1863) – सन् 1863 का साल प्रारम्भ होत ही पूर्वी मोर्चे और पश्चिमी मोर्चे दोनों पर भारी परिवर्तन होने लगे। यूनियन की फौजों को फ्रेडरिक्स वर्ग में दिसम्बर 1862 और चान्सलर विले में

मई 1863 में पराजित होना पड़ा। इस विजय से प्रोत्साहित होकर कानफेडरेसी ने पेसिलबोनिया पर आक्रमण करके युद्ध को उत्तर के क्षेत्र में ले जाने का निश्चय किया। तीन वर्ष तक घमासान युद्ध के बाद ली को वर्जीनिया वापस जाना पड़ा। पश्चिमी मोर्चे पर जनरल ग्राण्ट ने काफी समय तक घेरा डालने के बाद विक्सवर्ग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। यह स्थान पश्चिम में कानफेडरेसी का मजबूत गढ़ था। शीघ्र ही चिकामूगा में भीषण युद्ध के बाद ग्राण्ट को विजय प्राप्त हुई। इस प्रकार सन् 1863 के अन्त तक जार्जिया में प्रवेश करने का रास्ता साफ हो गया।

(iv) 1864 में शर्मन का आक्रमण (।जजंबा वीमतउवद पद 1864) – मार्च 1864 में ग्राण्ट को

यूनियन की सेना का जनरल इन चीप नियुक्त किया गया। कोल्ड हार्बर के निकट ग्राण्ट ने ली की सेना को नष्ट करने का प्रयास किया। लेकिन दोनों की सेना नष्ट हुई । ग्रान्ट को 65,000 तथा ली को 31,000 सैनिकों से वंचित होना पड़ा। इसी मध्य संघ की सेना ने शर्मन के नेतृत्व में अटलांटा में युद्ध किया। संघ सेना ने 2 सितम्बर 1864 को अटलांटा पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने जार्जिया में होकर अपना आक्रमण करना शुरू किया। कानफेडरेसी की सेना ने शर्मन का विरोध नहीं किया। शर्मन जहाँ–जहाँ से होकर गुजरा उस क्षेत्र को पूरी तरह से नष्ट करने की नीति अपनाई । उसने यह घोषणा की, मैं दक्षिण की कमजोरी को पोल खेलना चाहता हूँ कि दक्षिण के लोग यह बात भली प्रकार समझ ले कि युद्ध और एक व्यक्ति द्वारा की गई बरबादी दोनों समान हैं। फरवरी 1865 में यूनियन की फौजों ने उत्तर की ओर कूच किया और दक्षिण कैरालीना को भी उसी प्रकार नष्ट किया जैसे जार्जिया को किया था।

(ह) एपोमेटाक्स की विजय (ब्वदुनमेज व ।चचवउंजजं•) – यूनियन की अन्तिम विजय ग्राण्ट

के सेनापतित्व में हुई। इस निर्णायक विजय ने गृह–युद्ध को समाप्त कर दिया। ग्राण्ट ने मई 1864 में पूर्वी मोर्चे की कमान सम्भाली थी। काफी अच्छी सेना होने के बावजूद भी अनेक भयावह लड़ाइयाँ लड़ने के बाद वह रिशमाण्ड को पूरी क्षति पहुँचा पाया था ।

1 अप्रैल 1865 को ली ने ग्राण्ट के सम्मुख और 26 अप्रैल 1865 को जान्सटन ने टी. शर्मन के समक्ष आत्म–समर्पण कर दिया। इस प्रकार कानफेडरेसी की पराज्य हुई और गृह–युद्ध समाप्त हो गया। अमेरिका के इतिहासकारों के मध्य सदैव से ही यह विवाद चला आ रहा है कि क्या गृह–युद्ध अवश्य होना था या इसे रोका जा सकता था। इस संबंध में निम्नलिखित दो मत हैं–

(प) अपरिहार्य – बीयर्ड आदि लेखकों का कहना है कि उत्तर–दक्षिण के बीच हितों का ऐसा संघर्ष

था कि उनक मध्य कोई समझौता नहीं हो सकता था। युद्ध ही उस संघर्ष के समाधान का एकमात्र साधन था। इस प्रकार युद्ध अपरिहार्य था ।

(पप) व्यर्थ – पर्सी ग्रेग और वग्रेस आदि विद्वानों ने युद्ध की अनिवार्यता के बारे

में संदेह प्रकट किया है। चौनिंग ने भी इस युद्ध को गैर– आवश्यक युद्ध माना है । रेशडेल ने कहा है कि इस भयानक युद्ध के बिना एक–दो पीढ़ियों के बाद गुलाम प्रथा स्वतः समाप्त हो गई होती। अतः यह व्यर्थ
था।
इस दोनों मतों द्वारा प्रस्तुत तर्कों का विवरण निम्न प्रकार है–
(1) युद्ध अपरिहार्य था (̆त ̈ प्दकपेचमदेपइसम) – जो लेखक यह मानते हैं कि युद्ध अवश्य होना था, अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं–
(प) विभाजन (क्पअपेपवद)– इस युद्ध से पूर्व अमेरिका उत्तर और दक्षिण दो क्षेत्रों में बँट गया था ।
दोनों की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रीतियाँ परस्पर प्रतिकूल थीं।
(पप) विरोधी हित (ब्वदजतंकपबजवतल प्दमजमतमेज) दोनों के हित एक–दूसरे से इतने विपरीत
थे कि उनके बीच कोई बीच का रास्ता या समझौता नहीं हो सकता था।
(पपप) आर्थिक क्षेत्र (म्बवदवउपब थ्पमसक)
() आर्थिक क्षेत्र में दक्षिण मुख्यतः कृषि प्रधान था, जबकि उत्तर औद्योगिक दृष्टि से
प्रगतिशील था।
(इ) दक्षिण में खूब अनाज और कच्चा माल होता था पर वहाँ कोई उद्योग नहीं था । उत्तर
में उद्योग थे।
(ब) दक्षिण मुख्यतः दास – श्रमिकों पर निर्भर था। इसके विपरीत उत्तर में स्वतंत्र मजदूर थे। (क) दक्षिण में कोई उद्योग नहीं थे और वह संरक्षणात्मक करों के विरुद्ध था, इसके विपरीत
उत्तर में उद्योग–धन्धे स्थापित थे।
(पअ) सामाजिक क्षेत्र – सामाजिक क्षेत्र में दोनों के क्षेत्रों के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता था । दक्षिण की सामाजिक व्यवस्था गुलाम–प्रथा पर आधारित थी। इसके विपरीत उत्तर का समाज गुलाम – प्रथा का विरोधी था ।
–
(अ) राजनैतिक क्षेत्र (च्वसपजपबंस थ्पमसक) राजनैतिक मामलों में दोनों क्षेत्र फेडरल सरकार पर
प्रभुत्व रखना चाहते थे।
अतः इस प्रश्न पर कि नये राज्यों को गुलाम राज्य के रूप में या स्वतंत्र राज्य के रूप में यूनियन में सम्मिलित किया जाये, उत्तर और दक्षिण के मध्य – निरन्तर विवाद रहता था। यदि वे स्वतंत्र राज्य के रूप में सम्मिलित होते थे तो उत्तर की शक्ति बढ़ जाती थी। इसके विपरीत यदि ये
पश्चिमी विश्व
छव्जै

दास राज्य के रूप में सम्मिलित होते तब दक्षिण की शक्ति बढ़ जाती थी। इसके विपरीत यदि ये दास राज के रूप में सम्मिलित होते तब दक्षिण की शक्ति बढ़ जाती ।

(अप) संवैधानिक मुद्दा (ब्वदेजपजनजपवदंस प्ेनम)

संविधान और राज्य के अधिकारों के बारे
में उत्तर और दक्षिण दोनों की अलग–अलग व्याख्या थी–

() शक्तिशाली केन्द्रीकृत सरकार– उत्तर के लोग यह चाहते थे कि एक शक्तिशाली
केन्द्रीकृत सरकार हो जिसके पास बहुत अधिकार हो ।

(इ) राज्यों के पास पर्याप्त अधिकार– इसके विपरीत दक्षिण के लोग इस बात के समर्थक
थे कि राज्यों के पास काफी अधिकार रहने चाहिये ।

(अपप) गुलाम प्रथा का संविधान की व्याख्या (ैसंअमतल ंदक जीम प्दजमत. चतमजंजपवद व जीम बवदतपइनजपवद) – गुलाम प्रथा और संविधान दोनों की व्याख्या दोनों पक्ष अपने–अपने ढंग से करने थे। दक्षिण के लोगों का कहना था कि गुलाम प्रथा को संविधान में मान्यता दी गयी है अतएव उसे समाप्त करना संविधान का उल्लंघन होगा। इसके विपरीत उत्तर के लोगों का विचार था कि गुलाम प्रथा अमेरिकी लोकतंत्र के सिद्धान्त के ही विरुद्ध है। अतः इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

2. युद्ध रोका जा सकता था ? (त बवनसक इम कपेचमदेमक ूपजी) – उपरोक्त मत के विपरीत कुछ इतिहासकारों के अनुसार युद्ध रोका जा सकता था, उनके अनुसार चार वर्ष के इस गृह–युद्ध के दौरान देश के विनाश के बाद जो कुछ प्राप्त हुआ था वह इसके बिना प्राप्त किया जा सकता था। इस मत के समर्थक अपने पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं–

(प) युद्ध ही एकमात्र मार्ग नहीं – निःसंदेह उत्तर और दक्षिण के बीच उनकी सामाजिक व्यवस्था मजदूर प्रणाली, संस्कृति, आर्थिक हित, राजनैतिक उद्देश्य, संवैधानिक सिद्धान्त, जीवन–दर्शन तथा नैतिकता का स्तर जैसे मामलों में गम्भीर मतभेद और अन्तर थे तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि इन मतभेदों का समाधान करने के लिये युद्ध आवश्यक था और युद्ध के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं था ।

(पप) मनोवैज्ञानिक कारण – युद्ध दासत्व आदि कारणों से नहीं हुआ बल्कि युद्ध के कारण मनोवैज्ञानिक थे। दोनों पक्षों के बीच पारस्परिक आदान–प्रदान और

विचार–विमर्श का अभाव था। दोनों पक्षों ने इन कारणों को बहुत बढ़ा–चढ़ाकर उछाला।

(पपप) पारस्परिक गलतफहमियाँ– दक्षिण के लोगों ने यह गलती की कि उन्होंने गुलाम प्रथा के विनम्र विरोधियों तथा कट्टर विरोधियों के मध्य कोई भेद नहीं किया था। यदि यह भेद कर लिया गया होता तब संघर्ष न होता । इसी प्रकार उत्तर के लोगों ने छिटपुट घटनाओं का अर्थ यह निकालने की गलती की कि दक्षिण के लोग सारे देश में गुलाम प्रथा का विस्तार करना चाहते है।

(पअ) इच्छा के विपरीत– अधिकांश लोग मतभेदों को दूर करने के लिये युद्ध नहीं चाहते थे। अतः

यह युद्ध व्यर्थ ही लड़ा गया।

झ

(अ) निहित स्वार्थ – राजनीतिज्ञों, भाषण देने वालों और अखबारों के सम्पादकों ने अपने निजी लाभ के लिये जनता को गुमराह किया और उनकी भावनाओं को उभारा । क्षेत्रीय भावना को इस सीमा तक उभारा और उकसाया गया कि लोगों ने तर्कपूर्ण ढंग से सोचना ही बन्द कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्षों के लोग एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। इस प्रकार दोनों पक्षों के प्रमुख नेताओं के गैर उत्तरदायी दृष्टिकोण के कारण ही यह युद्ध हुआ । यह निष्कर्ष रैश्डल के इस मत के अनुरूप है कि सारी पीढ़ी की गलतियों के कारण ही यह युद्ध हुआ ।

गृह–युद्ध के दौरान दोनों पक्षों की स्थिति इतनी अधिक अनिश्चित थी कि यह कह पाना असम्भव था कि कौन – सा जीतेगा ।

1. उत्तर का पक्ष – उत्तर की स्थिति निम्न प्रकार सुदृढ़ थी–

(प) उत्तर की सुदृढ़ भौतिक साधन– भौतिक साधनों के मामलों में उत्तर की स्थिति दक्षिण की

तुलना में सुदृढ़ थी।

(पप) दक्षिण की सुदृढ़ सैनिक स्थिति– सैनिक दृष्टि से कुछ मामलों में दक्षिण की स्थिति उत्तर

की अपेक्षा अधिक अच्छी थी।

(पपप) जनसंख्या मुद्दा – जनसंख्या के संबंध में उत्तर का पलड़ा दक्षिण की तुलना में कुछ भारी था। उत्तर के साथ जो 23 राज्य थे उनकी कुल जनसंख्या 2 करोड 20 लाख थी। इसके विपरीत दक्षिण के साथ जो ग्यारह राज्य थे उनकी कुल जनसंख्या 90 लाख थी। इस 90 लाख की जनसंख्या में तीस लाख से कुछ अधिक गुलाम थे, जिन्हें लड़ाई के अन्तिम दिनों में ही प्रयोग किया गया। उत्तर में भी काफी लोग खेती, उद्योग और व्यापार के कम में लगे हुए थे। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे सेना में काम करेंगे तथापि जनसंख्या का मुद्दा अधिक महत्वपूर्ण नहीं था। इस संबंध में टी. एल. लिबरमोर ने कहा है कि दक्षिण को उत्तर की तुलना में कम मानव–शक्ति की आवश्यकता थी और दोनों की जनसंख्या में जो अन्तर था उस पर विचार करते

समय हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि उत्तर को केवल आक्रमण के लिये ही अधिक आदमियों की आवश्यकता नहीं थी बल्कि दक्षिण से छिन जाने वाले इलाकों पर आधिपत्य बनाये रखने के लिये भी उसे अधिक आदमियों की आवश्यकता थी ।

(पअ) उत्तर की विकसित औद्योगिक स्थिति– उद्योगों की दृष्टि से उत्तर अधिक उन्नत था और इसमें रेल की अच्छी व्यवस्था थी। लगभग सभी औद्योगिक क्षेत्र उत्तर में ही स्थित थे। दक्षिण को तैयार चीजें उत्तर कारखानों से मँगानी पड़ती थी ।

(अ) युद्ध सामग्री के लिये निर्भरता – उद्योगों के विकसित होने से उत्तर युद्ध का सारा आवश्यक समान स्वयं बना सकता था। इसके विपरीत दक्षिण की युद्ध सामग्री के लिये बाहर के देशों पर निर्भर रहना पड़ता था। युद्ध काल में उत्तर के समुद्री बेड़ों ने दक्षिण के बन्दरगाहों की नाकबन्दी करके बाहर से सामना मँगाने के सभी मार्ग बन्द कर दिये थे।

2. दक्षिण का पक्ष – दक्षिण की स्थिति निम्न प्रकार सुदृढ़ थी– कुछ मामलों में दक्षिण की स्थिति

उत्तर की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक थी ।

(प) सैनिक जीवन– दक्षिण के लोगों को सैनिक जीवन का अधिक अभ्यास था ।

(पप) सेनापतित्व – दक्षिणके पास राबर्ट ई०ली और स्टोनवाल जैक्सन जैसे योग्य सेनापति भी थे।

(पपप) प्रतिरक्षात्मक युद्ध–दक्षिण को उत्तर के आक्रमण से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने को लड़ना

था।

}

(पअ) हार को बचाना मात्र – दक्षिण यूनियन से अलग हो गया था। अब यह काम उत्तर को करना

था कि वह उसे यूनियन में पुनः शामिल होने के लिये बाध्य करे। दक्षिण के सामने केवल यही कार्य था कि वह किसी प्रकार स्वयं को हार से बचाता रहे। इससे उत्तर स्वयं बाध्य होकर समझौता कर लेता ।

(अ) विस्तृत क्षेत्र – उत्तर को युद्ध में विजयी होने के लिए दक्षिण को निर्णायक पराज्य देनी थी। दक्षिण के सम्पर्ण भाग को जीतना एक बडा भारी काम था, क्योंकि दक्षिण के राज्य 5 लाख वर्ग मील से अधिक क्षेत्र में फैले हुए थे। कानफेडरेसी के जनरल यूरीगार्ड ने कहा था कि,

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

245

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

246

बहुत कम लोगों को अपनी स्वतंत्रता के लिए इतनी सुविधाजनक स्थिति में लड़ना पड़ा होगा, जितनी सुविधाजनक स्थिति में कानफेडरेसी को अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ने का अवसर मिला और उसके बावजूद भी अगर सैनिक युद्ध में उनकी पराज्य हो गई, तो किसी भी देश को युद्ध लड़कर स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। दक्षिण के पास विशाल भौतिक साधन हैं, पहाड़, नदियाँ रेल व तार जैसे रक्षा के साधन है, देश के लिए भीतर युद्ध के लिए सुविधापूर्ण व्यवस्था है। ऐसी स्थिति में भी यदि दक्षिण हार जाता है, तो एक देश के रूप में इसकी जनता के लिए यह बड़ी बदनामी की बात होगी जब तक कि यह सिद्ध न कर दिया जाये कि उसकी हार का कारण भौतक विषमता नहीं बल्कि कुछ और ही था।

उत्तर की जीत के प्रमुख कारण

(डंपद ब्ंनेमे व जीम टपबजवतल व जीम छवतजी)– निम्नलिखित कारणों से गृह–युद्ध में उत्तर की विजय हुई–

(1) जनसंख्या – (च्वचनसंजपवद) – उत्तर और दक्षिण दोनों ओर सेना में उन्हीं लोगों को भर्ती किया, जो स्वयं भर्ती होने के इच्छुक थे, पर जल्दी ही दोनों को परिस्थितिवश जबरी लामबंदी का सहारा लेना पड़ां दक्षिण में जनसंख्या बहुत थोड़ी थी, अतः जल्दी ही वहाँ स्वेच्छा से भर्ती होने वाले लोगों का अन्त हो गया। दक्षिण ने अप्रैल 1862 में जबरी लामबंदी की आज्ञा निकाली । फेडरल सरकार तथा राज्यों की सरकारों ने स्वेच्छा से भर्ती होने वालों को आकृष्ट करने के लिए उदारतापूर्वक धन तथा सुविधाएँ दीं। परिणामतः युद्ध लम्बा खिंच जाने पर भी उत्तर की सेना में अधिक संख्या में सैनिकों का विद्यमान होना दक्षिण के लिए एक मनोवैज्ञानिक तथा वास्तविक भय का कारण बन गया। यद्यपि उत्तरी सेना के बहुत से सैनिक युद्ध में मारे गये थे, लेकिन युद्ध के अन्तिम वर्षों में ऐसा प्रतीत होता था कि यूनियन की सेनायें लगातार आगे बढ़ रही हैं। इसके विपरीत दक्षिण की सेना के सैनिकों के मारे जाने से दक्षिण की सेना लड़ने से भयभीत हो गयी थी । हतोत्साहित सेना का पराजित होना अवश्यभावी होता है।

(2) वित्त (थ्पदंबबम) – उत्तर के पास अपेक्षाकृत सम्पत्ति अधिक थी। वह दक्षिण की तुलना में अधिक सुविधापूर्वक धन का प्रबन्ध करने की स्थिति में था। उसने विभिन्न प्रकार के कर लगाकर धन एकत्र किया। कांग्रेस ने पहली बार आयकर लगाया । खाद्यान्न, कपड़ा, तम्बाकू, शराब, रेल के टिकट आदि सभी पर कर लगाये गये। कांग्रेस ने शुल्क भी बढ़ा दिये, जिससे आय बढ़ गई। करारोपण से उत्तर के उद्योगों को संरक्षण भी मिल गया जिससे उनको उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिला।

धन एकत्र करने के लिए फेडरल सरकार ने 25 मिलियन डालर से अधिक मूल्य

के बांड जारी किये। उसने करैन्सी बढ़ा दी। 400 मिलियन डालर से अधिक कीमत की ग्रीन बैक नामक कागजी करेन्सी जारी की गयी। इस करेन्सी के बदले में सोने या चाँदी की सुरक्षित मात्रा नहीं रखी गई बॉडों की बिक्री को प्रोत्साहन देने और अच्छी करैन्सी की व्यवस्था करने के उद्देश्य से कांग्रेस ने 1836 में नेशनल बैंकिंग एक्ट पास किया। दूसरी और कानफेडरेसी के पास धन की मात्र सीमित थी । युद्ध शुरू होने पर उसे यह आशा थी कि वह अपनी कपास बेचकर धन प्राप्त कर लेगी। लेकिन युद्ध प्रारम्भ होते ही उत्तर ने दक्षिण के बन्दरागाहों की नाकेबन्दी कर दी थी जिस कारण दक्षिणी कानफेडरेसी अपनी कपास बेच नहीं पायी । दक्षिण ने भी करोड़ों डालर की कागजों मुद्रा जारी की लेकिन इस करैन्सी को पूरी मान्यता नहीं मिली । अन् कोई उपाय न देखकर कानफेडरेसी ने नागरिकों को समान के बदले में जबरदस्ती यह करैन्सी लोने के लिये बाध्य किया। उसने इस प्रकार धन के बजाय उत्पादन सामग्री के रूप में कर एकत्र करके किसी तरह अपना काम चलाया।

(3) उत्पादन में वृद्धि (प्दबतमेंम पद च्तवकनबजपवद) – उद्योगों की दृष्टि से उत्तर दक्षिण से रेष्ठतर था। उत्तर का औद्योगिकरण इस युद्ध में दक्षिण की हार काएक प्रमुख कारण बन गया। यदि युद्ध लम्बी अवधि तक न चलता तो दक्षिण के लोग उत्तर की इस सुविधाजनक स्थिति का सामना उस युद्ध सामग्री से कर सकते थे जो उन्होंने फेडरल सरकार के किलों पर आधिपत्य स्थापित करके वहाँ से प्राप्त की थी और जो सामग्री वे नाकाबन्दी होन के बावजूद बाहरी देशों से मँगा रहे थे।

युद्ध लम्बा खिचने पर दक्षिण को यूरोपीय देशों से युद्ध सामग्री नहीं मिल सकी। इसका कारण यह था कि उत्तर की समुद्री सेना ने उसके बन्दरगाहों की नाकाबन्दी कर दी भ। दक्षिण के सैनिकों को अच्छा भोजन, वस्त्र–शस्त्र उपलब्ध ा नहीं हो पाते थे। सैनिक कैम्पों में सफाई की भी व्यवस्था उपयुक्त नहीं थी। इसके विपरीत उत्तर की सेना को आवश्यकता की सारी चीजें उत्तर के कारखानों से मिल जाती थी। कृषि के क्षेत्र में उत्तर ने कृषि की गई मशीनरी की सहायता से खूब उत्पादन बढ़ाया जो साधारण जनता और सैनिकों की आवश्यकता के लिये ही काफी नहीं था बल्कि फालतू अनाज बाहर भी भेजा गया।

(4) योग्य सेनापति (।इसम ळमदमतंसे) – गृह–युद्ध प्रारम्भ होने पर कानफेडरेसी की सेना में अमेरिका के सबसे योग्य सेनापति थे । राबर्ट ई०ली महान और वीर सेनापति था, पर डेविस ने अपने निरंकुश स्वभाव के कारण अपने सेनापतियों की सैनिक प्रतिभा का पूरा लाभ नहीं उठाया। उसने उनको काम करने की पूरी स्वतंत्रता नहीं दी। इसके विपरीत लिंकन अपने सेनापतियों को पूरी स्वतंत्रता देने को तैयार रहता था। इस योग्य सेनापति ग्राण्ट ने ही रिशमाण्ड में ली को पराजित किया और उसे हथियार डालने को बाध्य किया। इसके अतिरिक्त दक्षिण ने एक भूल और की थी। युद्ध के शुरू में वह उत्तर पर आक्रमण करने में चूक गया और चुप बैठा रहा । इसका परिणाम यह हुआ कि इस अवधि में

उत्तर ने अपनी सेना तथा आर्थिक साधनों को पूरी तरह से युद्ध के लिये तैयार कर लिया ।

5. योग्य राजनैतिक नेता (।इसम च्वसपजपबंस स्मंकमते)– युद्ध की नीति निध्रारित करने तथा सेनापतियों की नियुक्ति के मामले में लिंकन ने अनेक गलतियाँ की थीं। लेकिन उसमें जनता की इच्छा और भावना के अनुकूल स्वयं के बदलने की योग्यता थी । उसमे अपना विरोध और अपनी आलेचना सहने की अदम्य क्षमता थी। अतएव उसे सदैव सहयोग मिलता रहा ।

दूसरी ओर, यद्यपि डेविस हिम्मती, ईमानदार और योग्य प्रशासक के गुणों से सम्पन्न था, लेकिन संकट के समय नेतृत्व प्रदान करने के लिये जिस शारीरिक और भावनात्मक बल की आवश्यकता होती है उसका उसमें पूर्ण अभाव था । उसमें सहनशीलता का गुण नहीं था । अपनी सरकार के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। कानफेडरेल कांग्रेस द्वारा पास किये गये 38 बिलों पर उसने बीटो का प्रयोग किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे सहयोग नहीं मिल सका ।

6. श्रेष्ठ समुद्री सेना (छवइइसम छंअंस च्वूमत) – उत्तर की समुद्री सेना श्रेष्ठ थी । युद्ध के दौरान उत्तर का समुद्री बेड़ा पूरी तरह से समुद्र पर छाया रहा। दक्षिण बेड़ा उसको चुनौती नहीं दे पाया। इसने उत्तर को समुद्र की ओर कानफेडरेसी पर आक्रमण करने का अवसर मिला। इसके साथ–साथ उसे दक्षिण के सभी बन्दरगाहों में नाकेबन्दी और भी अधिक दृढ़ होती रही । यह नाकाबन्दी दक्षिण की पराज्य का एक प्रमुख कारण बनी। नाकाबन्दी होने के कारण कानफेडरेसी यूरोप के देशों से मशीनें तथा गोला–बारूद नहीं मँगा सकी। इनके बिना दक्षिण युद्ध में जीत नहीं सकता था । दक्षिण अपने बन्दरगाहों की नाकाबन्दी के कारण अपना कपास भी यूरोप को नहीं भेज पाया। कपास बेचकर दक्षिण को जो धन मिलता, वह भी नाकाबंद के कारण उसे नहीं मिल पाया। नाकाबन्दी के बावजूद कुछ सामान यूरोप के देशों से दक्षिण आ रहा था लेकिन वह बहुत मँहगा मिलता था । दक्षिण ने उत्तर का सामना करने के लिए समुद्री बेड़ा बनाने का प्रयास तो किया पर उसके पास नवीन प्रकार के उन्नत तथा प्रभावी जंगी जहाज बनाने के औद्योगिक साधन नहीं थे। नाकाबन्दी ने दक्षिण के आर्थिक जीवन को अवरुद्ध कर दिया और दक्षिण की पराज्य हुई द्य

7. विदेशी सहायता न मिल पाना (छवद ।अंपसंइपसपजल वथ्िवतमपहद ंपक)– यूरोप के देशों में से कोई भी देश कानफेडरेसी की सहायता के लिये नहीं आया। रूस और जर्मनी ने उत्तर को समर्थन प्रदान किया। फ्रांस और इंग्लैण्ड तटस्थ रहे। यद्यपि दोनों का झुकाव दक्षिण की ओर था, लेकिन उन्होंने दक्षिण की कोई सक्रिय सहायता नहीं की । एक व्यापारी देश होने के कारण इंग्लैण्ड ने तटस्थ रहना ही हित में समझा और इस प्रकार उत्तर और दक्षिण दोनों से व्यापार कर सका।

स्व–प्रगति की जाँच करें

3. गृह–युद्ध के समय दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की स्थिति काफी दृढ़ थी? इसके प्रमुख कारण लिखें।

4. गृह–युद्ध की स्थिति पर नियंत्रण के लिए लिंकन ने जो व्यवस्था की थी, उसे स्पष्ट करे।

इकाई.6

सारांश

राजनीतिज्ञों, भाषण देने वालों और अखबारों के सम्पादकों ने अपने निजी लाभ के लिये जनता को गुमराह किया और उनकी भावनाओं को उभारा । क्षेत्रीय भावना को इस सीमा तक उभारा और उकसाया गया कि लोगों ने तर्कपूर्ण ढंग से सोचना ही बन्द कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्षों के लोग एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। इस प्रकार दोनों पक्षों के प्रमुख नेताओं के गैर उत्तरदायी दृष्टिकोण के कारण ही यह युद्ध हुआ । यह निष्कर्ष रैश्डल के इस मत के अनुरूप है कि सारी पीढ़ी की गलतियों के कारण ही यह युद्ध हुआ ।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. राष्ट्रवाद (छंजपवदसपेउ) – एक विचारधारा के अनुसार गृह–युद्ध का कारण राष्ट्रवाद की भावना थी। आर्थिक विकास तथा भौतिक उन्नति के परिणामस्वरूप उत्तरवासियों में राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ हो गयी थी, लेकिन दक्षिण में इस भावना की कमी थी । यद्यपि दक्षिण में भी यूनियनिस्ट जैसे ग्रुप अमेरिकी राष्ट्रवाद की भावना के स्थान पर दक्षिण के प्रति राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ थी वहाँ पर इन लोगों की संख्या पर्याप्त थी, जिन पर राष्ट्रवाद का कोई प्रभाव नहीं था, अतएव वे संघ से पृथक होना चाहते थे । 2. लिंकन के प्रयास (म्ििवतजे उंकम इल स्पदवबवसद) – 4 मार्च 1861 को राष्ट्रपति लिंकन राष्ट्रपति बने। इस समय तक उत्तर दक्षिण के बीच कोई समझौता नहीं हो पाया था। अपने उद्घाटन भाषण में लिंकन ने कहा संविधान की अपेक्षा संघ अधिक पुराना है, कोई भी राज्य स्वेच्छा से संघ से अलग नहीं हो सकता, पृथकतावादी अध्यादेश अवैध है । पृथकतावाद के लिए हिंसात्मक कार्य विद्रोहात्मक और क्रांतिकारी है इस प्रकार राष्ट्रपति ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सभी राज्यों में कानून लागू करने तथा पृथक हुए राज्यों में संघीय सम्पत्ति पर पुनराधिकार करने के लिये कृत–संकल्प है। इसमें सुम्टर और पिकेस के दुर्ग भी सम्मिलित थे ।

3. इसके प्रमुख निम्न कारण थे–

प) आर्थिक सुदृढ़ता आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तर काफी सम्पन्न था।

पप) उत्पादन

युद्धकाल में इसका उत्पादन काफी बढ़ गया था ।

पपप) जनाधिक्य उत्तर में जनाधिक्य भी अधिक था अतः सैनिकों की भर्ती की सुविधा थी । उत्तर

में 93 राज्य थे वहाँ की जनसंख्या लगभग दो करोड़ बीस लाख थी।

4. लिंकन की भूमिका (त्वसम व ि स्पदबवसद)– स्थिति पर नियंत्रण करने के लिये लिंकन ने अपने परामर्शदाताओं को नियुक्त किया। इसमें गणतंत्रवादी दल की प्रत्येक विचारधारा के लोग थे। सेवार्ड नेज और स्टैनटन उच्चकोटि के परामर्शदाता थे।

गृह–युद्ध काल में लिंकन युद्ध विभाग का प्रधान था। उसने निम्न व्यवस्था की –

(प) उसने विद्रोह के दमन के लिये सेना बुलाई,

(पप) उसने अनियमित ढंग से नियमित सेना की संख्या में वृद्धि की,

(पपप) उसने दक्षिण की नौ सैनिक नाकेबन्दी करने की घोषणा की।

अभ्यास प्रश्न

1.

अमेरिकी गृह–युद्ध के कारणों की समीक्षा करें।

2.

गृह–युद्ध के आरम्भ का वर्णन करें।

3. अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनाओं की समीक्षा करें।

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

4.

दक्षिण पर उत्तर की जीत सुनिश्चित करने वाले कारणों का विवरण दें।

248

अध्याय – 10

इटली का एकीकरण

इस अध्याय के अन्तर्गत :

कार्वेनरी का प्रारम्भ

☐ राष्ट्रवादियों और देशभक्तों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम की तैयारियाँ

मेजिनी और पीडमान्द का प्रादुर्भाव

☐ गैरीवालडी का योगदान

माक्किवश – डी– कैवूर का इटली के एकीकरण में योगदान कैवर की विदेश नीति

सम्राट विक्टर इमैन्युएल द्वितीय

अध्याय के उद्देश्य :

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :

कार्वेनरी का प्रारम्भ क्यों हुआ?

☐ राष्ट्रवादियों और देश भक्तों द्वारा इटली में स्वतंत्रता संग्राम की तैयारियों के कारण समझ सकेंगे

मेजिकी, पीडमान्ट और गैरीवाल्डी के योगदान का विश्लेषण कर सकेंगे माक्किवश डी. कैवूर के योगदान की व्याख्या कर सकेंगे
डी. कैवूर की विदेशनीति का विश्लेषण कर सकेंगे तथा सम्राट विक्टर इमैन्युएल द्वितीय के द्वारा इटली के एकीकरण के लिए किये गए प्रयासों की समीक्षा कर सकेंगे

परिचय

नेपोलियन बोनापार्ट ने इटली के अनेक छोटे–छोटे राज्यों का अन्त करके उनको एक बड़े साम्राज्य के रूप में गठित कर दिया था। फलस्वरूप इटली की जनता में राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता आदि की भावनाएँ जागृत हो गयीं और वे देश का एकीकरण करने का प्रयास करने लगे।
1815 ई० नेपोलियन प्रथम का पतन हो गया और वियना कांग्रेस निर्णयों के अनुसार इटली को पुनः छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त कर दिया गया। प्राचीन राजवंशों के शासकवर्ग के उत्तराधिकारियों का इन राज्यों के राज्य सिंहासन पर पुनः अधिकार हो गया। इनमें से अनेक निरंकुश तथा स्वेच्छाचार थीं। साथ ही वे प्रतिक्रियावादी भी थे। शासन सत्ता प्राप्त करते ही उन्होंने अनेक कल्याण के कानूनों को समाप्त कर दिया। लोम्बार्डी तथा बेनिशिया आस्ट्रिया के साम्राज्य के अंग बन गये। असकनी परमा, लुक्का तथा मोडेन ने छोटे–छोटे राज्यों को आस्ट्रिया के राजकुमार अथवा राजकुमारियों को दे दिये गये। सेवाय में विक्टर इमेनुयल तथा पोप में रोप का शासन स्थापित था। इस प्रकार मैटरनिख के शब्दों में इटली केवल एक भौगोलिक उक्ति थी ।
कार्वेनारी का प्रारम्भ इस प्रकार वियना में एकत्रित रजनीतिज्ञों ने इटली को छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित कर दिया परन्तु वे इटलीवासियों में व्याप्त स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व की भावना एवं राष्ट्रीयता के उच्च विचारों को समाप्त नहीं कर सके। इटलीवासियों का विचार था कि वियना कांग्रेस में सम्मिलित राजनीतिज्ञों ने देश के छोटे–छोटे भागों में विदेशी शासकों को दे दिया है और वे सब उनके दास हो गये हैं। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर उन्होंने अपने देश को विदेशियों के लिए कार्बोनारी (ब्तइवदंतल) नामक गुप्त समितियाँ स्थापित कर लीं। इस सम्बन्ध में ग्रांट तथा टैम्परले का कथन है– इटली के एकीकरण के कार्य को करने के लिए गुप्त समितियाँ जिनमें कार्बोनारी सर्वप्रमुख है, प्रत्येक स्थान पर स्थापित की गयी ।
वियना कांग्रेस ने इटली की सारी व्यवस्था को समाप्त करके पुराने राज्यों का पुनरुद्धार किया था । सम्पूर्ण इटली छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित था। षीडमौण्ट सार्डीनिया परम, मोडेना, अस्कनी, नेपुल्स, सिसली आदि इटली के प्रमुख राज्य थे । लोम्बार्डी और विनिशहा दो राज्य आस्ट्रिया के अधीन थे। इनके अलावा पोप का अलग स्वतंत्र राज्य था । (टमपद–दं ब्वदहतमे) के पश्चात् इन सभी राज्यों में वहाँ के प्राचीन निरंकुश राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन कर दिए गए और राष्ट्रीयता तथा उदार विचारों का प्रभाव नष्ट करा

दिया गया।

इटली के राष्ट्रवादी और देशभक्तों हेतु पुरातन व्यवस्था की यह स्थिति असह्य थी। नेपोलियन के जमाने में वे राष्ट्रीय एकता का अनुभव कर चुके थे और चाहते थे कि उनका देश राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर एक हो जाये और इटली में जनतंत्र के सिद्धान्तों के आधार पर शासन कायम हो । परन्तु राष्ट्रीयता के नाम पर इटली में किसी प्रकार का आन्दोलन मेटरनिख के रहते असम्भव था। इस हालत में जगह–जगह गुप्त समितियाँ संगठित होने लगीं। इनमें ब्तइवदंतल समिति सबसे प्रमुख थी । संवैधानिक स्वतंत्रता का प्राप्त करना एवं विदेशियों को इटली से बाहर निकालना इस समिति के प्रमुख उद्देश्य थे। इटली देशभक्तों की यह एकमात्र संस्था थी जिसमें सभी वर्ग के लोग सम्मिलित थे। 1834 तक कार्बोनरी समिति के नेतृत्व में ही इटली का स्वातन्त्र्य संग्राम चलता रहा ।

1820–21 के विद्रोह – स्पेन के विद्रोह से प्रेरणा लेकर 1820 में नेपेल्स और 1821 में पीडमौण्ट के देशभक्तों की क्रांति की ज्वाला को भीषण रूप से सुलगाकर वहाँ के राजाओं को खदेड़ भगाया गया परन्तु मेटरनिख ने ऑस्ट्रिया से सेना भेजकर इटली के दोनों राज्य की क्रांतियों का दमन करवा दिया और यह नवीन संविधानों को भंग कर राज्य सिंहासनों पर पुनः निरंकुश राजाओं को बैठा दिया। तत्पश्चात् इटली में प्रतिक्रियावादी कठोर शासन प्रारम्भ हुआ। उन पर भीषण अत्याचार किए गये। जीरो की संस्था में क्रांतिकारी जेल में बन्द कर दिए गए।

1830–31 के विद्रोह – असंतोष की ज्वाला इटली में बुझी नही । सम्पूर्ण इटली में ब्तइवदंतल समितियों का जाल बिछा दिया गया। इटली के राष्ट्रवादी चुपके–चुपके राष्ट्रीयता संग्राम की तैयारी करने लगे। 1820 में फ्रांस में जुलाई क्रांति की सफलता ने इटली के देशभक्तों में नवजीवन का संचार किया । इटली के एक कोने से दूसरे कोने तक विद्रोह की अग्नि धधक पड़ी। इसी बीच आस्ट्रिया की सेना तुरन्त इटली पहुँच गयी और विद्रोहियों का दमन क्रूरतापूर्वक किया गया। क्रांति की लहर फिर रुक गयी। इस प्रकार इटली में उदारवाद को एक बार फिर पराज्य मिली।

मेजिनी और युवा इटली – 1815 से 1831 तक इटली की एकता स्थापित करने के लिए जो प्रचार हुए थे वे बेकार साबित हुए । इसी समय इटली में ड्रंपदप नामक एक महान् विभूति का प्रादुर्भाव हुआ उसने इटली के राष्ट्रीय जीवन में एक नयी जान फूँक दी। इटली के राष्ट्रीय आन्दोलन का वह पैगम्बर था। बचपन से ही उसमें देशभक्ति की भावना कूट–कूटकर भरी थी । 1830 की क्रांति के पूर्व वह कार्बोनरी समिति का सदस्य था। उस वर्ष की क्रांति में उसने भी भाग लिया था जब क्रांति दबा दी गयी तो सेबोना दुर्ग में उसे कैदी बनाकर भेज दिया गया था। जेल में उसको इटली मुक्त करने के आह्वान मिला था। बाद में वह निष्कासित कर दिया गया। देश–विदेश में घूमने के बाद वह 1831 ई० फ्रांस पहुँचा और वहाँ ल्वनदह प्जंसल नामक एक संस्था की स्थापना की जिसने

राष्ट्रीय आन्दोलन में शीघ्र ही कार्बोनरी का स्थापना ले लिए और नवीन इटली के निर्माण में बड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लिया। युवकों पर मेजिनी का पूरा–पूरा भरोसा था। उसका कहना था कि यदि समाज में क्रांति लानी हो तो क्रांति का नेतृत्व नवयुवकों के हाथ में दे दो । युवक समाज के सदस्यों में असीम शक्ति छिपी होती है। इस प्रकार मेजिनी के पास ऐसे बहुत से नवयुवक इकट्ठे हो गए, जिसमें देशभक्त का अपार जोश था और जो भारी से भारी कठिनाइयों का सामना करने के लिए भी तैयार थे। मेजिनी ने अपनी संस्था द्वारा देश–प्रेम की उत्कृष्ट भावना उत्पन्न की। चरित्रवान, वीर साहसी और स्वतंत्रता संग्राम के लिए योग्य सैनिक बनाया और संगठित करके उनमें विप्लव की प्रवृत्ति उत्पन्न की। मजिनी के संदेशों ने युवकों में जोश फूँक दिया। स्थान–स्थान पर इसकी शाखाएँ खुलने लगी और दो वर्ष के भीतर ही इसके साठ हजार सदस्य हो गए। इटली का स्वतंत्रता संग्राम एक नये युग में प्रविष्ट हुआ और राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए शक्तिशाली जनमत तैयार हो गया।

इसी समय इटली के कुछ निर्वासित देशभक्त इटली से बाहर काम कर रहे थे। विदेशों में इटली के एकीकरण के पक्ष में प्रचार करना उसका मुख्य उद्देश्य था । इनमें उन्हें आशातीत सफलता मिली। विदेशों का जनमत इटली के पक्ष में तैयार होने लगा। इटलीवालों के साथ इंग्लैण्ड की पूरी सहानुभूति थी ।

इटली के सारे राष्ट्रवादियों में अपार जोश छाया रहा। सन् 1818 ई० में, जब सारे यूरोप में क्रांतियाँ प्रारम्भ हुईं तो उसका इटली पर भी प्रभाव पड़ा। इटली के एक छोर से दूसरे छोर तक राष्ट्रवादी और प्रजातांत्रिक आन्दोलन शुरू हो गए। सिसली के लोगों ने इसी वर्ष सिसली के सुधार एवं लोगों के राजनीतिक अधिकार हेतु विद्रोह शुरू किया । वहाँ के राजा ने शुरू में विद्रोह का दमन किया, परन्तु अन्त में उसे मुँह की खानी पड़ी और सिसली में वैधानिक सरकार स्थापित हो गई। मार्च 1848 में तीनों राज्यों – नेपल्स, सिसली और टस्कनी संविधान जारी करके संसदीय शासन लागू कर लिया गया । इटली के अधीन इस प्रकार लोम्बार्डी और विनिशिया को छोड़कर लगभग सारे इटली में सांविध ाानिक राजतंत्र स्थापित हो गए ।

सन् 1850 ई० के पहले ही पीडमांट इटली के देशभक्तों का केन्द्र बन गया था। फिर इटली में केवल यही राज्य था जिसका शासक इटली का था जो अनेक कठिनाइयों के बीच में रहकर भी संविधान में आस्था रखता था। इसी बात को लेकर उसने सन् 1858 ई० में आस्ट्रिया के साथ घमासान युद्ध किया था। अतः इटली के सभी देशभक्तों को यह गहरा विश्वास जम गया था कि पीडमान्ट के नेतृत्व में ही उनके देश का कल्याण हो सकता है।

मेजिनी के समान इटली में एक दूसरा देशभक्त था जिसने अपने प्रसिद्धपत्र त्पेवतहपउमदजव के द्वारा सुधार और एकता के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया। उसके विचारों से प्रेरित होकर टपबजवत म्उंदनमस प्प ने 1850 में को अपने मंत्रिमण्डल में ले लिया। वह सन् 1852 ई० में प्रधानमंत्री भी हो गया और काबूर इस पद पर सन् 1861 तक बना रहा। सिर्फ बीच में उसे पद त्याग

करना पड़ा था ।

काबूर

के प्रधानमंत्री हो जाने के बाद इटली की स्वतंत्रता और एकता दूसरे राष्ट्रों की सहायता पर निर्भर करती है। ऐसा उसे विश्वास था । उसने पिडमांट में संसदीय शासन प्रणाली का विकास किया तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया। उसने देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाया ओर वाणिज्य–व्यवसाय की उन्नति के लिए विशेष प्रबन्ध किया । कारखानों को सरकारी सहायता दी ओर रेलों, सड़कों तथा नहरों का विस्तार किया। शिक्षकों की उन्नति की गई और सेना में सुधार किया गया। काबूर ने चर्च की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया। उसने कृषि को उन्नत किया और दलदलों एवं उजाड़ प्रदेशों को हरे–भरे खेतों में परिवर्तित कर दिया। देखते–देखते पीडमाण्ट एक आधुनिक राज्य बन गया।

इटली के एकीकरण के लिए काबूर की अपनी नीति और अपना तरीका अलग था। काबूर अपनी नीति द्वारा इटली को आस्ट्रिया की ताकत से शक्ति दिलाकर सेवाय वंश के नेतृत्व में एक करना चाहता था । अतः काबूर इटली की समस्या को एक अन्तर्राष्ट्रीय बना देना चाहता था। 1815 से बराबर इटली को आस्ट्रिया का घरेलू मामला समझा जाता था ।

एक बार काबूर ने कहा था, हम चाहें या न चाहें, हमारा भाग्य फ्रांस पर निर्भर है। अतएव आस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस को समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करके इटली का एकीकरण सम्भव बनाना । काबूर नीति था । इधर टर्की के प्रश्न को लेकर रूस से इंग्लैंड और फ्रांस का झगड़ा चल रहा था काबूर के लिए यह बहुत ही सुन्दर मौका था। वह शीघ्र की फ्रांस और इंग्लैण्ड की क्रीमिया की लड़ाई में तन–मन–धन से मदद करने लगा। सार्डीनिया की सेना बहुत बहादुरी के साथ लड़कर विजय प्राप्त कर अपने देश लौट आयी। इसी जीत से पीडमाण्ट को अत्यधिक लाभ हुआ। पेरिस की संधि के अवसर पर सन् 1856 ई० में काबूर ने इटली के प्रश्न को उठाया और आस्ट्रिया के शासन की खूब भर्त्सना की । फलतः सारे यूरोप की बड़ी–बड़ी शक्तियाँ भी उस समस्या पर विचार करने लगीं।

काबूर ने पुनः एक दूसरा कदम उठाकर फ्रांस के शासक नेपोलियन को इटली की मदद हेतु अपनी तरफ मिला लिया। इन दोनों में सन् 1856 में संधि हुई। यह तय हुआ कि आस्ट्रिया के युद्ध में नेपोलियन तृतीय सार्डीनिया की मदद करेगा। साथ ही साथ यह भी तय किया गया कि लम्बार्डो और बैनिशिया से खदेर कर ये दोनों प्रांत मिला दिये जायेंगे । नेपुल्स और रोम को अक्षुण्ण रखा जायेगा और बचे हुए को अलग राज्य बना दिया जाये । बदले में फ्रांस को नीस और सेवाय देने की बात कही गई।

प्लाम्बियर समझौते के अनुसार आस्ट्रिया से युद्ध का बहाना ढूँढ़ना सार्डीनिया का उत्तरदायित्व था। इसीलिए उसने शीघ्र ही सार्डीनिया का शस्त्रीकरण करना

प्रारम्भ कर दिया। इस पर आस्ट्रिया ने उसे चेतावनी देना प्रारम्भ किया और तीन दिनों के भीतर ही उसने उत्तर माँगा परन्तु काबूर ने इस ओर ध्यान न दिया और अपनी योजना में ही व्यस्त रहा। अन्त में आस्ट्रिया ने सेनापति गले के नेतृत्व में 1,00,000 सेना के साथ 19 अप्रैल 1859 ई को को पीडमाण्ट पर आक्रमण कर दिया। इसके ठीक 10 दिनों बाद 29 अप्रैल 1859 ई० को फ्रांस से भी दो लाख सैनिक काबूर की मदद में आ पहुँचे । युद्ध में आस्ट्रिया की सेना हर जगह पराजित होने लगी। आस्ट्रिया की सेना लोम्बार्डी से खदेड़ दी गई । प्रतीत होने लगा था कि कुछ ही दिनों में इटली पर आस्ट्रिया के प्रभाव एवं आधि ापत्य का अन्त हो जायेगा ।

जिस समय काबूर विजय प्राप्त कर रहा था उसी समय नेपोलियन ने उसे धोखा दे दिया और युद्ध से अलग हो गया। इतना ही नहीं उसनेे टपबजवत म्उंदनमस से बिना पूछे ही श्रनसल 14, 1859 में आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ से टपससंतिंदबम नामक स्थान पर मुलाकात कर एक संधि कर ली और अपनी सेना युद्ध भूमि से हटा लिया। काबूर युद्ध को जारी रखना चाहता था परन्तु सम्राट के राजी न होने पर काबूर ने अपना पद त्याग दिया। अन्त में दुःखित होकर काबूर ने अपने एक मित्र से कहा था कि – छवजीपदह तमउंपदे वित उम दवू इनज जव चनज इनससमज जीतवनही उल ीमंक तत्पश्चात् म्उंदनमस ने द्वितीय रेटाजी को अपना प्रधानमंत्री बनाया परन्तु उससे काम नहीं निकलता था। इसलिए 20 जनवरी, 1860 ई० को काबूर पुनः प्रधानमंत्री हुआ ।

राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने की भावना 1859 में ही प्रबल हो गई थी। आटिया के साथ युद्ध आरम्भ होने से सारा इटली राष्ट्रीयता की लहर से ओतप्रोत था । उसी समय मध्य इटली की जनता ने विद्रोह कर दिया

और प्रस्ताव स्वीकार करके यह निर्णय किया कि उनके राज्य सार्डीनिया के साथ मिला दिये जाएँ । काबूर ने नेपोलियन को नीस और सेवाय का लालच देकर इस बात पर राजी करा लिया। फलतः मध्य इटली के राज्य परमा, मोडेना तथा रोम सार्डीनिया में मिल गए। बैनेशिया को छोड़कर समस्त इटली उत्तरी इटली तथा मध्यवर्ती डचियों में एक शक्तिशाली इटालियन राज्य का निर्माण हो चुका था । 2 अप्रैल 1860 की सम्राट टपबजवत म्उंदनमस के नवीन संघीय शासन के अन्तर्गत ट्यूरिन में संसद का उद्‌घाटन किया ।

1860 ई० में सिसली की जनता ने बूब के निरंकुश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। ऐसे मौके पर प्रसिद्ध महान देशभक्त गैरीबाल्डी आगे बढ़ा। गैरीबाल्डी को इटली महत्ता और एकता में वैसा ही विश्वास था जैसा कि सन्तों को ईश्वर में रहता है। मई 1860 ई० में गैरीबाल्डी ने अपने प्रसिद्ध एक हजार कुर्तीवालों के साथ जेनोआ से प्रस्थान किया ओर सिसली पर आक्रमण कर दिया। 18 मई 1860 को कैलेटैफी नामक स्थान पर गैरीबाल्डी और नेपल्स की सेनाओं में पहली टक्कर हुई। गैरीबाल्डी विजयी हुआ

और 5 दिनों के भीतर वह सिसली की राजधानी पैलरमों तक पहुँच गया और अपने आपको उसने सिसली का अधिनायक घोषित कर दिया। तत्पश्चात् उसने

यह घोषणा की कि नेपल्स ओर सिसली इटली के राज्य में उसी समय शामिल किये जायेंगे जबकि रोम को जीत कर वह टपबजवत म्ुंदननमस को राजा घोषित करेगा । गैरीबाल्डी अब रोम पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। इटली ने राष्ट्रीय एकीकरण को पूर्ण करने के लिए 27 अक्टूबर 1860 की नेपल्स का शासन सम्राट विक्टर इमान्युएल को सौंप दिया। नवम्बर में दक्षिणी इटली में जमनत कराया गया। जनता ने जबरदस्त बहुमत से इटली के राज्य में शामिल होने की इच्छा प्रकट की। 7 नम्वबर को विक्टर इमैन्युएल के साथ फिर नेपल्स आया। 9 दिसम्बर, 1860 को नेपल्स के राजमहल में एक भव्य दरबार का आयोजन करके सम्राट टपबजवत म्ुंदननमस को संयुक्त इटली का राज्य सिंहासन अर्पित किया गया। गैरीबाल्डी ने विधिवत अपने अधिकार को त्याग कर विक्टर इमैन्युएल को राजा घोषित किया। इटली की मुक्ति कराने में गैरीबाल्डी ने परमवीर का काम किया । इतिहास में गैरीबाल्डी सदा अपने त्याग से अपूर्व देशभक्ति और आश्चर्यपूर्ण वीरता के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

बेनेशिया और रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली का एकीकरण हो चुका था। परंतु दुर्भाग्यवश 7 जून 1861 ई० में ही काबूर की मृत्यु हो गयी । इटली के इतिहास में काबूर का नाम सदा अमर रहेगा। इटली के एकीकरण का प्रधान श्रेय मेजिनी, गैरीबाल्डी, काबूर तथा विक्टर इमैन्युएल को है। जैसा कि इतिहासकार केटेलबी ने लिखा है – जेमिनी एक अव्यावहारिक आदर्शवादी था तथा गैरीबाल्डी एक महान लड़ाकू था परन्तु काबूर के बिना मेजिनी का आदर्श और गैरीबाल्डी की वीरता निष्फल लड़ाई और निराशा के इतिहास में एक अध्याय और बढ़ा देते । वास्तव में काबूर के द्वारा ही इटली का एकीकरण संभव हुआ। यह काबूर के महान मस्तिष्क का कार्य था जिसने मेजिनी की प्रेरणा की कूटनीतिक शक्ति थे और गैरीबाल्डी की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र के रूप में परिणत कर दिया।

तत्पश्चात् इटली वाले एक ऐसे मौके की ताक में थे, जब आस्ट्रिया की विपत्ति से लाभ उठाकर वे वेनेशिया पर कब्जा कर लें। 1866 में आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध छिड़ गया । इटली ने बेनेशिया पर आक्रमण कर दिया। जब आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध समाप्त हुआ तो विस्मार्क बेनेशिया को विक्टर इमैन्युएल को दिया गया। जब जनमत कराया गया तो जनता ने इटली के पक्ष में अपना मत दिया और 1866 ई० में बेनेशिया इटली में मिला लिया गया।

इस तरह सम्पूर्ण इटली का एकीकरण हो गया परंतु रोम अभी भी अलग था। रोम पर अधिकार करने का अवसर इटली को 1870 ई० में मिला। उस वर्ष फ्रांस और प्रशा के बीच युद्ध शूरू हो गया। इसी समय उसने रोम पर आक्रमण कर 20 सितम्बर ई० को उस पर अधिकार कराया गया। पोप के पक्ष में केवल 16 मत मिले। अतः रोम इटली में शमिल हो गया। 1871 ई० में रोम स्वतंत्र हो गया और संयुक्त इटली को राजधानी बनाया गया। जून 1871 ई० में टपबजवत म्ुंदननमस अपने परिवार, राजदरबारों और संसद के साथ रोम चला आया ।

स्व–प्रगति की जाँच करें :

1. कैवर के पद त्याग करने और पुनः पदासीन होने की घटना स्पष्ट करें।

2. विक्टर इमैन्युप्ल की मृत्यु

तत्पश्चात् जनता को सम्बोधित करते हुए उसने कहा – '' हम रो में आ गए हैं और यहीं रहेंगे ।'' इस तरह इटली का एकीकरण पूरा हो गया। अन्त में सन् 1878 में टपबजवत म्उंदनमस की मृत्यु हो गई ।

इटली के एकीकरण के विभिन्न चरण

प्रथम चरण (थ्पतेज ैजंहम) – पीडामाण्ट के प्रधानमंत्री काबूर ने फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय को नीस तथा सेवाय के प्रदेश प्रदान करने का लालच देकर पीडामाण्ट के लिए दो लाख फ्रांसिसी सैनिकों की सहायता प्राप्त कर ली और विक्टर इमैन्युएल से आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। मजेन्टा तथा सेलफिरमी के युद्ध में आस्ट्रिया को पराजित करके लोम्बार्डी से निकाल दिया गया। इस प्रकार लोम्बार्डी को प्राप्त कर लेना इटली एकीकरण का प्रथम चरण था ।

द्वितीय चरण ;ैमबवदक ैजंहम) – उत्तरी इटली की परमा, मोडेना, रोमेगना तथा रस्कनी आदि छोटी–छोटी रियासतों की जनता के हृदयों में राष्ट्रीय भावनाएँ प्रबल हो उठी थीं। अतः जनमत के आधार पर इन्हें पीडमाण्ट के साथ सम्मिलित करने का निश्चय किया । आस्ट्रिया ने इस प्रकार के निश्चय का दृ ढ़ता के साथ विरोध किया परंतु काबूर के प्रयत्नों के फलस्वरूप नेपोलियन तृतीय ने इसका समर्थन किया और आस्ट्रिया के विरोध की अवहेलना कर दी। इन चारों राज्यों ने जनमत के समय पीडमाण्ट के साथ विलय कर दिया गया।

तृतीय चरण (जीपतजी ैजंहम) – सिसली निवासियों ने 1860 ई० में अपने राज्य के बूब वंशीय शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। ग्यारह सौ सैनिकों के साथ वीर गैरीबाल्डी ने सिसली पर अधिकार कर लिया । नेपल्स के शासक को अपने प्राणों की रक्षा के लिए भागना पड़ा । गैरीबाल्डी ने अपनी विजय से उत्साहित होकर नेपल्स पर आक्रमण कर दिया और नेपिल्स पर उसका निर्विरोध अधिकार हो गया।

विक्टर इमैनुएल ने पोप के अन्तर्गत तथा अम्ब्रिया तथा मार्चेज (न्उइतपं ंदक डंतबीमे) के प्रदेशों को अपने अधिकारों में कर लिया। 27 अक्टूबर 1860 को गैरीबाल्डी नेपिल्स और सिसली का शासन विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को अर्पित कर दिया। अम्ब्रिया, मार्चेज, नेपिल्स को जनमत द्वारा पीडमाण्ट के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया । यह इटली का तृतीय चरण था जिसे पूर्ण करते ही बेनेशिया तथा रोम के अतिरिक्त सम्पूर्ण इटली का एकीकरण हो चुका था।

चतुर्थ चरण – (थ्वतजी ैजंहम) – 1866 ई० में ओस्ट्रो प्रशियन युद्ध (।नेजतव – च्तनेेपंद ॅंत) हुआ। प्रशा के प्रधानमंत्री विस्मार्क ने विक्टर इमैन्युएल को वचन दिया था कि यदि वह बेनेशिया पर आक्रमण करे तो वह उसे प्राप्त हो सकता है। एक विशाल आस्ट्रियन सेना इटालियन सेना का सामना करने के लिए बेनेशिया में पड़ी थी । अतः वह प्रशा के विरुद्ध अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग नहीं कर सका । विवश हो आस्ट्रिया को प्रशा के साथ संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार बेनशिया का प्रदेश इटली को प्रदान किया

गया।

इकाई.7

पाँचवाँ (थ्पजिीˆजंहम) – 1870 ई० में फ्रेकों प्रशियन (थ्तंदबव च्तनेपंदˆत) युद्ध आरम्भ हो जाने पर विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को रोम पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया, क्योंकि नेपालियन तृतीय ने अपनी सेना वापस बुला ली थी। नेपोलियन तृतीय के पतन के उपरांत विक्टर इमैन्युएल ने रोम पर आक्रमण करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। एक विशाल समारोह का आयोजन करके इटली को राजधानी घोषित किया गया। इस प्रकार इटली का एकीकरण सम्भव हो सका।

काबूर और गैरीबाल्डी

कैबूर (ब्अवनत) दृ 10 अगस्त 1810 ई० को टुरिन नामक नगर के एक कुलीन वंश में कैबूर का जन्म हुआ था। इसके पिता माक्किवश – डी– कैबूर ने उसे इंजीनियरिंग की शिक्षा दिलाई। इसके पश्चात् कैबूर सेना में भर्ती हो गया परंतु यह कार्य उसी रुचि के अनुसार नहीं था । अतः उसने 1831 ई० में त्याग–पत्र दे दिया। अब वह अपने पिता की जमीदारी की देखभाल करेन लगा । यहाँ रहकर उसने इतिहास

तथा अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के साथ–साथ फ्रांसीसी समाचार पत्रों के लिए अंग्रेजी अनाज अधिनियम (जैम म्दहसपेी ब्वतद स्रू) के विरुद्ध आलोचनात्मक लेख लिखे । उसने देश तथा विदेश की कृषि समितियों में भाग लिया। अपने देश में उसने रेल व्यवस्था की उन्नति के लिए प्रयास किये। इसी काल में उसने प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्थाओं के अध्ययन के उद्देश्य से इंग्लैण्ड, फ्रांस स्विटजरलैण्ड की भी यात्रा की । वह इंगलैड की सभा (भ्वनेम व्ब्वउउवदे) से सर्वाधिक प्रसन्न हुआ। इंग्लैण्ड की लोकसभा से प्रभावित होकर उसने एक बार कहा था– ओह यदि मैं अंग्रेज होता तो मैं इस समय तक कुछ होता और मेरा नाम पूर्ण रूप से अपरिचित नहीं होता ।

कैबूर ने 1847 ई में रिसओरिज्जीमेट (त्पेवतपहपउमदज) नामक उदार नीति वाले समाचारपत्र का सम्पादन करके अपने आपको इटली के एकीकरण में लगा दिया। वह अब धीरे–धीरे चारों ओर प्रसिद्ध होने लगा । 1848 ई० में पोलैण्ड के संसद सदस्य निर्वाचित होने पर उसने अनेक लोककल्याण कारी नियम पारित कराये। 1850 में उसे पीडमाण्ट के मंत्रिमण्डल में कृषि तथा वाणिज्य विभाग का मंत्री नियुक्त किया गया। 1851 ई में उसे अर्थ विभाग भी सौंप दिया गया । वह अत्यन्त कार्य कुशल तथा योग्य मंत्री था, जिससे प्रभावित होकर पीडमाण्ट के शासक विक्टर इम्न्युयल ने उसे 1852 ई में सार्डीनिया और पीडमाण्ट के सम्मिलित राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया।

वह सदैव ही इटली के एकीकरण के विषय में सोचा करता था और उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन भर प्रयत्न किया तथा काफी सफल भी रहा । कैबूर एक उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ तथा प्रजातंत्र का समर्थक था। उसने अपने एक मित्र को एक बार लिखा था। संसद अधिवेशन होते समय मैं अपने आपको सर्वाधिक शक्तिशाली अनुभव करता हूँ। मैं अपनी उत्पत्ति को धोखा नहीं दे सकता और

न ही अपने सम्पूर्ण जीवन के सिद्धान्तों को त्याग सकता हूँ। मैं स्वतंत्रता का पुत्र हूँ। और आज मैं जो कुछ भी हूँ उसके लिए स्वतंत्रता का ही ऋणी हूँ। यदि उसकी प्रतिभा पर पर्दा डाला जाना हो तो मैं इस कार्य को नहीं कर सकूँगा ।

कैबूर प्रधानमंत्री के रूप में (1852–1861)

(ब्ंअवनत) चतपउम–डदपेजमत 1852–1861)

गृह–नीति (भ्वउम च्वसपबल) – कैबूर सार्डीनिया पीडमाण्ट की संरक्षता में इटली का एकीकरण करने का इच्छुक था और इस कार्य के लिए इटली के अन्य राजाओं को भी प्रेरित करना आवश्यक था । सार्डीनिया पीडमाण्ट के संरक्षण में इटली के एकीकरण के लिए अन्य राजाओं को प्रेरित करने के उद्देश्य से कैबूर ने सार्डीनिया पीडमाण्ट को एक आदर्श राज्य में परिवर्तन कर दिया। जिसके फलस्वरूप अन्य राज्य उसका नेतृत्व करने के लिए उनकी ओर आकर्षित होने लगे । सार्डीनिया पीडमाण्ट को आदर्श प्रजातंत्रीय राज्य बनाने के लिए कैबूर ने निम्नलिखित कार्य किए–

उसने व्यापारिक उन्नति के लिए फ्रांस तथा इंग्लैण्ड आदि देशों में व्यापारिक संधियाँ कीं जिसके फलस्वरूप सार्डीनिया से पीडमाण्ट में आने वाले माल पर चुंगी की दर कम कर दी गई। इनसे

केवल कच्चा माल ही सुगमता से प्राप्त होने लगा वरन् सभी प्रकार का माल सस्ता हो गया। यातायात के साधनों की उन्नति करने के उद्देश्य से रेलों तथा सड़कों की व्यवस्था ठीक प्रकार से की गई और उसने 1854 ई० से प्युरिन से जेनेवा तक की एक महत्वपूर्ण रेलवे लाइन का उद्घाटन किया।` कृषि की उन्नति के लिए अनेक सहकारी समितियों की स्थापना की गई। व्यापारिक उन्नति के लिए पुराने बैकों में सुधार करने के साथ–साथ नवीन बैंकों की भी स्थापना की गई और स्वतंत्रता एवं मुक्त व्यापार के सिद्धान्त (च्तपदबपचसम वि थ्तमम जतंकम) को अपनाया गया ।

शिक्षा में भी आश्चर्यजनक उन्नति की गई और अनेक नवीन शिक्षण संस्था की स्थापना की गई।

5. गणतंत्र के साथ–साथ आतंकवाद का भी प्रचार किया गया तथा सामुद्रिक एवं व्यापारिक अड्डों की स्थापना की गई और जनरल मारेलोला की अध्यक्षता में सैन्य शक्ति में न केल वृद्धि की गई वरन् सेना का पुनर्गठन भी किया गया।

पश्चिमी विश्व

चर्च की सम्पत्ति पर अनेक प्रकार के कर लगाये गये और अनावश्यक गिरजाघरों को समाप्त कर दिया। कैबूर स्वतंत्र देश में स्वतंत्र धर्म के सिद्धान्त का प्रबल समर्थक था । अतः उसने पोप की सत्ता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया और सार्डीनिया पीडमाण्ट को एक वैधानिक राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया तथा वह प्रायः कहा करता था – वह अपने चारों ओर इटली की जीवित शक्तियों को आकर्षित कर लेगा और फिर जिस उद्देश्य की प्राप्ति की उससे उपेक्षा की जाती है उसमें इटली का नेतृत्व करने में वह समर्थ होगा।

विदेश नीति (थ्वतमपहद च्वसपबल)– यूरोप में इटली के लिए मित्रों की खोज

ही कैबूर की विदेश नीति की आधारशिला थी । एक कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति वह जानता था कि इटली को आस्ट्रिया के चंगुल से बिना अन्य राष्ट्रों की सहायता से मुक्त नहीं कराया जा सकता और इस कारण मित्र राष्ट्रों की खोज ही उसकी विदेश नीति का प्रथम लक्ष्य था प्रो० राबर्ट ने इस सम्बन्ध में लिखा है उसने सार्डीनिया के लिये यूरोपीय देशों का सम्मान तथा उसकी मित्रता प्राप्त करना ही अपना प्रथम लक्ष्य बनाया। उसने मेजिनी तथा उसके सहयोगियों की क्रांतिकारी योजनाओं, जिन्होंने कि उनको व्यवस्थित सरकार के समर्थकों से पृथक कर दिया था, का कठोरता के साथ दमन कर दिया।

अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए कैबूर ने निम्न प्रयत्न किए –

कैबूर ने 1855 ई० में लोम्बार्डी से भागे हुए शरणार्थियों को अपने यहाँ स्थान प्रदान किया और आस्ट्रिया ने उनके ऊपर अपना विरोध प्रकट करते हुए वियना से अपने राजदूत को वापस बुला लिया। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ने कैबूर का समर्थन किया। सार्डीनिया पीडमाण्ट की सरकार ने शरणार्थियों को सहायता प्रदान की।

सार्डीनिया पीडमाण्ट के समाचार–पत्र आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रचार करने लगे और जनता ने युद्ध सामग्री खरीदने के लिए धन एकत्रित करना आरंभ कर की निन्दा की क्योंकि उनके विचार में रूस के विरुद्ध टर्की की प्रतिक्रियावादी सरकार की सहायता करना अनुचित तथा अर्थहीन था । कैबूर ने उनकी आलोचना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और युद्ध – क्षेत्र में निरन्तर अपनी सेनायें भेजता रहा। उसका विचार था – '' यूरोप की वर्तमान राजनैतिक स्थिति में इटली के एकीकरण में ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस के साथ मित्रता ही एकमात्र उपाय है जो कि हमें सहायता के रूप में प्राप्त है। ''

अतः इंग्लैण्ड तथा फ्रांस की सहायता के लिए सार्डीनिया की सेना भेजी गई, जिसने युद्ध क्षेत्र में आश्चर्यजनक वीरता का परिचय देते हुए अद्भुत सफलता प्राप्त की । जब सार्डीनिया की सेना ने कैबूर से क्रीमिया की कीचड़ के विषय में शिकायत की तो कैबूर ने उत्तर दिया था– इस कीचड़ से इटली का नव–निर्माण होगा।

3. क्रीमिया के युद्ध के उपरान्त 1856 में पेरिस की शान्ति सभा में कैबूर को भी आमंत्रित किया गया और इस प्रकार सार्डीनिया पीडमाण्ट को भी यूरोपीय राष्ट्रों में वही स्थान प्राप्त हो गया जिसके लिए कैबूर लालायित था । पेरिस की शान्ति सभा में कैबूर ने अन्य शक्तिशाली यूरोपीय राष्ट्रों के सम्मुख आस्ट्रिया पर अनेक दोष लगाये तथा इस कार्य में उसे फ्रांस और इंग्लैण्ड का समर्थन प्राप्त हुआ। अपने देश वापस आने पर उसने सहर्ष अपनी सरकार को सूचित किया शक्तिशाली राष्ट्रों ने घोषित किया कि इटली के दोषों को दूर करने के उपाय न केवल इटली के हित में वरन् यूरोप के हित में आवश्यक है ।

इस प्रकार क्रीमिया के युद्ध में भाग लेकर सार्डीनिया पीडमाण्ट का राज्य इटली के एकीकरण के आन्दोलन का नेतृत्व करने लगा।

4. इंग्लैण्ड तथा फ्रांस दोनों ही आस्ट्रिया विरोधी थे इसलिये कैबूर ने इन दो

देशों की मित्रता प्राप्त करने का प्रयास किया। कैबूर को इंग्लैण्ड की शासन प्रणली ने आत्यधिक प्रभावित किया था और इंग्लैण्ड की जनता की सहानुभूति इटली के एकीकरण के प्रश्न में थी परंतु इंग्लैण्ड की सरकार 1815 ई० की वियना व्यवस्था को बनाये रखना चाहती थी। फ्रांस पोप की अध्यक्षता में इटली के एकीकरण के पक्ष में था और वियना व्यवस्था को समाप्त करने का इच्छुक था । इस प्रकार इटली के नेता कैबूर के लिये इंग्लैण्ड तथा दो भिन्न मत वाले देशों की मित्रता प्राप्त करना ठीक कार्य था।

फ्रांस के समय भी ओसीनी ने इटली जिन्दावाद का नारा लगाया था। ओसीनी के इस बलिदान से नेपोलियन तृतीय अत्यधिक प्रभावित हुआ। कुछ व्यक्तिगत भय के कारण, कुछ इटली की वास्तविक शक्ति तथा इंग्लैण्ड एवं आस्ट्रिया के मध्य बढ़ती हुई मैत्री को रोकने के उद्देश्य से सम्राट नेपोलियन तृतीय कैबूर के साथ संधि करने के लिए सहमत हो गया।

इटली का एकीकरण

कैबूर का मूल्यांकन मुख्यतया कैबूर का ही कार्य था । गैरीबाल्डी तथा मैजिनी की कल्पनाओं को उसने साकार किया। उसके सम्बन्ध में यह कहना अनुचित नहीं होगा वह तीव्र बुद्धि वाला था उसने मैजिनी की प्रेरणा को एक कूटनीतिज्ञ शक्ति तथा गैरीबाल्डी की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र में परिवर्तित कर दिया। कैबूर स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र को घोर समर्थक तथा कट्टर उपासक था। उसके विषय में ठीक ही लिखा गया कि यदि यूरोपीय शक्तियों का विश्वास सहानुभूति में से जिनकी बुद्धि को संकटकालीन स्थिति में मान्यता प्रदान की जाती है, एक न होता तो मैजिनी के समस्त प्रयास संदेहपूर्ण षड्यंत्रों में विफल हो जाने तथा गैरीबाल्डी का शस्त्रों का चमत्कार इटली के इतिहास में अनुत्पादक देशभक्ति का एक और अध्याय जोड़ देना ।

महान् राजनीतिज्ञ कैबूर ने इटली के संगठित राज्य को दृढ़ता प्रदान की तथा उसे विकास के पथ पर अग्रसर किया। केवल कैबूर ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसे इटली के एकीकरण करने जैसे कठिन कार्य में आश्चर्यजनक सफलता मिली। नेपोलियन तृतीय उसकी पत्नी तथा उसके विश्वासपात्र मंत्रियों ने सार्डीनिया की विजय में सशंकित होकर तथा रोम में पोप की सत्ता बनाये रखने के उद्देश्य से सार्डीनिया के साथ विश्वासघात करके आस्ट्रिया के साथ संधि कर ली तो कैबूर को नेपोलियन के इस कार्य से महान दुख हुआ और ह्रदय से उसने अपने एक मित्र को लिखा– मेरे पास सिवाय इसके कि मैं अपने सिर में गोली मारकर आत्महत्या कर लूँ अन्य कोई उपाय नहीं हैं उसने नेपोलियन तृतीय की सहायता के बिना ही युद्ध करने का निश्चय किया, जिससे उसके दृढ़ निश्चय होने का आभास मिलता है।

1867 में कैबूर का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए इंग्लैण्ड की लोकसभा में लार्ड पामस्टर्न (स्वतक च्ंसउमतेजवद) ने कहा था– कैबूर ने आदर्शों की ओर इंगित करने वाला तथा कहानियों को सुसज्जित करने के लिए अपने नाम को अमर कर लिया है। अतः हम निश्चयपूर्वक कह सकते

हैं कि इटली के एकीकरण करने में अन्य देशभक्तों की अपेक्षा कैबूर का सहयोग सर्वाधिक है।

गैरीबाल्डी (ळंतपइंसकप) — इटली के एकीकरण को सफल बनाने वाले व्यक्ति में कैबूर के बाद गैरीबाल्डी का ही स्थान आता है। इटली के नीस नामक नगर में 1877 ई० में गैरीबाल्डी का जन्म हुआ था। उसकी पढ़ने—लिखने में रुचि न थी, इस कारण वह भूमध्य सागरीय प्रदेशों में व्यापार करने लगा था। कालान्तर में मैजिनी द्वारा स्थापित यंग इटली (ल्वनदह प्जंसल) नामक संस्था का सदस्य बन गया । प्रो. मुकर्जी ने गैरीबाल्डी को इटालियन स्वतंत्रता का वीर पुरुष कहकर पुकारा है। अन्य इतिहासकार के अनुसार— गैरीबाल्डी में शेर का हृदय तथा बैंक का मस्तिष्क था।

उसने 1931 ई० में सार्डीनिया के नाविकों के विद्रोह का नेतृत्व किया और सार्डीनिया की सरकार ने . उसे मृत्यु दण्ड देने का निश्चय किया। सूचना मिलने पर गैरीबाल्डी अपने प्राण बचाकर अमरीका भाग गया। वहाँ पर उसने अपना विवाह रचा लिया। अमरीका में रहकर उसने लाल कमीज (त्मक ेीपतज) के नाम से एक दल की स्थापना की। इसके सदस्य लाल कमीज पहनते थे और ये सदस्य अमरीका के गृह—युद्ध में भाग लेने कारण गुरिल्ला युद्ध प्रणाली में अति प्रशिक्षित हो गये थे ।

12 वर्ष उपरान्त 1848 ई० में वह पुनः इटली वापस आ गया और आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्धों में भाग लेता रहा । सार्डीनिया के सम्राट द्वारा आस्ट्रिया के साथ संधि कर लेने के उपरान्त वह स्विटजरलैण्ड चला गया। 1849 ई० उसने असफल रूप से नेपोलियन के विरुद्ध रोम के गणतंत्र की रक्षा की और वह पुनः अमरीका

भाग गया।

अमरीका में इस बार उसने व्यापार द्वारा अपार धन एकत्रित कर लिया और 1854 ई० युद्धों में वह पुनः इटली वापस आ गया। सार्डीनिया के निकट उसने कैपरैरा नामक (ब्मचतमत) नामक द्वीप खरीद लिया और वहीं पर उसने रहना आरम्भ कर दिया। 1856 ई० में कैबूर से भेंट करने के उपरान्त वह इटली के वैध ा राजसत्ता का समर्थक बन गया। जब सार्डीनिया के शासक विक्टर इमैनुएल ने 1859 ई० में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो वह कैबूर की समिति से कोनो तथा मेग्गिओरे (ब्वउप ंदक डंहहिपवतम)के निकटवर्ती प्रदेशों में अपने तीन हजार स्वयंसेवकों के साथ आस्ट्रिया से निरन्तर युद्ध करता रहा। विक्टर इमैनुएल ने ज्युरिच की संधि के अनुसार युद्ध बन्द कर दिया तो कैबूर तथा गैरीबाल्डी को घोर निराशा हुई। फलस्वरूप कैबूर ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया और गैरीबाल्डी स्विटजरलैड

चला गया।

नेपिल्स तथा सिसली राज्यों की जनता ने 1860 ई० में इन स्थानों में निरंकुश और स्वेच्छाचारी बुर्बो वंशीय शासक फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह कर

दिया। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस से नेपिल्स तथा सिसली के राज्य सार्डीनिया से संधि ा करने का परामर्श दे चुके थे। इन देशों ने यह भी स्पष्ट कह दिया कि नेपिल्स तथा सिसली अपने यहाँ आवश्यक सुधार करे तथा इटली के एकीकरण एवं सार्डीनिया के सम्राट इमैनुयल की अध्यक्षता में वैध शासन प्रणाली के सिद्धान्तों को स्वीकार कर ले।

नेपिल्स के शासन ने इस परामर्श की अवहेलना कर दी, जिसके फलस्वरूप यहाँ की जनता ने कैबूर तथा गैरीबाल्डी के समर्थन पर अपने शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का समाचार सुनकर गैरीबाल्डी तुरन्त अपने 2072 स्वयंवेकों सहित जेनेवा से सिसली के बन्दरगाह मारसला (डंतंसं) जा पहुँचा और सिसली राजधनी पारलेमो (च्ंतसमउव) पर आक्रमण कर दिया। केलेटफीमी के युद्ध में गैरीबाल्डी ने अपने स्वयंसेवकों को इस प्रकार प्रोत्साहन दिया था – '' यहाँ हम इटली का निर्माण करेंगे अथवा प्राण देंगे। ''

झ

इस प्रकार विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् गैरीबाल्डी से सिसली की राजधानी पालेरमी (च्ंसमतउव) में प्रवेश किया, जहाँ कि क्रांतिकारी जनता ने उसका भव्य स्वागत किया। मिलाजो (डपसेंव) के युद्ध के उपरान्त सम्पूर्ण दक्षिण इटली पर गैरीबाल्डी का अधिकार हो गया। फ्रांस के शासक नेपोलियन तृतीय ने मेमीना जलडमरूमध्य (`जतंपज व`िडमेपदं) पर अधिकार करने के लिए इंग्लैण्ड से सहायता की प्रार्थना की. परन्तु इंग्लैण्ड ने इसे इटली की आंतरिक समस्या कहकर सहायता देना अस्वीकार कर दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि गैरीबाल्डी इटल का सम्राट नेपिल्स पर गैरीबाल्डी का आक्रमण होने के पूर्व ही 6 सितम्बर 1860 ई० को अपने परिवार सहित गेटा (ळंपजं) भाग गया और नेपिल्स पर गैरीबाल्डी का बिना युद्ध के अधिकार हो गया और वहाँ का भी अधि ानायक बन गया।

कैबूर गैरीबाल्डी के नेपिल्स पहुँचने के पूर्व ही वहाँ परसेनो (चंतेंदव) नामक व्यक्ति द्वारा विद्रोह करवाकर नेपिल्स को सार्डीनिया में मिलाना चाहता था परन्तु अपनी योग्यता में असफल रहा और गैरीबाल्डी ने रोम के राज्य तथा बेनेशिया पर आक्रमण करने का निश्चय किया । फलस्वरूप गैरीबाल्डी तथा कैबूर में मतभेद उत्पन्न हो गया और उसने कैबूर के साथ असहयोग की घोषणा कर दी। दोनों में

मतभेद उत्पन्न हो गया और उसने कैबूर के साथ असहयोग की घोषणा कर दी। दोनों के मतभेद के तीन मुख्य कारण थे–

1. गैरीबाल्डी के जन्मस्थान नीस को कैबूर ने 1860 में प्यूरिन की संधि द्वारा फ्रांस के शासक

नेपोलियन तृतीय को देकर गैरीबाल्डी को अपने ही घर में विदेशी बना दिया । पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

2.

कैबूर ने सिसली विजय में गैरीबाल्डी को प्रत्यक्ष सहायता प्रदान नहीं की। कैबूर ने सिसली विजय में गैरीबाल्डी के नेपिल्स पर आक्रमण करने के पूर्व ही कैबूर ने वहाँ

3.

पर परसेनी (च्मतेंदव) नामक व्यक्ति से उपद्रव करा उसे सार्डीनिया के राज्य में मिलाने का प्रयास किया।

इस मतभेद के सम्बन्ध में सारा दोष कैबूर का ही नहीं था। उसके पक्ष में भी निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

1. मोडेना, पारमा घस्कनी तथा रोमेगना आदि छोटे–छोटे राज्यों को 1850 ई० में संगठित कर लिया गया था। इसके लिए फ्रांस के शासक की अनुमति आवश्यक थी और जिसे कुछ भेंट देकर ही प्राप्त किये गये ।

2

सार्डीनिया तथा सिसली के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे अतः कैबूर गैरीबाल्डी की प्रत्यक्ष सहायता नहीं कर सकता था क्योंकि ऐसा करना उसके लिए असम्भव तथा अवैध ाानिक था ।

3. कैबूर को भय था कि कहीं गैरीबाल्डी ने नेपिल्स में गणतंत्र स्थापित न कर दे जो भविष्य में विक्टर इमैन्युएल की वैधानिक राजसत्ता की संरक्षता में इटली के एकीकरण में बाधक हो। इसी कारण उसने गैरीबाल्डी पूर्व ही नेपिल्स पर अधि ाकार करने का प्रयास किया।

उपर्युक्त कारणों से ही दोनों के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गया। गैरीबाल्डी के रोम तथा बेनेशिया पर आक्रमण करने से कैबूर और भी अधिक चिन्तित हो उठा। बेनेशिया के प्रदेश पर आस्ट्रिया पर पोप का अधिकार था। रोम की सहायतार्थ फ्रांस ने अपनी सेनाएँ भेज दीं। बेनेशिया पर इस समय आक्रमण करने का तात्पर्य था – आस्ट्रिया से शत्रुता में वृद्धि करना और रोम पर आक्रमण का तात्पर्य था – नेपोलियन तृतीय के क्रोध को निमंत्रित करना । कैर नेपोलियन से शत्रुता की वृद्धि में पक्ष में नहीं था। क्योंकि इटली का एकीकरण उसके सहयोग के अभाव में अधूरा था । गैरीबाल्डी के रोम पर प्रस्थान करते समय उसने कहा था– इटली की विदेशी आक्रमणों, दोषी सिद्धान्तों तथा पागल व्यक्तियों से रक्षा की जानी चाहिये ।

अम्ब्रिया (न्उइतपं) तथा मार्चेस (

डंतबीमे) नामक राज्यों के उदारवादियों का दमन पोप की एक विशाल सेना ने बड़ी क्रूरता के साथ किया था। कैबूर ने पोप से इस सेना को भंग करने की प्रार्थना की। इससे पूर्व ही नेपोलियन तृतीय अम्ब्रिया तथा मार्चेज पर आक्रमण करने को तथा इस सेना को भंग करने की स्वीकृति ले चुका था। पोप का उत्तर प्राप्त होने के पूर्व ही सार्डीनिया की सेना ने कस्टलाफिडार्डो (ब्ंजसमपिकंतकव) के युद्ध में पोप की सेनाओं को पराजित करके अनकोन (।दबवदं) मर्चेज (डंतबीमे) तथा अम्ब्रिया के प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् रोमन तथा रोमन तथा नेपिल्स के निकट गैरीबाल्डी की सेनायें भी पहुँच गईं।

गैरीबाल्डी तथा सार्डीनिया की संयुक्त सेनाओं ने केपुआ (ब्चनं) गेरिगालिनों स्थान पर 26 अक्टूबर 1860 को सार्डीनिया के सम्राट का अभिवादन इन शब्दों में किया– ''मैं इटली नरेश को प्रणाम करता हूँ। ''

इस वाक्य से गैरीबाल्डी का विक्टर इमैन्युएल के प्रति अगाध श्रद्धा प्रदर्शित होती है। 1861 ई० में सार्डीनिया की सेना गेटा (ळमंमजं) नामक स्थान पर आक्रमण कर दिया और वहाँ का शासक फ्रांसिस द्वितीय वहाँ से भाग गया। 1860 ई० से गैरीबाल्डी उदारता से अपने द्वारा विजित प्रदेशों विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को भेंट कर दिये । सम्राट ने उसे अनेक उपाधियों तथा उपहारों से अलकृत करना चाहा, परन्तु गैरीबाल्डी ने उन सबको अस्वीकार कर दिया और 9 नम्वबर 1860 ई० को वह एक झोला आलू लेकर अपने निवास स्थान के परेरा के द्वीप पर चला गया। 6 जून, 1861 ई० को त्युरिन नामक नगर में उसकी मृत्यु हो गयी ।

स्व–प्रगति की जाँच करें : 3. संक्षेप में कैवर का मूल्यांकन
करें।
4. स्पष्ट करें कि गैरीबाल्डी की विक्टर इमैन्युएल के
ह
प्रति आगाध श्रद्धा थी ।
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
259
पश्चिमी विश्व
छव्जमे

इटली में आज भी गैरीबाल्डी की निःस्वार्थ भावना और अजेय साहस तथा शैर्य की गाथाएँ बड़े गर्व के साथ पढ़ी और सुनी जाती हैं।

सम्राट विक्टर इमैन्युएल द्वितीय (ज्ञपदह टपबजव म्उंदनमस प्प) – सेवाय वंशीय सम्राट चार्ल्स एल्वर्ट का पुत्र विक्टर इमैन्युएल द्वितीय था । उसे सार्डीनिया तथा पीडमाण्ट का साम्राज्य 1848 ई० क्रांति के उपरान्त अपने पिता से उत्तराधिकारी में प्राप्त हुआ था और 1852 ई० में इसी ने कैबूर को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। इसने इटली के एकीकरण में असाधारण योगदान दिया परन्तु इसकी सेवायें गम्भीर तथा गुप्त थी।

विक्टर इमैन्युएल द्वितीय ने कैबूर को इटली एकीकरण करने में पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी । इटली को शक्तिशाली तथा संगठित राष्ट्र के रूप में निर्मित करने में विक्टर इमैन्युएल ने कैबूर को पूरा–पूरा सहयोग तथा समर्थन प्रदान किया । वह कैबूर का अन्धा होकर समर्थन नहीं करता था। इसी कारण कैबूर को 1856 तथा 1859 में त्याग–पत्र देना पड़ा। वह योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति था। उसे कैबूर से अत्यधिक प्रेम तथा परन्तु इटली के प्रति उसका प्रेम असीमित था ।

विक्टर इमैनयुएल ने 1855 ई० में इटली की क्लरीकल पार्टी (ब्समतपबंस च्तंजल) से समझौता कर लिया तो कैबूर अप्रसन्न हो गया और उसने त्याग पत्र दे दिया। 1859 ई० में विक्टर इमैन्युएल ने विल्ला फ्रेंका (टपससं थ्तंबं) की

अस्थायी संधि तथा ज्युरिच की स्थायी संधि को स्वीकार कर लिया तो कैबूर ने पुनः त्यागपत्र दे दिया। इन दोनों ही अवसरों पर उसने परामर्श की अवहेलना करके उसके त्याग–पत्र को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उसने स्वतंत्र तथा सबल होने का भी परिचय दिया ।

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

260

सारांश

विक्टर इमैनयुएल द्वितीय तथा कैबूर दोनों ही का इटली से असीम तथा अगाध ा प्रेम था और इस कारण दोनों में अधिक समय तक मतभेद न रहकर समझौता हो जाता था। इन दोनों के कार्यों तथा सम्बन्धों की विवेचना करते हुए एक इतिहासकार ने लिखा है – '' इटली का सौभाग्य था कि उसका सम्राट न केवल एक शासक ही था वरन् शक्तिशाली राजनीतिज्ञ भी था, जिसमें उसके नायक को जबकि उसकी शक्ति राष्ट्रीय कार्य के लिए संकट उत्पन्न कर रही थी रोम की शक्ति थी । ''

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. जिस समय काबूर विजय प्राप्त कर रहा था उसी समय नेपोलियन ने उसे ध ाोखा दे दिया और युद्ध से अलग हो गया। इतना ही नहीं उसने टपबजवत म्उंदनमस से बिना पूछे ही श्रनसल 14, 1859 में आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ से टपससंतिंदबम नामक स्थान पर मुलाकात कर एक संधि कर ली और अपनी सेना युद्ध भूमि से हटा लिया। काबूर युद्ध को जारी रखना चाहता था परन्तु सम्राट के राजी न होने पर काबूर ने अपना पद त्याग दिया। अन्त में दुःखित होकर काबूर ने अपने एक मित्र से कहा था कि

छवजीपदह तमउंपदे वित उम दवू इनज जव चनज ं इनससमज जीतवनही उल ीमंक कतलहंक म्उंदनमस ने द्वितीय रेटाजी को अपना प्रधानमंत्री बनाया परन्तु उससे काम नहीं निकलता था । इसलिए 20 जनवरी, 1860 ई० को काबूर पुनः प्रधानमंत्री हुआ ।

–

2. सन् 1878 में टपबजवत म्उंदनमस की मृत्यु हो गई ।

3.

इटली का एकीकरण

कैबूर का मूल्यांकन (म्जपउंजम व ब्ंअवनत ' ।बीपमअमउमदज) मुख्यतया कैबूर का ही कार्य था। गैरीबाल्डी तथा मैजिनी की कल्पनाओं को उसने साकार किया। उसके सम्बन्ध में यह कहना अनुचित नहीं होगा वह तीव्र बुद्धि वाला था उसने मैजिनी की प्रेरणा को एक कूटनीतिज्ञ शक्ति तथा गैरीबाल्डी की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र में परिवर्तित कर दिया। कैबूर स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र को घोर समर्थक तथा कट्टर उपासक था। उसके विषय में ठीक ही लिखा गया कि यदि यूरोपीय शक्तियों का विश्वास सहानुभूति में से जिनकी बुद्धि को संकटकालीन स्थिति

4.
में मान्यता प्रदान की जाती है, एक न होता तो मैजिनी के समस्त प्रयास संदेहपूर्ण षड्यंत्रों में विफल हो जाने तथा गैरीबाल्डी का शस्त्रों का चमत्कार इटली के इतिहास में अनुत्पादक देशभक्ति का एक और अध्याय जोड़ देना। 1861 ई० में सार्डीनिया की सेना गेटा (ळंमजं) नामक स्थान पर आक्रमण कर दिया और वहाँ का शासक फ्रांसिस द्वितीय वहाँ से भाग गया। 1860 ई० से गैरीबाल्डी उदारता से अपने द्वारा विजित प्रदेशों विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को भेंट कर दिये। सम्राट ने उसे अनेक उपाधियों तथा उपहारों से अलकृत करना चाहा, परन्तु गैरीबाल्डी ने उन सबको अस्वीकार कर दिया और 9 नम्वबर 1860 ई० को वह एक झोला आलू लेकर अपने निवास स्थान के परेरा के द्वीप पर चला गया। 6 जून, 1861 ई० को त्युरिन नामक नगर में उसकी मृत्यु हो गयी । इटली में आज भी गैरीबाल्डी की निःस्वार्थ भावना और अजेय साहस तथा शैर्य की गाथाएँ बड़े गर्व के साथ पढ़ी और सुनी जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. इटली की स्वतंत्रता में मेजिनी का क्या योगदान था ? विवेचना करें।

2

इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों का वर्णन करें।

3. कैबूर की उपलब्धियों का मूल्यांकन करें तथा गैरीबाल्डी का जीवनपरिचय देने हुए उसके

योगदानों का विवरण दें।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमस—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

261

bdkbZ-8

जर्मनी का एकीकरण, (1815—1870)

इस अध्याय के अन्तर्गत :

जर्मनी के एकीकरण की पृष्ठभूमि

फ्रांसीसी क्रान्ति के पहले जर्मनी की स्थिति

जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ

☐ मैटरनिस और जर्मनी

उदार वादी आन्दोलन का प्रारम्भ

श्लेजबिग हाल्सटीन का प्रश्न

फ्रैंकफर्ट संसद की सफलता

□ एकीकरण की पुनः चेष्टा तथा ऐरफर्ट संसद
बिस्मार्क का उदय उसकी रक्त और तलवार की नीतिे

अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :
जर्मनी के एकीकरण की पृष्ठ भूमि समझ सकेंगे
फ्रांसीसी क्रान्ति के पहले जर्मनी की स्थिति समझ सकेंगे
जर्मनी के एकीकरण में उपस्थित बाधाओं के कारण समझ सकेंगे
□ मैटरनिख और जर्मनी की स्थिति समझ सकेंगे
उदारवादी आन्दोलन का प्रारम्भ समझ सकेंगे श्लेजविग हाल्सटोन के प्रश्न की समीक्षा कर सकेंगे फ्रैंकफर्ट संसद की सफलता के कारण समझ सकेंगे
□ एकीकरण की पुनः चेष्टा तथा ऐरफर्ट संसद का विश्लेषण कर सकेंगे विस्मार्क का उदय उसकी रक्त और तलवार की नीति की व्याख्या कर सकेंगे जर्मन एकीकरण की पृष्ठभूमि – उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी का एकीकरण यूरोप के इतिहास में एक उल्लेखनीय घटना है। फ्रांसीसी क्रांति (1789) से पहले जर्मनी यूरोपीय देशों में राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक विभक्त देश था, जिसमें लगभग 300 राज्य थे। इन राज्यों में कुछ राजनीतिक और कुछ धार्मिक इकाइयाँ होती थीं। कुछ नाइट्स तथा कुछ मार्गेव्स (डंतहतंअमे) होते थे और कुछ स्वाधीन राज्य भी होते थे, आठ राज्यों के शासक, जो आस्ट्रिया को चुनते थे, इलैक्टर कहलाते थे।
परिचय
जर्मनी के राज्य भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से भिन्न–भिन्न आकार के थे। व्यापारिक दृष्टि से इन राज्यों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते है– उत्तर, मध्य, दक्षिण । जर्मनी के उत्तरी भाग के कुछ उल्लेखनीय राज्य थे– प्रशा (च्तनेपं), सैक्सनी (ैंगवदल), हैनोवर (भ्ंदवअमत), फ्रेंकफर्ट (थ्तंदा – वितज) इत्यादि, मध्य भाग में राइन – लैंड (तैपदम – स्ंदक) और दक्षिण में वुर्टेम्बर्ग, बवेरिया, वादेन, पैलेटिनेट, हेस – डर्मेस्टाट इत्यादि ।
जर्मन राज्य संपत्ति, सामरिक शक्ति और प्रशासकीय व्यवस्था में भी एक–दूसरे से भिन्न थे। इन्हें चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है–
1. अभिजात वर्ग– जिन्हें सम्राट से सीधे भूमि मिलती थी ।
2
स्वतंत्र राज्य – लुबेक, उल्म, हैनोवर, नूरेम्बर्ग
3. धार्मिक इकाइयाँ– मेंज, ट्रायर, कोलोन के मतदाता, साल्जवर्ग के प्रधान ध र्माध्यक्ष और बैम्बर्ग
मुन्स्टर के धर्माध्यक्ष इत्यदि ।
4. गैर– धार्मिक राजनीतिक इकाइयाँ– बैंडेनमबर्म, प्रशा, सेक्सनी, बेवेरिया, पैलेटिनेट, बुर्टेम्बर्ग, हैनोवर इत्यादि । इन राज्यों ने जर्मनी के इतिहास में ही

नहीं वरन् यूरोपीय इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । जर्मनी के दक्षिणी राज्यों का राजनीतिक दृष्टिकोण और सामान्य चिंतन उत्तरी भाग के राज्यों की अपेक्षा अधिक उदार था । उदाहरणार्थ, उत्तरी राज्य प्रशा का दृष्टिकोण स्वेच्छाचारी व रूढ़िवादी था, जबकि दक्षिण में बवेरिया, बुर्टेम्बवर्ग या वाददेन की शासन में उदारता थी ।

जर्मनी की राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रमुख राज्यों, जैसे प्रशा, सेक्सनी आदि में सामान्यतया नौकरशाही ही व्यापक रूप से विद्यमान थी । पवित्र रोमन सम्राट होने के कारण आस्ट्रिया के राजवंश हैम्सबर्ग को सैद्धांतिक रूप से विशिष्ट राजकीय गौरव प्राप्त था। परंतु उनके नामामात्र (ज्पजनसंत) के शासक होने के कारण वास्तव में प्रमुख राज्यों पर उनका राजनीतिक प्रभुत्व नहीं था। सभी राज्यों के अधिकार अपनी–अपनी पैतृक – भूमि – सीमा से जुड़े हुए थे। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि अठारहवीं शताब्दी में फ्रेडरिक द ग्रेट के समय से प्रशा राजनीतिक और सामरिक दृष्टि से एक प्रगतिशील राज्य में परिणत हो रहा था और उसे जर्मनी में एक विशिष्ट स्थान व सम्मान मिल रहा था, इसलिए आस्ट्रिया और प्रशा की पास्परिक प्रतिद्वंद्विता का सूत्रपात हुआ। जर्मन राज्य राजनीतिक दृष्टि से विखंडित होते हुए भी एक–दूसरे से जुड़े हुए थे और यह योगसूत्र था, पवित्र रोमन सम्राट के प्रति सैद्धांतिक रूप से आदर की भावना । राज्यों के पारस्परिक संबंध सूत्रों का दूसरा प्रमुख कारण डाइट (क्पमज) था। डाइट में 300 राज्यों के प्रतिनिधि एक जर्मनी के राजवंशों एवम् शासकों द्वारा मनोनीत होते थे। ये प्रतिनिधि राष्ट्रीय हितों से प्रेरित न होकर राजदूतों का संघमात्र थी। इसके पास न तो अपनी कार्यकारी शक्ति थी, न इसका निजी राजस्व था और न ही इसके पास सैन्य शक्ति थी। इस प्रकार डाइट सब राज्यों का संयुक्त मंच होते हुए भी भीतरी रूप से समस्त राज्यों को संगठित करने में असफल थी। आस्ट्रिया साम्राज्य की सीमा पर यदि कोई संकट आता था तो डाइट उसकी सहायता के लिए विभिन्न राज्यों से उनकी स्वीकृति से सैन्य बल को एकत्रित करती थी। किंतु ऐसी संयुक्त व्यवस्था कभी स्थायी नहीं होती थी । बाल्तेयर का कहना था कि आस्ट्रिया साम्राज्य न तो पवित्र था न रोमन था

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसक्रप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

263

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसक्रप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

264

और न ही साम्राज्य था । अपितु पवित्र रोमन साम्राज्य की धारणा जर्मनों में प्रभावशाली रही जब कि यूरोप के अन्य देशों में उतनी प्रभावशाली नहीं थी ।

वास्तव में इस धारणा ने देश की राजनीति एकता में बाधा प्रस्तुतु की । इस सिद्धान्त के विश्वास को लेकर जनमानस में वाद–विवाद उत्पनन हुए, जिसने सुधारवादी आंदोलन का रूप धारण किया और उसके फलस्वरूप जर्मन जनता दो धार्मिक समूहों में विभक्त हो गई।

1. उत्तर जर्मनी – प्रोटेस्टेंट (प्रशा, हैनोवर, सेक्सनी आदि)

2. दक्षिण जर्मनी – कैथेलिक (वारे, बबेरिया, बुर्टेम्बर्ग आदि) कैथेलिक धर्म में प्रध ाान भूमिका आस्ट्रिया की थी। इसमें जोसेफ द्वितीय ने अठारहवीं शताब्दी के उदारवाद से प्रभावित होकर कुछ सुधार करने चाहे थे जो सफल न हो सके जिससे आस्ट्रिया एक रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी राज्य के रूप में ही रह गया। इस प्रकार, राजनीतिक व धार्मिक शक्तियों के विभाजन के कारण जर्मनी का विकेंद्रीकरण होता चला गया और कोई एक स्थायी राजनीतिक राष्ट्रीय केंद्रीभूत व्यवस्था स्थापित न हो सकी। यही कारण था कि जर्मनी के छोटे–छोटे राज्य वियना जैसे बहुत शक्तिशाली व प्रभावशाली राज्यों के परिमण्डल में आते रहे। जर्मनी का विकेंद्रीकरण क्रमशः अधिक होता गया क्योंकि पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्राट का पद निर्वाचनात्मक हो गया था और निर्वाचक मण्डली कुछ जर्मन नृपति भी थे। अतः सम्राट के मध्ययुगीन प्रभाव व शक्ति का कोई महत्व नहीं रहा । फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व जर्मनी की स्थिति – फ्रांसीसी क्रांति से पूर्व जर्मनी की बौद्धिक विचारधारा का भी कोई विशेष प्रभाव नहीं था। सत्रहवीं शताब्दी में ही लैटिन का स्थान जर्मन भाषा ने लिया । फ्रांसीसी क्रांति ने सन् 1789 में जर्मनी की बौद्धिक विचार–धारा ने नवीन प्रखरता व शक्ति प्रदान की थी, परंतु जर्मनी की बौद्धिक विचारधारा का मूल जर्मनी की भूमि में ही था। में

सन् 1789 में जर्मनी में सामंती व्यवस्था विद्यमान थी। ग्रामीण व नागरिक दोनों प्रकार की जीवन–पद्धतियाँ प्रचलित थीं। राइन – भूमि में कृषि दास प्रथा प्रचलित थी। कुछ स्थानों पर दोनों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था और कुछ स्थानों में दासप्रथा का अंत कर दिया गया था (श्लेसबिग होल्सटीन, 1783–1800)

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जर्मनी के आर्थिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। किसानों को कोई विशेष सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं, क्योंकि सरकार उन्हें एक अधीन वर्ग के रूप में ही रखना चाहती। कुछ स्थानों को छोड़कर कृषिदासों की स्थिति दयनीय थी। बँधुआ श्रम के लाभ छोड़कर कोई इन्हें मुक्ति देना नहीं चाहता था।

जर्मनी में अनेक निर्यात उद्योग भी स्थापित हो चुके थे, जैसे–सूत, ऊन, कपड़ा, स्टील, लोहा, कोयला, सीसा आदि। ये उद्योग एकाधिकार युक्त श्रेणियों के अध ाीन थे। इनकी कार्य–पद्धति व चिंतन आधुनिक नहीं था । पूर्वी जर्मनी की आर्थिक सम्पन्नता के कारण इनकी सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक भिन्नताओं ने राज्य के प्रति निष्ठा रखने के लिए तो उन्हें सचेत किया किंतु उनमें राष्ट्रीय जीवंतता (छंजपवदंस टपतपसपजल) का उदय नहीं हो गया।

फ्रांसीसी क्रांति तथा जर्मनी – सन् 1786 की फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव से जर्मनी एक संक्रांति काल में पहुँचा। फ्रांस से सम्पर्क तथा नेपोलियन के आक्रमण व शासन के फलस्वरूप जर्मनी में आधुनिक युग का उदय हुआ। सन् 1806 में पवित्र रोमन सम्राट की समाप्ति हुई। इससे जर्मन समाज की प्राचीन धार्मिक रूढ़ियाँ क्षीण होती गईं। साथ ही इस परिवर्तन के फलस्वरूप जर्मन लोगों में अपनी भूमि, अपनी संस्कृति के प्रति चेतना भी बढ़ती गई और पवित्र रोमन सम्राट की उपाधि समाप्त हो जाने से यह बात भी प्रतिष्ठित हुई कि जर्मनी संघ (ळमतउंद ब्वदमिकमतंजपवद) का कोई भी राज्य अपना शक्ति – बल बढ़ाकर जर्मन – संघ में प्रभुत्व स्थापित कर सकता था ।

जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ– जर्मन की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर दुष्टिपात करने से कुछ तथ्य उभर कर आते हैं जो उन कारणों पर प्रकाश डालते हैं जो जर्मनी के एकीकरण के प्रारंभिक काल में बाधक बने रहे ?

1.

जर्मनी के विभिन्न राज्यों की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक असमानताएँ,

2.

पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रभाव

3. जर्मन की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप

पश्चिमी विश्व

4. अधिकांश जर्मन राज्यों की सैनिक शक्ति की शिथिलता,

5.

सामान्य लोगों में बौद्धिक जागृति का अभाव

6. कुछ विदेशी शक्तियों की जर्मनी के मामलों में रुचि । उदाहरणतः फ्रांस दक्षिण जर्मनी के रोमन कैथोलिकों में रुचि रखता था । इंग्लैंड की रुचि हैनोवर में थी क्योंकि हैनोवर के निर्वाचक को सन् 1714 में इंग्लैण्ड का शासक बना दिया गया था। इन सभी शक्तियों के अतिरिक्त ऑस्ट्रिया की नीति भी यही रही कि जर्मनी की राष्ट्रीय एकता न हो और हैम्सबर्ग राजवंश की प्रधानता स्थापित रहे ।

ऑस्ट्रिया तथा प्रशा– जर्मनी एकीकरण के मार्ग में एक और बाधा भी थी अर्थात् ऑस्ट्रिया प्रशा की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा जिसका सूत्रपात सन् 1740 के सालेसिया के युद्ध से हुआ था और यही द्वेष सन् 1756 की कूटनीति क्रांति (क्पचसवउंजपब त्मअवसनजपवद) से और तीव्र हो गया। जर्मनी के सांविधानिक और राष्ट्रीय आंदोलन या प्रशा के नेतृत्व में शुल्क संघ (ब्नेजवउे न्दपवद) जोलवेरिन की स्थापना के समय भी ऑस्ट्रिया की प्रशा– विरोधी तीव्र मनोवृत्ति दिखाई दी है। बवेरिया के अधिकार के लिए भी इन दोनों राज्यों में विरोध था । उन्नीसवीं शताब्दी में विस्मार्क के समय में प्रतिस्पर्धा स्वयं स्पष्ट हो गई। फ्रांसीसी क्रांति, नेपोलियन तथा जर्मनी– जर्मनी की राइन भूमि पर फ्रांस के आक्रमण (1789–1810)

से जर्मनी के जीवन में विशेष रूप से उथल–पुथल हुई। इससे दो परस्पर विरोध ी स्रोतों का प्रवाह जर्मनी में आया एक और उदारवाद (सांविधानिक व राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में) और दूसरी ओर रूढ़िवादी या प्राचीन विचारधारा यथापूर्व रखने की चेष्टा ।

जर्मन राजवंश द्वारा फ्रांसीसी प्रवासी अभिजातों को आश्रय देने से और उन प्रवासी अभिजातों द्वारा फ्रांसीसी क्रांति विरोधी प्रचार से जर्मनी में फ्रांस विरोध ी भावना का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ जर्मन राजाओं को फ्रांसीसी क्रांति के कारण अपने कुछ सामंतीय अधिकारों से हाथ धोना पड़ा था और इसलिए वे क्रांति के विरोधी हो गये थे। उन्हें कुछ क्षतिपूर्ति भी नहीं मिली थी। ऐसी स्थिति से प्रेरित होकर फ्रांस ने जर्मनी पर आक्रमण कर दिया, जिससे राइन भूमि का पश्चिमी भाग फ्रांस के अधीन हो गया था। जर्मनी राइन नदी को सदैव अपनी पितृभूमि की स्वाभाविक प्राकृतिक सीमा समझते थे, इसलिए राइन भूमि पर फ्रांसीसी अधिकार ने उन्हें अत्यंत क्षुब्ध कर दिया और इसी घटना ने उनमें एक फ्रांस विरोधी भावना उत्पन्न कर दी जो आगे चलकर राष्ट्रीय भावना का कारण बनी।

जर्मनी के इतिहास का परवर्ती अध्याय नेपोलियन के अभियान तथा शासन का काल रहा (1800–1814) । इस घटना ने जर्मनी में कुछ नकारात्मक और कुछ सकारात्मक प्रभाव डाले।

फ्रांसीसी आक्रमण से जर्मनी को जनहानि ही नहीं हुई। घोर आर्थिक हानि भी हुई थी । जर्मन संघ को फ्रांस के साथ आक्रमण (वमिदेपअम) और प्रतिरक्षात्मक (कममिदेपअम) संधियाँ करनी पड़ी थीं । प्रशा और सेक्सनी को विभाजित कर दिया गया। कुछ इकाइयों को अपनी प्रतिष्ठाओं से वंचित कर नेपोलियन के कांटिनेंटल सिस्टम ने जर्मन उद्योग को गहरी हानि पहुँचाई । निर्यात उद्योग में गिरावट और मूल्य में वृद्धि के कारण जर्मन की आर्थिक अवस्था में सुधार की बहुत आवश्यकता थी । इस नकारात्मक दृष्टिकोण को देखते हुए कुछ जर्मन सुधारकों ने प्रशासकीय परिवर्तन की आवश्यकता का अत्यधिक अनुभव किया। जर्मनी में भविष्य में प्रगतिशील परिवर्तन लाने में नेपोलियन के आक्रमण और शासन ने सकारात्मक रूप में सहायता की । जर्मनी एकीकरण की चेष्टा और उदारवाद की जागृति इसी के परिणाम थे । नेपोलियन की शासन व्यवस्था से जर्मनी में कुछ प्रशासकीय सामाजिक और आर्थिक सुध ाार भी हुए थे। गिल्ड प्रथा का अंत, अबाध वाणिज्य नीति का प्रचार (राइन भूमि के बायें किनारे पर और उत्तर जर्मनी में) फ्रांसीसी शासन के ही परिणाम थे। नेपोलियन की शासन व्यवस्था से जर्मन संघ के राज्यों की संख्या 300 से

छव्जै

मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

265

पश्चिमी विश्व

छव्जै

घटकर 39 रह गई थी जिससे विभक्त जर्मनी स्वाभाविक रूप में कुछ सीमा तक संगठित हो गया। पवित्र रोमन सम्राट के पद को समाप्त करके नेपोलियन ने जर्मन को मध्ययुग से आधुनिकता की सीमा पर पहुँचाया और इसी से जर्मन राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ। जर्मनी की प्राचीन विचारधारा में परिवर्तन आने से एक नवीन राजनीतिक शक्ति का उदय हुआ, जिसमें अपने राज्यों से वंचित कुलीनवर्ग, (डमकपंदजपम छवइपसपजल) और धार्मिक इकाइयों ने फ्रांस – विरोधी सांविधानिक और राष्ट्रीय आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाई, क्योंकि नेपोलियन के आक्रमणों के कारण उन्हें अपने राज्य खोने पड़े थे। (छोटे राज्यों को बड़े
राज्यों में मिला दिया गया था) और उनके लिए कोई निश्चित राज्य – व्यवस्था अनिवार्य नहीं थी ।

उदारवादी सुधारकों का उदय – इस परिस्थिति में कुछ सुधारकों का उदय हुआ जिन्होंने जर्मन में कुछ सुधार लाना चाहा। उनमें उल्लेखनीय हैः प्रशा के स्टीन (1757– 1837) हार्डेबर्ग (1750–1822) शर्नहार्स्ट (1755 – 1813) हम्बोल्ट (1767– 1835) । जर्मन राष्ट्र बोधन का एक साधन तत्कालीन स्वच्छंदता वादी (तवउंदजपब) आंदोलन था।

इस समय जर्मनी की जिस उदारवाद ने प्रभावित किया था, वह पश्चिमी यूरोप के अठारहवीं शताब्दी के उदारवाद से भिन्न था। जर्मनी का उदारवाद पश्चिमी यूरोप के उदारवाद की तरह व्यापक नहीं था। उसकी विशेषताएँ कुछ सीमित थीं, उदहारण के लिए सांविधानिक राजतंत्र, प्रतिनिधिमूलक विधान सभा (त्मच. तमेमदजंजपअमे स्महपेसंजपअम ठवकल) समाचार पत्र की स्वतंत्रता, सीमित मतदान के अधिकार, भाषण की स्वतंत्रता, गिल्ड प्रणाली तथा आर्थिक व्यवस्था में सुधार, किसानों और दासों की दशा में परिवर्तन आदि । अतः जर्मनी के उदारवाद में गणतंत्र या लोकतंत्र की व्यापकता नहीं थी ।

स्वच्छंदतावादी आंदोलन – जर्मन उदारवाद व राष्ट्रवाद के विकास में जर्मन विद्वानों की देन भी कम नहीं थी। उनके द्वारा जो स्वच्छंतावादी आंदोलन आरंभ हुआ था, उससे जर्मनी की विचारधारा व मननशीलता दोनों ही प्रभावित हुई थीं। एक पक्ष बौद्धिक तथा प्राचीन जर्मन संस्कृति की जागृति से परिचित होकर अपनी प्राचीन विचारधारा अर्थात् रूढ़िवादी, राजनीतिक विचारधारा को उदारवादी, परिवर्तन से बचाए रखना चाहता था, तो दूसरा पक्ष जर्मन को मध्ययुगीन अवस्था से मुक्त करके आधुनिकता का मार्ग अपनाना चाहता था। इन परस्पर विरोधी विचारधाराओं के दो प्रमुख आधार थे – ऑस्ट्रिया के हैम्सबर्ग वंश का नेतृत्व, जो जर्मनी की विकेंद्रीकरण की शक्तियों, स्वेच्छाचारी, राजतंत्र और मध्ययुगीन रूढ़िवाद का समर्थन करना चाहता था और राष्ट्रीय एकीकरण का दमन कर देना चाहता था । इसके विपरीत दूसरा पक्ष सांविधानिक तथा राष्ट्रीय आंदोलन के माध्यम से शासन में परिवर्तन लाना चाहता था और अपने भाग्य का

स्वयं निर्णय करने के लिए उत्सुक था। इस पक्ष में प्रशा का नाम उल्लेखनीय है।

इकाई.9

अठारहवीं शताब्दी में प्रशा के कुछ प्रसिद्ध विद्वान दार्शनिकों ने जर्मनी के बौद्धिक जीवन को एक नई दिशा प्रदान की।

हर्डर (1744 – 1803) मानव स्वतंत्रता में विश्वास करते थे। इन्होंने फोक (च्मवचसम) के आदर्श के बारे में अपनी विचारधारा को व्यक्त करके जर्मनी के राष्ट्रवाद के सामने उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया ।

ई० कैंट (1724–1804) ने जर्मन दर्शन में एक नवीन विचारधारा को प्रस्तुत किया और जर्मन उदारवाद को स्वतंत्रता का आदर्श देकर प्रखरता प्रदान की।

हीगल (1770–1831) ने जर्मन – देश में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। उनका मत था कि सार्वलौकिक विचारधारा का सर्वोत्तम रूप है राष्ट्र, इसलिए राष्ट्र का स्थान सबसे ऊपर है और राष्ट्र की सत्ता भी सबसे ऊपर होनी चाहिए। इस संदर्भ में यह कहना आवश्यक है कि परवर्ती काल में बिस्मार्क ने हीगल द्वारा सुझाई गई नीति को अपनाकर प्रशा की सत्ता और बल को सर्वोपरि रखकर एकीकरण के कार्य को पूरा किया।

जान. जी. फिक्टे (1762–1814) ने जर्मनी के फ्रांस विरोधी राष्ट्रवाद को तर्क और युक्ति के आधार पर स्थापित किया।

हम्बोल्ट (1767–1835) प्रशा के शिक्षामंत्री थे। वे शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन प्रणाली लाना चाहते थे। हम्बोल्ट व्यक्तिगत स्वतंत्रता में विश्वास रखते थे। इनके कारण जर्मनी उदारवादियों को समाचार–पत्रों की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

हार्डेनबर्ग नोवलिस (1772 – 1801) इस शताब्दी के श्रेष्ठ लेखक व कवि थे। उनकी रचनाएँ और परियों की कहानियाँ जर्मनी के अतीत के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी के जनमानस की आशा–आकांक्षा और कल्पना की शक्ति जाग्रत और सजग हो गई। इससे जर्मनी के निवासियों को यह भी अनुभव हुआ कि उनको एक सूत्र में बाँध रखने वाला सूत्र सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अर्थात् उनका धर्म, भाषा और प्राचीन इतिहास है।

जर्मन कवि आईट (1769–1860) ने भी अपनी देश की भक्तिमूलक कविताओं के माध्यम से जर्मन – जनता के फ्रांस विरोध की मनोभाव तथा देश–प्रेम की भावना को प्रभावित किया।

जैकाव ग्रीम – (1785 – 1863) और बिल्हेम ग्रीम (1786 – 1859) ने जर्मन भाषा विज्ञान, जर्मन – इतिहास और जर्मन – कानून के अध्ययन और चर्चा से और अपनी विख्यात परियों की कहानियाँ प्रकाशित करके जर्मनी के लोगों को उनकी विशेषताओं और उनकी प्रकृति के विषय में जागृत कर दिया अर्थात् उन्होंने जर्मनों में जर्मनत्व की भावना भर दी । यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जर्मनी का यह सांस्कृतिक जागरण पश्चिमी आदर्श (फ्रांस या रोम) से प्रभावित नहीं था ।

इस प्रकार स्वच्छंदतावादी आंदोलन ने केवल उदारवादियों को ही प्रेरणा नहीं दी अपितु प्रतिक्रियावादियों को भी अपनी प्राचीन विचारधारा की रक्षा करने के लिए

प्रोत्साहित किया । इस संबंध में सविगनी (1778–1861) का नाम उल्लेखनीय है । वे मध्ययुगीन स्वेच्छाचारी राजशक्ति के गौरव में विश्वास करते थे और संसदीय शासन (प्रतिनिध मूलक) या शासकों द्वारा प्रजा की माँगों के अनुसार प्रशासकीय परिवर्तन लाने के मत का पूर्णतया विरोध करते थे। एक अन्य विद्वान का नाम भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है, वे माइकेल सेलर (1751 – 1832) । सेलर जर्मनी में पूर्ण रूप से कैथोलिक धर्म की प्रतिष्ठा में विश्वास करते थे। जर्मनी के पुनर्जागरण आंदोलन के सभी समर्थक विश्वास करते थे कि जर्मनी की आशा–आकांक्षा का आधार केवल आस्ट्रिया ही बन सकता है।

जर्मनी की सांस्कृतिक दार्शनिक जागृति की पृष्ठभूमि में ही जर्मनी के संग्राम का प्रारंभ हुआ जिसके परिणामस्वरूप नेपोलियन का पतन हुआ। सन् 1813 के राष्ट्रों के युद्ध में नेपोलियन की पराज्य हुई थी। यद्यपि यह विजय जर्मनी की सैन्य शक्ति की ही विजय थी। फिर भी जर्मनी के निवासी इस विजय को अपनी राष्ट्रीयता की ही विजय समझने लगे थे। आगे चलकर इस विजय के ऐतिहासिक महत्व में और वृद्धि हुई। सन् 1817 में राष्ट्रीय विचारधारा वाले कुछ छात्रों ने राष्ट्रों के युद्ध की चौथी वर्षगाँठ मनाई । इसके साथ ही उन्होंने सन् 1817 में मार्टिन लूथर द्वारा पोप – विरोधी घोषणा का भी स्मरण किया और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। इस घटना का यही महत्व रहा कि इससे जर्मनी में ध ीरे–धीरे एक राष्ट्रीयता की भावना पनपी । एक स्मरणेय तथ्य यह है कि उपर्युक्त घटना (1817) में भाग लेने वाले छात्रों में से अनेक छात्रों ने 20 साल बाद भी चिकित्सक, अध्यापक या वकील के रूप में सन् 1848 की फ्रैंकफर्ट संसद में भी भाग लिया।

है

मैटरनिख और जर्मनी – वियना कांग्रेस का अधिवेशन सन् 1815 में हुआ और इस काल में मैटरनिख का उदय हुआ। मैटरनिख ने जर्मन राज्यों के एकीकरण का विरोध किया। जर्मनी को एक शक्तिहीन संघ राज्य के रूप में पूर्णतया ऑस्ट्रिया के प्रभाव में रखा गया। मैटरनिख स्टीन के सांविधानिक राजतंत्र व प्रतिनिधिमूलक संसदीय व्यवस्था की कार्यपद्धति और योजना को संपूर्ण रूप से समाप्त करने में सफल हुआ। जर्मनी अब संघ राज्य के रूप में रहा जिसमें केंद्र शक्तिहीन था न कि एक संयुक्त राज्य जर्मनी के रूप में जिसमें केंद्र शक्तिशाली होता। जर्मनी में कोई केंद्रीय संघीय संस्थाएँ (ब्मदजतंस थ्मकमतंस प्देजपजन. जपवदे) नहीं थी जो राज्यों की शक्ति पर नियंत्रण कर पातीं। जर्मनी में संघीय डाइट (थ्मकमतंस क्पमज) एक समझौता करने वाली संस्था मात्र रही जो केवल 39 राज्यों में भिन्न–भिन्न कानून व्यवस्थाएँ प्रचलित थीं । डाइट की मतदान प्रणाली ऐसी बनाई गई थी कि किसी एक राज्य के विशेष मत का प्रयोग

न हो सके। प्राचीन प्रणालियाँ डाइट के सदस्यों में शक्ति–संतुलन स्थापित करने की चेष्टा करती रहीं (मैटरनिख पद्धति का मुख्य लक्ष्य यही था) मैटरनिख के विचार में हर आंदोलनकारी उदारवादी था और हर उदारवादी राष्ट्रवादी था। वियना कांग्रेस (1815) निर्णय के कारण जर्मनी की स्थिति ऐसी रहने पर भी दक्षिणी जर्मनी के (बादेन, बेवेरिया, बुटेम्बर्ग डेस – डर्मेस्टाट) कुछ राज्यों के शासकों ने नेपोलियन के संघीय कानून की धारा 13 के अंतर्गत कुछ सुधार किये, यद्यपि स्टीन प्रशा में ऐसा करने में विफल रहा। उपर्युक्त राज्यों का यह सुधार आधुनिक संसदीय प्रशासनिक व्यवस्था या जनतांत्रिक अधिकार के स्वरूप से बहुत दूर था किंतु मैटरनिख इससे भी शंकित रहा। कुछ राज्यों के शासकों ने विश्वविद्यालयों और प्रेस को कुछ स्वतंत्रता दी जिससे मैटरनिख की शंका में वृद्धि हुई। सन् 1819 में एक जर्मन विद्यार्थी काले सैंड ने जब कोत्जलीन (एक प्रतिक्रियावादी लेखक) सन् 1819 में कार्ल्सवद के कानून पारित कराए। इनसे प्रेस और प्रकाशन के ऊपर कठोर नियंत्रण रखा गया । विश्वविद्यालयों में पर्यवेक्षक नियुक्त किए गए। कक्षा और गिरजाघरों के लिए गुप्तचर नियुक्त किए गए। इस प्रकार मैटरनिख ने शिक्षा, पाठ्य–क्रमों और धार्मिक संस्थाओं के ऊपर नियंत्रण रखकर जर्मनी की उदारवादी विचारधारा व आंदोलन को रोकना चाहा। इस प्रकार उदारवादी भावनाओं को दबाने के लिए कट्टर रूढ़िवादी पादरियों को शिक्षा – संस्थाओं में नियुक्त किया गया। सन् 1820 में उसने डाइट द्वारा विचारणीय विषयों पर प्रतिबंध लगाया। इसके अतिरिक्त मैटरनिख की निरंतर यह चेष्टा रही कि प्रशा को सुधारों से दूर रखा जाए परंतु मैटरनिख ने प्रशा को सुधारों से दूर रखकर भूल की। सैन्य शक्ति संपन्न और निरंकुश प्रशासनिक व्यवस्था वाले देश के रूप में प्रशा ऑस्ट्रिया का अधिक शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी बना । एक सुधारवादी देश के रूप में प्रशा शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी नहीं हो सकता था। मैटरनिख पद्धति ने जर्मनी के छोटे–छोटे राज्यों की एकनिष्ठता को और उनके आंतरिक पारस्परिक अनन्यवाद को प्रोत्साहन देकर जर्मन राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतना को विकसित नहीं होने दिया। जर्मनी में जन–आंदोलन के देर से शुरू होने का यह एक प्रमुख कारण था। मैटरनिख के प्रभाव से प्रशा एक प्रतिक्रियावादी राज्य बन गया। प्रशा की सरकार ने हाइने तगा जैसे क्रांतिकारी लेखकों की रचनाओं पर सन् 1815 में प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में प्रशा की उच्चाभिलाषा जब विफल हो गई तब आर्थिक क्षेत्र में प्रशा एक नए नेतृत्व की ओर अग्रसर हुआ। इसके परिणामस्वरूप जोलवेरिन नामक शुल्क संघ (ब्नेजवउे न्दपवदे) की स्थापना हुई। प्रशा के लिए आर्थिक पुनर्गठन की आवश्यकता भी थी क्योंकि फ्रांसीसी युद्धों और नेपोलियन के अभियानों के कारण प्रशा को बहुत क्षतिपूर्ति देना पड़ी थी और उसके कारण

प्रशा के ऊपर पर्याप्त ऋणभार आ पड़ा था ।

ब्रिटेन की औद्योगिक उन्नति की तुलना में जर्मनी के कपड़ा और लोहे के सामान से संबंधित उद्योग काफी पीछे रह गए थे। नेपोलियन के कांटिनेंटल सिस्टम के कारण जर्मनी की जो औद्योगिक हानि हुई थी, उसे शीघ्र उन्नत करना प्रशा के लिए कठिन था, क्योंकि जर्मनी की हर राज्य की शुल्क प्रणली इसमें एक भारी बाधा थी। इसके कारण उद्योग और शिल्प वाणिज्य में प्रबंध नीति का अनुसरण नहीं हो सकता था । हर प्रांत में प्रवेश करने के समय जो शुल्क और चुंगियाँ देनी पड़ती थीं। उनसे वस्तुओं के मूल्य में बहुत वृद्धि हो जाती थी । प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण कृषि में भी पिछड़ापन था ।

उत्तम रेलमार्ग न होने के कारण सार, रूर और सैक्सनी के कोयला उद्योग का न तो विकास हो सका और न ही उसका सही उपयोग हो पाया।

जोलवेरिन की पृष्ठभूमि – सोआबिया के निवासी फ्रेडरिक लिस्ट (1789–1845) ने अर्थनीति में एक नई दिशा का प्रदर्शन किया। ये एडम स्मिथ की प्रबंध वाणिज्य नीति में विश्वास नहीं करते थे, परंतु एक राष्ट्रवादी होने के कारण आर्थिक राष्ट्रवाद में विश्वास करते थे। इनका यह मत था कि जर्मनी की सीमा के अंदर निःशुल्क वाणिज्य नीति प्रचलित होनी चाहिए, जिससे जर्मनी की अर्थनीति में एकता स्थापित हो सके। इसके अतिरिक्त उनका यह भी विश्वास था कि जर्मनी के अपने उद्योग की रक्षा के लिए एक संरक्षणमूलक शुल्क व्यवस्था (च्तवजमबजपअम जंतपर्फि) होनी चाहिए। उन्होंने जर्मनी के रेलमार्ग का विस्तार करने के महत्व पर ध्यान दिया। इससे वे जर्मनी की सामरिक सफलता की संभावनाओं का लाभ उठाना चाहते थे । लिस्ट को जर्मन रेलमार्ग का जनक कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। जर्मनी में एकता लाने
के लिए जो पारस्परिक आदान–प्रदान की आवश्यकता थी वह आवश्कता विकसित रेलमार्ग के निर्माण से पूरी हुई। लिस्ट विचारधारा से जर्मनी में आर्थिक एकता की पृष्ठभूमि बनी।

सन् 1818 जर्मन शुल्क व्यवस्था में परिवर्तन न हो सका क्योंकि मशीनों को शुल्क–व्यवस्था के घेरे से पूरी तरह शुल्क – मुक्त रखा गया। शिल्प वस्तुओं पर केवल 10 प्रतिशत शुल्क रहा। प्रशा राज्य में सीमा प्रवेश पर जो पारगमन कर लगता था उसकी दर भी बहुत कम कर दी गई।

जोलवेरिन की स्थापना और इसका महत्व – प्रशा राज्य के अंदर वस्तुओं के परिवहन – कर की दर को बढ़ा दिया गया ताकि जर्मनी के शेष राज्य विशेष रूप से छोटे राज्य शुल्क व्यवस्था की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए जोलवेरिन के सदस्य बनें। छोटे राज्यों के लिए इस संघ का सदस्य बनना आवश्यक हो गया क्योंकि प्रशा की बिखरी हुई सीमा ने इन राज्यों को पूर्ण रूप से घेर रखा था। मुख्य वाणिज्यिक मार्ग भी प्रशा की इन्हीं सीमाओं के मध्य स्थित थे। प्रशा के ऐसे शुल्क नियमों का विरोध तो अवश्य हुआ परंतु प्रशा अपने निश्चय पर अटल रहा । इस विषय में ऑस्ट्रिया को तत्कालीन परिस्थिति के कारण उदासीन रहना पड़ा। सन् 1834 तक जर्मन के सभी प्रमुख राज्य अपनी आर्थिक

सुविधाओं को ध्यान में रखकर धीरे–धीरे जोलवेरिन के सदस्य बन गए। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक स्तर पर प्रशा का नेतृत्व प्रतिष्ठित हो गया। राइन, ओडर ऐल्ब, विस्चुले आदि स्थानों के सब उल्लेखनीय वाणिज्यिक भागों पर प्रशा का नियंत्रण हो गया। उत्तम सड़कों और रेलमार्गों का निर्माण करने का अवसर भी अब प्रशा को प्राप्त होने लगा। इससे उत्तर–दक्षिण के मध्य यातायात ओर पारस्परिक आदान–प्रदान सहज हो गया। यह नई प्रगति जर्मन के भविष्य के एकीकरण का अप्रत्यक्ष रूप से सफलता की ओर ले गई। प्रारंभ में संभवतः जोलवेरिन के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य या उच्चाभिलाषा नहीं रही हो परंतु धीरे–धीरे प्रशा जोलवेरिन के नेतृत्व के माध्यम से जर्मन एकीकरण के राजनीतिक नेतृत्व व उत्तरदायित्व को लेने के लिए अज्ञात रूप से प्रस्तुत हो रहा था। ऑस्ट्रिया जोलवेरिन के बाहर रहा और प्रशा तथा जोलवेरिन की वाणिज्यिक नीति के मामलों में कुछ बोलने के अधिकार से वंचित रहा क्योंकि ऑस्ट्रिया की निजी वाणिज्यिक नीति जोलवेरिन की शुल्क नीति के विपरीत थी। ऑस्ट्रिया चारों तरफ से प्रतिकूल शुल्कों से घिरा हुआ था और जोलवेरिन का सदस्य न होने के कारण उसके लिए वाणिज्यिक निकास का एक ही मार्ग था, जो प्रशा की शुल्क – व्यवस्था के बाहर था और यह मार्ग ऑस्ट्रिया साइलेशिया से ऐल्व की घाटी तक था । ऐसी परिस्थिति में मैटरनिख को सन् 1833 में जोलवेरिन के सारे नियमों को स्वीकार करना पड़ा। अब जर्मन – संघ में शक्ति–संतुलन बनाए रखना संभव न रहा वह पर्याप्त रूप में असंतुलित हो गया क्योंकि अब फ्रेडरल डाइट के मतदान में ऑस्ट्रिया के लिए बहुमत प्राप्त करने की आशा कम हो गई। अब जर्मनी के क्षेत्र में प्रशा का कोई राज्य प्रतिद्वंद्वी नहीं रहा। जोलवेरिन की सफलता ओर ऑस्ट्रिया का उससे दूर रहने का यह परिणाम निकले कि निरंतर एक आर्थिक शक्ति के प्रभाव और दबाव से जर्मन राज्यों के मध्य जो राजनीतिक व्यवधान था और जिसने जर्मनी को इतना की इस अनुभूति ने जर्मनी के विकेंद्रीकरण में सहायक प्रादेशिक ओर राजवंशीय प्रभाव को भी कम कर दिया । इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जोलवेरिन जर्मन राष्ट्रीय एकीकरण का एक उल्लेखनीय सोपान था ।

सन् 1815 से 1833 के मध्य जर्मनी में दो परस्पर विरोधी शक्तियों रूढ़िवादियों और अठारहवीं शताब्दी की नवीन विचारधारा में आस्था रखने वालों में संघर्ष शुरू हो गया। सन् 1833 से सन् 1850 तक सांविधानिक व क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलन इसी कारण हुआ। एक ओर प्रतिक्रियावादी मैटरनिख पद्धति उस उदारवाद की गति में बाधा डालती रही, इसने जर्मनी की राजनीतिक स्थिति को अस्त–व्यस्त बनाए रखा, दूसरी ओर जर्मनी आर्थिक एकता को उपलब्ध कर भविष्य में राष्ट्रीय एकता की तैयारी कर रहा था ।

फ्रांस की जुलाई क्रांति तथा जर्मनी – फ्रांस की जुलाई क्रांति (1813) जर्मनी में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं ला सकी। दक्षिण जर्मनी के कुछ राज्यों के शासक पहले से ही (1815) प्रजा को सीमित अर्थ में संविधान प्रदान कर चुके थे, क्योंकि दक्षिण उत्तर से अधिक उदारवादी था । उत्तर में निरंकुश राजतंत्र प्रचलित था

। प्रशा में आर्थिक प्रगति हुई थी। रजनीति में साधारण जनता का भाग लेने का या उसके प्रशासन में अधिकार पाने का आदर्श न तो स्पष्ट हुआ था और न ही उसमें यह चेतना सक्रिय हुई द्य उत्तर जर्मनी के राज्यों में (सैक्सनी, बुन्सविक, हैसकेसल, हैनोवर आदि) जो आंदोलन हुआ था, उसका दमन कर दिया गया। कुछ

इकाई.10

छोटे और गौण राज्यों में सीमित प्रतिनिधिमूलक सरकार बनाकर इस माँग को समाप्त कर दिया गया था। सन् 1830 के इस आंदोलन की प्रधान दुर्बलता या त्रुटि थी उसके राष्ट्रवादी आदर्श के स्वरूप का स्पष्ट और शक्तिशली न होना। जर्मनी में अभी तक एक शक्तिशाली सुस्पष्ट राजनीतिक विचारधारा वाला सुसंगठित मध्य वर्ग नहीं था, जो ऐसे आंदोलन की सफलता के लिए बहुत आवश्यक था।

सन् 1840 में प्रशा के सिंहासन पर फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ बैठा। प्रशा को आशा थी कि वह राजनीतिक परिवर्तन लाकर अपने पिता के वचन का पालन करेगा परंतु लोगों की यह आशा पूरी नहीं हुई। फ्रेडरिक मध्ययुगीन संस्थाओं के आदर्शों में और दैवी अधिकार संपन्न स्वेच्छाचारी सत्ता में विश्वास करता था और साथ ही वह ऑस्ट्रिया के प्राचीन गौरव, अधिकार और परंपरा के प्रति एक आदर की भावना भी रखता था। इस प्रकार उसके चरित्र में द्वैधता थी। फलस्वरूप प्रजा ने जिस आशा से उसका स्वागत किया था कि राजा फ्रेडरिक एक स्थिर, निश्चित जर्मन राष्ट्रीय नीति का संचालन करेगा (जो जर्मन – एकीकरण को सहायता देगी), वह आशा पूरी नहीं हुई।

उदारवादी आंदोलन का प्रारंभ– प्रशा, मेकेनबर्ग, सेक्सनी, हैसकैसल आदि स्थानों में उदारवादियों ने असंतोष प्रकट किया क्योंकि उन स्थानों पर न तो प्रशासकीय परिवर्तन आया था, न प्रतिनिधिमूलक संस्थानों की प्रतिष्ठा हुई और न ही उसके लिए राजा में कोई उत्सुकता थी। दक्षिण में कुछ सीमित संसदीय शासन व्यवस्था प्रचलित हुई थी, परंतु वहाँ भी उदारवादी मतदान के अधिकार (थ्तंदबीपेम) के विस्तार के लिए आंदोलन कर रहे थे। इसके अतिरिक्त जर्मनी में सन् 1848 की क्रांति के आरंभ की स्थिति एक और कारण से भी बन रही थी । भिन्न–भिन्न राज्यों में आंतरिक स्थिति (सांविधानिक व राजनीतिक) जो भी रही, कुछ सक्रिय मध्य वर्ग (यद्यपि यह अल्पसंख्यक था) इस समय राजनीति में भाग लेने की माँग कर रहा था। इस प्रकार पहले से तैयार भूमि पर केवल एक

दृष्टांत की ही आवश्यकता रह गई थी जो फ्रांस की फरवरी क्रांति (1848) ने पूरा कर दिया ।

उदारवादी तथा क्रांतिवादी अपनी योजनाओं और कर्म पद्धतियों पर चर्चा और विचार करने के लिए हेडलबर्ग (भ्मपकमसइमतह) में इकट्ठे हुए । यहाँ भी उदारवादी लोकतंत्र की प्रतिष्ठा के पक्ष में नहीं बोले क्योंकि उनका यह विचार था कि जर्मनी अभी इसके लिए उपयुक्त नहीं है । वे सब एक सीमित राजतंत्र और कुछ सुधार लाने के पक्ष में ही थे। इस दल के नेता थे– हाइनरिख वॉन गागेर्न (भ्मपदतपबी टवद ळंहवतद) जो हैस – डार्ल्स टार्ड (भ्मे क्तउे ज्कज), के प्रधानमंत्री थे और बाद में फ्रैंकफर्ट संसद में प्रेसीडेंट बने । उदारवादियों का और लोकतंत्रवादियों का लक्ष्य जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण और एक राष्ट्रीय संसद (ळमतउंद दंजपवदंस च्तसपंउमदज) की प्रतिष्ठा करना था ।

फ्रेंकफर्ट संसद (1848) : इस परिस्थिति में निर्णय लेने के लिए फ्रैंकफर्ट में एक पूर्व–संसद (टंत– च्तसपंउमदज) के अधिवेशन का आह्वान किया गया (मार्च 1848) । इस अधिवेशन में यह निर्णय हुआ कि निर्वाचन के माध्यम से एक आम संसद बुलाई जाए जिसमें पूरे जर्मनी का प्रतिनिधित्व हो और यह निर्वाचन सार्वभौम मताधिकार (न्दपअमतेंस ैनििंहम) से बहुत दूर थी । इसमें पूरे जर्मनी का प्रतिनिधित्व भी ठीक से नहीं हुआ क्योंकि इसमें दक्षिण के राज्यों की प्रतिनिधि – संख्या बहुत अधिक थी जबकि उत्तर की बहुत कम।

अंत में 18 मई 1848 को संघीय डाइट ने फ्रेंकफर्ट में अपना अधिवेशन बुलाया। इसके सदस्यों को तीन दलों में विभाजित किया जा सकता है–

1. वामपंथी – जो इस मत में विश्वास करते थे कि उस नेशनल असेम्बली के पास प्रभुसत्ता है, और

बनाने का असीम अधिकार भी है।

कानून

2. दक्षिणपंथी दल – विश्वास करता था कि शासन में राजा की सहायता करना ही नेशन असेम्बली का

काम है। कानून बनाने का अधिकार राजा के हाथ में ही है, और

,

3. मध्यवर्गीय दल –जो पुनः दो दलों में विभक्त हो गया था। इसमें से एक दल यह मानता था कि नेशनल असेंबली का काम है– सरकार के साथ बातचीत करके किसी विषय में निर्णय लेना और

।

समझौते से संविधान का लागू करना (सीमित राजतंत्र) । दूसरा दल मानता था कि सरकार द्वारा संविधान का प्रारूप तैयार हो जाए तो नेशनल असेंबली के पास उसे लागू करने का अधिकार है।

संसद के सदस्यों का दल बहुत विचित्र था। अधिकांश संख्या विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की थी। इसके अतिरिक्त वकील, व्यवसायी, न्यायाधीश, पादरी, अफसर, चिकित्सक जैसे भिन्न–भिन्न श्रेणी के लोग थे। श्रमिक या कारीगरों

का प्रतिनिधित्व नहीं था। एक किसान भी इस अधिवेशन में उपस्थित था। मध्य वर्ग की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी, परंतु वे क्रांतिवादी नहीं थे। इसमें विद्वान थे, कुशल वक्ता थे, परंतु अनुभवी राजनीतिक नेता का अभाव था। इस संसद की सबसे बड़ी दुर्बलता यही रही कि इसमें भाषणों का और सिद्धान्तों का ही प्राधान्य रहा, जिससे वास्तविक लाभ कुछ नहीं हुआ और सदस्यों ने संसद की वास्तविक सत्ता के अस्तित्व के प्रति अधिक ध्यान नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि निष्फल तर्क–वितर्क में ही समय व्यतीत हुआ। राष्ट्रवादी गैगर्न का सभापतित्व भी इस परिषद को सफल नहीं बना सका। उदारवादियों द्वारा परिचालित इस संसद को जर्मन जनता का समर्थन तो था, परंतु इसकी अंतर्निहित त्रुटियों और दुर्बलताओं के कारण यह संसद अंत में निष्फल ही रही। उदारवादी या क्रांतिकारी आंदोलन को सफल बनाने के लिए साधारण जनता की जो सक्रिय भूमिका आवश्यक होती है, वह तत्व इस समय इस संसद में विद्यमान नहीं था। फ्रांसीसी क्रांति और जर्मन क्रांति में यही अंतर था ।

ऑस्ट्रिया तथा प्रशा जैसे प्रमुख सत्ताधारी राज्य भी अपने गौरव व अधिकार की चेतना को नहीं भूले। यह स्पष्ट था कि ये दो राज्य शीघ्र ही इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए अपनी–अपनी स्वतंत्र––नीति का निर्णय करने वाले थे कि अंतिम नियंत्रण या सत्ता असेम्बली के पास है या भिन्न–भिन्न राज्यों के पास ।

इकाई.11

श्जबिग–हाल्स्टीन का प्रश्न– फ्रैंकफर्ट संसद में श्लेजबिग हालस्टीन के प्रश्न को लेकर द्वंद्व उपस्थित हुआ क्योंकि इस प्रश्न की मीमांसा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से करनी थी। संपत्ति – प्राप्ति के सिद्धान्त के आधार पर डेनमार्क के राजा को ये दो प्रदेश (क्नबील) प्राप्त हुए थे परंतु ये प्रदेश किसी भी अर्थ में डेनमार्क की क्षेत्रीय सीमा के अंदर नहीं आते थे और ये दोनों स्थान अपनी–अपनी प्रचलित प्रशासनिक तथा कानूनी व्यवस्था के आधार पर ही अपनी–अपनी सरकारों का संचालन करते थे। श्लेजबिग के उत्तरी भाग के कुछ डेनिशवासियों को छोड़कर इन दोनों डचियों में जर्मन जाति का प्राधान्य था। अतः जब डेनमार्क के राजा ने उनको अपने राज्यों में मिलाना चाहा तो वहाँ के जर्मन लोगों ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए इसका विरोध किया और जर्मनी के साथ संयुक्त होने की इच्छा प्रकट की। डेनमार्क के राजा ने इस दावे को अस्वीकार किया। इससे उन दोनों प्रदेशों में आंदोलन शुरू हुआ तथा उन्होंने जर्मन संसद (क्पमज) से सहायता के लिए प्रार्थना की। उनको सहायता देने के लिए फ्रैंकफर्ट संसद ने प्रशा के राजा से अनुरोध किया। प्रारंभ में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने उनकी सहायता देना स्वीकार कर लिया किंतु बाद में क्योंकि इंग्लैंड और रूस डेनमार्क के पक्ष में थे और वे दोनो मध्यस्थता करने के लिए तैयार थे, उसने उनको सहायता तो नहीं दी, वरन् डेनमार्क के राजा से समझौता करके दोनों प्रदेशों को उनके हाथों में ही छोड़ दिया । राष्ट्रवादी और उदारवादियों के लिए फ्रेडरिक के ऐसे विश्वासघाती कार्य की प्रथम प्रतिक्रिया बहुत ही तीव्र हुई। परन्तु उन्होंने धीरे–धीरे यह भी अनुभव किया कि जर्मनी के एकीकरण में उनके लिए प्रशा की

सहायता करना बहुत आवश्यक है क्योंकि उनके पास अपनी कोई सेना नहीं थी। फलतः उदारवादियों और राष्ट्रवादियों को प्रशा के सामने झुकना पड़ा। इस प्रकार श्लेजबिग – हाल्स्टीन के प्रश्न ने फ्रैंकफर्ट संसद के लिए असफलता और निराशा की स्थिति ला दी और इससे उग्रवादियों या आदर्शवादियों का महत्व तथा प्रखरता भी कम हो गई।

फ्रेडरिक अपनी सफलता से उत्साहित होकर प्रशा में पूर्ण रूप से स्वेच्छाचारी शासन करने लगा । उदारवादियों की माँगों को पूरा करने से उसने इनकार कर दिया और रूढ़िवादी संविधान (ब्वदेमतअंजपअम ब्वदेजपजनजपवद) लागू किया। मतदान का अधिकार सीमित रखा गया ताकि केवल धनी वर्ग का ही स्वार्थ सिद्ध हो।

फ्रैंकफर्ट संसद तथा उसका प्रस्ताविक संविधान – ऐसी स्थिति में भी फ्रैंकफर्ट संसद संविधान प्रस्तुत करने के कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयास करती गई। संविधान रचना और जर्मन एकीकरण की व्यवस्था

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मै

मसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

271

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मै

करने के उत्तरदायित्व का पालन करना फ्रेंकफर्ट संसद का स्वयं अपने आप निश्चित किया

हुआ कार्य था । संविधान रचयिताओं के समक्ष जो प्रश्न सबसे ज्यादा गंभीर था, वह यह था कि जर्मनी के एकीकरण के लिए कौन – सा मार्ग अपनाना है – विशाल जर्मनी (ळतमंज ळमतउंदल = ळतवै क्म्न्जेब्भ्) ग्रश डयेश का या लघु जर्मनी (स्पजजसम ळमतउंदल =ज्ञस्म्पछक्म्न्जेब्भ्) क्लाइन डयेश का। दूसरे शब्दों में ऑस्ट्रिया साम्राज्य को उसकी गैर–जर्मन प्रजाओं के साथ जर्मन – एकीकरण में रखा जाएगा या केवल जर्मन राज्यों को ही उसमें रखना है। फ्रैंकफर्ट संसद के सदस्यों को यह जानकारी थी कि सत्ता और सैनिक शक्ति के लिए ऑस्ट्रिया या प्रशा दोनों में से एक राज्य का नेतृत्व उनके उद्देश्य की सफलता के लिए अनिवार्य है। परंतु धीरे–धीरे नेशनल असेम्बली यह भी अनुभव करने लगी कि जर्मनी के एकीकरण में ऑस्ट्रिया का सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता। बल्कि ऑस्ट्रिया उसमें एक बाधा है क्योंकि एक तो ऑस्ट्रिया अपनी विशाल गैर – जर्मन प्रजाओं के कारण जर्मन– एकीकरण को सफल बनाने से दूर ही रहना चाहता था, और दूसरे ऑस्ट्रिया ही हमेशा प्रशा के राजा को उदारवादी सुधार व संविधान देने से निरूत्साहित करता था। तीसरा कारण यह था कि ऑस्ट्रिया की रुचि, जर्मनी की राष्ट्रीय एकता से अधिक जर्मनी में हैम्सबर्ग की प्रभुसत्ता व निरंकुशता स्थापित रखने में ही थी क्योंकि इससे ऑस्ट्रिया जर्मन व गैर–जर्मन दोनों जातियों के ऊपर अपना नियंत्रण रख सकता था। चौथे, उसे जर्मनी के

पश्चिमी तटों पर स्थित सागर में अपनी नौशक्ति तथा गति – विधि को सक्रिय बनाना था क्योंकि ऑस्ट्रिया एक स्थानीय देश था, जिसकी सीमाओं के निकट कोई सागर नहीं था । इस परिस्थिति का विवेचन करते हुए फ्रैंकफर्ट संसद ने 1 मार्च 1849 को एक ऐसा संविधान पारित करना चाहा जिसमें द्वि–सदनीय व्यवस्था संपन्न एक संघीय राज्य हो और उसके शासक वंशानुगत राजा हों। राजा के पास निषेधाधिकार रहे। निम्न सदन सार्वजनिक मतदान से निर्वाचित होगा। उच्च सदन का नाम सब राज्यों के प्रशासन और विधानमण्डल के नाम पर होगा। इस नए संविधान से पूर्व संघीय डाइट से अधिक शक्ति इस संघीय राज्य की सरकार को दी गई। इस प्रकार अत्यधिक वाद–विवाद और चर्चा के उपरांत फ्रैंकफर्ट संसद के सदस्यों ने प्रशा के राजा फ्रेडरिक को अपना नेता मानकर मुकुट और जर्मन लोगों का राजा यह उपाधि प्रदान करने का निर्णय किया।

फ्रैंकफर्ट संसद की असफलता – प्रशा का मंत्रिमण्डल प्रशा के नेतृत्व में ही जर्मन एकीकरण के पक्ष में था और वह जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार करना चाहता था। इस समय ऑस्ट्रिया का नया रूढ़िवादी संविधान भी ऐसा था जिसके अनुसार ऑस्ट्रिया का ही प्रभुत्व स्थापित रहे परंतु फ्रेंकफर्ट संसद के उदारवादी व राष्ट्रवादी दलों ने ऑस्ट्रिया की इस अभिलाषा का समर्थन नहीं किया क्योंकि वे संयुक्त जर्मनी में केवल ऑस्ट्रिया के जर्मन प्रांतों को ही रखना चाहते थे। फलतः परिवर्तित परिस्थिति स्पष्टतः प्रशा के नेतृत्व के ही अनुकूल हो गई किंतु इसमें भी एक समस्या आई । प्रशा का राजा फ्रेडरिक एक द्विधाग्रस्त व्यक्तित्व वाला शासक था और सदैव एक अस्थिर व ढुलमुल नीति का अनुसरण करता था । अपने अहंकार (च्मतेवदंस अंदपजल) तथा प्राचीन रूढ़ियों के प्रति मोह के कारण उसके उद्देश्य ऑस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंश की परंपरा को मान्यता देने का था । इसलिए फ्रेडरिक ने फ्रेकफर्ट संसद की ओर से प्रदान किए गए मुकुट और उपाधि को ग्रहण करने से इनकार किया और यह स्पष्ट कर दिया कि जो अधिकार उसे स्वतः ही दैवी अधिकार के रूप में प्राप्त है उसे वह साध ाारण राजनीतिक नेताओं के हाथों से स्वीकार करना अपनी प्रतिष्ठा का अपमान समझता है यदि वह इसे स्वीकार भी करेगा तो केवल राजाओं के हाथों से ही स्वीकार करेगा इस घटना से उदारवादियों और राष्ट्रवादियों की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। इस कटु अनुभव के बाद अनेक सदस्यों ने पद त्याग दिया, विशेष रूप से दक्षिण राज्य जर्मन एकीकरण के प्रति उदासीन हो गए। सेक्सनी और बेडन के आंदोलनों का प्रशा की सैन्य शक्ति के द्वारा दमन कर दिया गया। फ्रैंकफर्ट संसद एक अवशिष्ट संसद (त्नउच) में परिणत हो गई। इस प्रकार जर्मनी में सन् 1848 का उदारवादी तथा क्रांति–समर्थक आंदोलन असफलता के साथ समाप्त हो गया।

उपर्युक्त घटनाक्रम का विवेचन करते हुए फ्रेंकफर्ट संसद की असफलता के जो कारण दृष्टिगत होते हैं, वे निम्नलिखित हैं–

1. फ्रेंकफर्ट संसद के गठन का अत्यधिक बौद्धिक होना।

मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
272
2. संसद के नेताओं या परिचालकों में व्यावहारिक अनुभव का अभाव।
3.
उत्तर व दक्षिण में पारस्परिक सहयोग और विश्वास का अभाव।
4. फ्रेडरिक के चरित्र में द्विधा की भावना का होना ।
5.
प्रशा की रूढ़िवादी शासन प्रणाली ।
6. ऑस्ट्रिया के जर्मनी के एकीकरण विरोधी तथा रूढ़िवादी विचार द्य
7.
8
फ्रैंकफर्ट संसद के नेताओं में सहमति का अभाव और एक सामान्य नीति (ब्वउउवद च्वसपबल) का न होना।
अंतिम सबसे अधिक महत्वपूर्ण त्रुटि यह थी कि वे राजनीति में शक्ति (च्वूमत पद चवसपजपबे) की आवश्यकता का सम्यक् अनुभव नहीं कर पाए और वे सही दृ ष्टिकोण से समस्याओं का विश्लेषण नहीं कर सके।

फ्रैंकफर्ट संसद की असफलता का परिणाम यह हुआ कि अब छोटे राज्य अपनी इच्छा के अनुसार नीति–निर्धारण या निर्णय कर लें, ऑस्ट्रिया और रूढ़िवादी मार्ग का ही अनुसरण करें और जर्मन मामलों का संयुक्त रूप से उत्तरदायित्व लें। इस समझौते ने भविष्य में प्रशा और ऑस्ट्रिया के मध्य कटु संबंधों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

एकीकरण की पुनः चेष्टा तथा एरफर्ट संसद – सन् 1849 से प्रशा के सेनापति रैडौविट्ज के क्रमशः बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप प्रशा ने एक सुस्पष्ट, स्थिर और निश्चित जर्मन नीति प्रारंभ की जो संपूर्ण रूप से उसकी अपनी थी और वह नीति ऑस्ट्रिया अर्थात् श्वार्जनबर्ग की नीति के पूर्णतया विरुद्ध थी। रैडोविट्ज नरम उदारवादी (डवकमतंजम स्पइमतंसे) दल का समर्थन प्राप्त करके प्रशा के नेतृत्व में राष्ट्रीय एकता स्थापित करना चाहता था। इसके लिए वह ऑस्ट्रिया के साथ समझौता करने को तैयार तो था परंतु वह यह जानता था कि श्वार्जबर्ग सहयोग नहीं देगा। अतः उसने प्रशा के पार्श्ववर्ती राज्यों की ओर दृष्टिपात किया (जैसे सेक्सनी, हैनोवर आदि) । इसके अतिरिक्त उसने जन समर्थन प्राप्त करने की भी चेष्टा की। यद्यपि उसको अपने कैथोलिक धर्म और राष्ट्रवादी लक्ष्य के लिए अपने सहयोगियों के विरोध का हमेशा सामना करना पड़ा। तो भी अपने प्रयत्न से उसने सन् 1850 में ऐरफर्ट में संसद 'डाइट' का अधिवेशन बुलाया। ।

इस प्रकार सन् 1850 में एक बार फिर राष्ट्रीय एकता लाने का प्रयास किया गया, इस सभा में उत्तर और मध्य जर्मन राज्यों का ही प्रतिनिधित्व था क्योंकि फ्रैंकफर्ट संसद के अनुभव से उदासीन होकर दक्षिणी राज्यों ने एकीकरण से सम्बंधित मामलों में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई। इसके अतिरिक्त उन्हें

एकीकरण के लिए विशेष आवश्यकता भी अनुभव नहीं हुई। इसका कारण यह था कि दक्षिण के प्रमुख राज्यों की अपनी स्थिति अच्छी थी और नेपोलियन के अभियान उनके लिए अधिक हानिकर सिद्ध नहीं हुए थे, इसके अतिरिक्त उदार, शक्तिशाली एवं समृद्ध दक्षिणी राज्य प्रशा के नेतृत्व को स्वीकार करने के इच्छुक भी नहीं थे। किंतु जो इकाइयाँ फ्रांस के साथ और नेपोलियन के साथ लड़ाइयों में अपनी प्रतिष्ठा खो चुकी थी, वे जर्मन – एकीकरण में तथा नए जर्मन संघ में अपना नया अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा ढूँढ़ने का प्रयास कर रही थीं। उनकी सहायता से रैडोविट्ज फ्रैंकफर्ट संसद की असफलता के अंधकार में एक नई आशा की किरण दिखानी चाही परंतु ऑस्ट्रिया के विरोध के कारण यह संभव नहीं हुआ। श्वार्जनबर्ग ने यह कहा कि यह जर्मन संघ का संचालन करने वाली संघीय डाइट के रहते हुए उसकी अनुमति या समर्थन के बिना रैडोविट्ज संविधान का परिवर्तन नहीं कर सकता, क्योंकि यह गैर–कानूनी होगा। हैनोवर ने सदस्य का पद छोड़ दिया। दक्षिण पहले से ही उदासीन था। ऐसी परिस्थिति में ब्रेजविक ने सन् 1815 के संघीय (थ्मकमतंस) संविधान के संशोधन का एक प्रस्ताव रखा परंतु जब गौण राज्यों ने अस्थिरता दिखानी शुरू की तो फ्रेडरिक भी चिंतित हो गए कि कहीं रैडोविट्ज की योजनाएँ अधिक उदार न हो जाएँ। इस प्रकार ऐरफर्ट सम्मेलन भी व्यर्थ हो गया। उधर उदारवाद को पुनरुज्जीवित होते हुए देखकर श्वार्जनबर्ग और सचेत हो गया और जर्मन – संघ के गौण राज्यों को चेतावनी दी कि वे जर्मन संघ को त्याग कर न जाए।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

273

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

274

सन् 1850 में हाल्स्टीन और हैस में पुनः समस्या आई । प्रशा ऑस्ट्रिया के साथ प्रतिद्वंद्विता के लिए प्रस्तुत भी था, परंतु अंत में रूस की मध्यस्थता से सन् 1850 में आलमूज में दोनों के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार प्रशा ने एकीकरण के विचार को छोड़ दिया। जर्मन के संविधान को सुधारने की रैडोविट्ज की जो परिकल्पना थी, उस पर पुनः विचार करने व निर्णय देने का दायित्व जर्मन शासक वर्ग को दिया गया। इस प्रकार ऑस्ट्रिया की प्रतिक्रियावादी नीति ने प्रशा उदारवादियों तथा संविधानवादियों के लिए कोई आदर्शवादी वातावरण नहीं छोड़ा।

1850–59 की असफलता के कारण

छठे दशक की इस सफलता को देखते हुए कुछ लेखक और विचारकों ने यह महसूस किया कि इस असफलता के पीछे प्रधान कारण यही था कि सन् 1848

के उदारवादियों ने केवल बौद्धिक तथा सैद्धांतिक चर्चा ही अधिक मनोयोग से की थी, उन्होंने राजनीतिक सता की आवश्यकता या वास्तविकता की अवहेलना की थी। वे यह न समझ सके कि शक्ति और संप्रभुता के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क से ही सफलता मिल सकती अर्थात् संयुक्त शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र का अस्तित्व उसकी राजनीतिक शक्ति में था, केवल बौद्धिक उत्कर्ष में नहीं। शक्ति जर्मनी की एकीकरण समस्या का समाधान भी थी और सम्मान भी। अब जर्मनी में उस वास्तविकता की अनुभूति हो रही थी जिसके परिणामस्वरूप परवर्ती काल में (1850–1860) राष्ट्रीय उदारवाद का जन्म हुआ । यही कारण था कि बिस्मार्क की शक्ति के आधार पर लाई गई राष्ट्रीय एकता की नीति का जर्मन जनता ने समर्थन किया और यह स्वीकार कर लिया गया कि प्रशा का नेतृत्व सजग होने लगा था। इस प्रकार जर्मनी के निवासी अब जर्मनी की राजनीतिक समस्याओं को सही दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करने लगे थे।

जर्मनी का आर्थिक विकास

सन् 1850–59 वाले दशक की राष्ट्रीय एकता का आंदोलन असफल रहा, किंतु इससे आर्थिक उन्नति में जर्मनी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई थी। रेल निर्माण और मुख्य रेल मार्गों का जाल बिछाने का कार्य चल रहा था (उदाहरणतः सन् 1860 कि.मी.) । इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख उद्योगपतियों (प्दकनेजतपंससपेजे) जैसे बानाई जिसमें (विद्युत), एच. एच. मैयर (नौ परिवहन), हेंकेल फलन डनर्समार्ग (लोहा और स्टील) के नेतृत्व में जर्मनी के विभिनन उद्योगों के क्षेत्र में बहुत उन्नति हो रही थी ।

।

यही प्रभावशाली उद्योगपति जर्मनी के प्रसिद्ध नत्सियनाल फेरैन के सदस्य बने– जिसकी स्थापना सन् 1859 के सितंबर महीने में हुई थी और नत्सियनाल फैरैन के माध्यम से जर्मनी की उदारवादी राष्ट्रीयता प्रोत्साहन मिला। रेलों के विस्तार से जर्मनी के भिन्न–भिन्न राज्यों का पारस्परिक आदान–प्रदान सरल हो गया, जिससे राष्ट्रीय और राजनीतिक भावना के आदान–प्रदान में भी वृद्धि हुई। एक स्थान से दूसरे स्थान को आना–जाना भी सरल हो गया।

सार और रूर क्षेत्रों में कोयला – उत्पादन में भी बहुत वृद्धि हुई । रूर, सेक्सनी और साइलेशिया के औद्योगिक क्षेत्रों में समृद्धि आने के कारण वहाँ की जनसंख्या में वृद्धि हुई ।श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई संख्या से उनका राजनीतिक महत्व भी बढ़ने लगा। इस आर्थिक उन्नति और परिवर्तन के फलस्वरूप प्रशा केवल जोलवेरिन का ही नेता नहीं हो गया, बल्कि जर्मनी का आर्थिक नेतृत्व प्रशा पर ही आधारित था। दूसरी ओर आर्थिक क्षेत्र में ऑस्ट्रिया प्रशा से बहुत पीछे रह गया क्योंकि उद्योग, व्यापार और वाणिज्य में ऑस्ट्रिया अपनी रूढ़िवादी नीति (एकाधिकारयुक्त गिल्ड प्रथा आदि) के कारण बहुत पिछड़ा रहा। सन् 1866 के युद्ध के प्रारंभिक काल में ऑस्ट्रिया को आर्थिक घाटा और तीव्र आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था, जबकि प्रशा अपने बढ़ते हुए व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के कारण निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था।

तत्कालीन इटली के राष्ट्रीय एकीकरण से जर्मन राष्ट्रवादी प्रोत्साहित और अनुप्राणित हो रहे थे। उनके लिए ऑस्ट्रिया इटली का जल्लाद (फाँसी देने वाला) और जर्मनी का उत्पीड़क था । यह मनोभाव अधिकतर उत्तरी जर्मनी का था। दक्षिण अभी भी ऑस्ट्रिया के प्रति अनुकूल मनोभाव रखता था। इसलिए दक्षिण

जर्मनी ऑस्ट्रिया के नेतृत्व में ही जर्मन एकीकरण चाहता था । दक्षिण जर्मनी प्रशा की लघु जर्मनी संकल्पना से अधिक विश्वास ऑस्ट्रिया की विशाल जर्मनी (ळतमंज ळमतउंदल) की संकल्पना में ही रखता था । दक्षिण जर्मनी, जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार नहीं चाहता था। यदि जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार हो जाता तो दक्षिण का कैथोलिक धर्म जर्मनी में अल्पमत में हो जाता सन् 1859 के फ्रांस और ऑस्ट्रिया के युद्ध के कारण ऑस्ट्रिया तथा प्रशा के संबंधों की कटुता तीव्र होती चली गई। इस युद्ध में फ्रांस के विरुद्ध ऑस्ट्रिया, प्रशा तथा समस्त जर्मन संघ से सब प्रकार की सहायता व समर्थन की आशा कर रहा था परंतु बिस्मार्क के प्रभाव के कारण ऑस्ट्रिया को प्रशा व समस्त जर्मन संघ से सहायता न मिली।

बिस्मार्क का उदय– बिस्मार्क प्रशा के एक भूस्वामी थे। फ्रैंकफर्ट संसद (1848) के अधिवेशन में इन्होंने पहली बार राजनीति में भाग लिया। वहाँ उन्होंने प्रशा का प्रतिनिधित्व किया था। इस अधिवेशन में बिस्मार्क ने अपने आपको एक निर्मम (त्नजीसमे) दृढ़प्रतिज्ञ कूटनीतिज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया । बिस्मार्क का जन्म 1 अप्रैल 1812 को ब्रैडनवर्ग में हुआ था। उनका चरित्र विचित्र था। उन्होंने फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का समर्थन नहीं किया परंतु प्रशा के शासक फ्रेडरिक महान की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का समर्थन किया क्योंकि उनकी नीतियों से प्रशा के उत्कर्ष में वृद्धि होने का सूत्रपात हुआ था । बिस्मार्क की व्यक्तिगत विचारधारा उदारवाद की विरोधी नहीं थी । प्रशा के राजा फ्रेडरिक तो उन्हें विप्लववादी कहते थे। वास्तव में बिस्मार्क जर्मनी का एकीकरण सफल नहीं हो सकता तब उन्होंने प्रशा के नेतृत्व में बलपूर्वक एकीकरण करना ही एकमात्र उपाय समझा। जर्मन राष्ट्रीयता की शक्ति का प्रयोग कर उन्होंने सफलता प्राप्त की। वे हमेशा जर्मनी की आवश्यकता व प्रतिष्ठा को व्यक्तिगत सम्मान और प्रतिष्ठा से ऊपर समझते थे।ै मम बवचल 331

यद्यपि बिस्मार्क की ऑस्ट्रिया के प्रमख व्यक्तियों तथा ऑस्ट्रिया के रूढ़िवादियों से मित्रता थी, तथापि वे सुस्पष्ट रूप से प्रशा के स्वतंत्र स्वरूप और नीति की प्रतिष्ठा करने में सफल रहे। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि तत्कालीन जर्मन संघ का गठन किस सीमा तक असंतोषजनक था। इसलिए बिस्मार्क इस बात पर भी विचार कर रहे थे कि किस प्रकार से इस संघ की प्रतिकूल परिस्थिति को प्रशा के समर्थन में परिवर्तित किया जाए जिससे प्रशा जर्मनी के एकीकरण का नेतृत्व कर सके ।

–

फ्रैंकफर्ट संसद (1848) में उनके सफल व्यक्तित्व से प्रभावित होकर प्रशा सरकार ने उनको सेंट पीटर्सबर्ग में राजदूत के पद पर (1859 – 1856) नियुक्त किया। इसके बाद बिस्मार्क को पेरिस में राजदूत के रूप में भेजा गया।

बिस्मार्क ने उत्तर के साथ अपने जन्मजात संबंध को कभी भी नहीं भुलाया, न वे अपनी भू–स्वामी मनोवृत्ति को भूले और न भूमिहीन साधारण मध्य वर्ग के प्रति उनकी धारणा कभी परिवर्तित हुई किंतु जहाँ उनके राजनीतिक उद्देश्य सफल होने की बात थी या अपने आदर्श की सिद्धि का प्रश्न था, वहाँ वह अपने समस्त संस्कार या विचारधारा के साथ समझौता करने में एक क्षण का भी विलंब नहीं करते थे । बिस्मार्क पूर्वाग्रहों तथा नैतिक शंकाओं से पूर्णतः मुक्त थे। जहाँ उच्च आदर्श या कार्य सिद्धि का अवसर उन्हें मिलता था वहाँ वे अपनी व्यक्तिगत विचारधारा परिवर्तित करने में या त्यागने में तनक भी नहीं हिचकिचाते थे। शत्रु का दमन करने में एकदम निर्मम तथा सभी प्रकार की कुंठाओं से मुक्त थे। इस मानसिक लचीलेपन (थ्समगपइपसपजल) ने ही उनको शक्ति और सफलता प्रदान की थी। जब बिस्मार्क ने पदभार ग्रहण किया था तब उन्होंने दोनों की त्रुटियों को भली–भाँति समझ लिया था। उनके लिए उदारवादियों के सत्ताहीन राष्ट्रीय आदर्श तथा राजनीतिक सिद्धान्त या गौण राज्यों के शासकों की निष्फल आध ारहीन सार्वभौम शक्ति का अहंकार दोनों ही अर्थहीन थे।

बिस्मार्क और उनकी 'रक्त और तलवार' की नीति–

बिस्मार्क का राजनीतिक कार्यं, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा था, इस प्रकार से है– जर्मनी उदारवादी आदर्शों के लिए नहीं वरन् शक्ति (च्वूमत) के लिए प्रशा की ओर देख रहा है। इसलिए उपयुक्त अनुकूल

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

275

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

276

परिस्थिति के लिए प्रशा अवश्य अपनी शक्ति और सत्ता को सुरक्षित रखेगा। जर्मनी की समस्या का समाधान बौद्धिक भाषणों से नहीं, आदर्शवाद से नहीं, बहुमत के निर्णयों से नहीं, वरन् प्रशा के नेतृत्व में रक्त और तलवार (ठसववक – प्तवद) की नीति से ही होगा। यहाँ अब उदारवाद विरोधी मनोभाव और सत्ता तथा बलपूर्वक राष्ट्रीय एकीकरण में विश्वास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। बिस्मार्क की रक्त और तलवार की नीति की तैयारी उनके यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन की पृष्ठभूमि में ही निहित थी । बिस्मार्क ने जर्मनी के हितों को, उसके प्रतिद्वंद्वी देशों (इंग्लैण्ड, रूस, फ्रांस, ऑस्ट्रिया) के संदर्भ में देखा था। उनका निश्चय था कि जर्मनी का एकीकरण कभी भी सत्ताधारी यूरोपीय राज्य

– मंडल स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि शक्तिशाली संयुक्त जर्मनी यूरोप के शक्ति–संतुलन के लिए सबसे बड़ा खतरा था। इसलिए बिस्मार्क दृढ़ रूप से विश्वास करते थे कि शक्तिहीन प्रशा और आगे चलकर शक्तिहीन जर्मनी एक और तो एकीकरण में ही असमर्थ रहेगा और दूसरी ओर यदि एकीकरण हो भी गया तो निर्माण की दृष्टि से जर्मनी, शक्ति के अभाव में, सदा पिछड़ा रहेगा । उदारवाद के बारे में बिस्मार्क का व्यक्तिगत मत चाहे जो कुछ भी रहा हो, जर्मनी की वास्तविक परिस्थिति को देखते हुए उनका यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि राजतंत्र का एकमुखी मार्ग ही जर्मनी की समस्या का एकमात्र सही समाधान है। उन्हें फ्रैंकफर्ट संसद के अनुभव से यह मालूम हो गया था कि उदारवाद में जो विभिन्न विचारधाराएँ थीं अर्थात् एकमत का जो अभाव था, उसमें जर्मनी का एकीकरण संभव नहीं था। इसलिए राजतंत्र के केंद्र बिंदु पर ही बिस्मार्क ने समग्र जर्मनी की राष्ट्रीयता को एकसूत्र में बाँधे रखने का प्रयत्न किया।

बिस्मार्क की रक्त और तलवार की नीति के पीछे प्रशा की सामरिकता की नीति की परंपरा का भी प्रभाव विद्यमान रहा। क्योंकि फ्रेडरिक महान के समय से प्रशा की समृद्धि का जो प्रारंभ हुआ था उसका आधार प्रशा की सामरिक श्रेष्ठता ही थी ।

इटली के एकीकरण के युद्ध में ऑस्ट्रिया के प्रति प्रशा की निरपेक्षता ने दोनों के संबंध में व्यवस्था को ही केवल अधिक नहीं बढ़ाया वरन् इस बात को भी स्पष्ट कर दिया कि अब कोई ऐसी सामान्य नीति नहीं ग्रहण की जा सकती जो दोनों देशों के लिए ग्राह्य हो । प्रशा के राजा फ्रेडरिक के व्यक्तिगत विश्वास तथा आदर्श के कारण ही केवल यह औपचारिक मेल व संबंध बना हुआ था ।

सन् 1862 तक ऑस्ट्रिया की नीति को देखकर उत्तर जर्मनी में यह विश्वास दृ ढ़ होता गया कि अब प्रशा के नेतृत्व में जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार करके केवल जर्मन राज्यों को मिलाने से ही जर्मनी के एकीकरण की समस्या का समाधान किया जा सकता है अर्थात् लघु – जर्मनी समाधान ही एकमात्र समाध ान है।

सन् 1858 से 1862 के काल में प्रशा में राजनीतिक पविर्तन आया। राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के अत्यधिक बीमार हो जाने के कारण उनके भाई विलियम प्रथम ने प्रतिशासक के रूप में शासन किया। इन दोनों भाइयों में चारित्रिक भिन्नता थी । विलियम प्रथम भी रूढ़िवादी थे किंतु आलमूज में (1850) ऑस्ट्रिया के कारण प्रशा को जो अपमान का सामना करना पड़ा था, उस अनुभव को वे भूले नहीं थे। परंतु फिर भी उदारवादियों की आशा पूर्ण नहीं हुई। उन्होंने सुधार का क्षेत्र केवल सैनिक स्तर तक ही सीमित रखा। फलतः सन् 1861 में सांविधानिक आंदोलन का पुनः सूत्रपात हुआ ।

प्रगति वादी (च्तवहतमेपअम) दल की भारी विजय हुई और उन्होंने संसद (क्पमज) में प्रतिक्रियावादियों के साथ संघर्ष में अपना अस्तित्व सफलता के साथ बनाए रखा। उदारवादियों तथा प्रतिक्रियावादियों में मताधिकार, सैनिक बजट आदि प्रश्नों को लेकर वाद–विवाद चलता रहा । विलियम प्रथम ने अपनी ओर

से इन उदारवादी आंदोलन और उनकी समस्याओं का समाधान करने की चेष्टा की, परंतु वे इसमें सफल न हो सके। अंत में उन्होंने बिस्मार्क को सन् 1862 में प्रमुख मंत्री (च्तपदबपचसम डपदपेजमत) के पद के लिए आमंत्रित किया तथा बिस्मार्क ने उस दायित्व को स्वीकार किया।

बिस्मार्क के सामने दो समस्याएँ थी –

1. प्रशा का सांविधानिक आंदोलन, और

2. जर्मनी का शक्तिहीन राष्ट्रीय संघर्ष द्य बिस्मार्क ने दोनों समस्याओं का समाध ाान बलप्रयोग अर्थात् सन्

इकाई.13

1866 के युद्ध के माध्यम से ही किया ।

बिस्मार्क के पदग्रहण के साथ ऑस्ट्रिया व प्रशा की प्रतिद्वंद्विता समय – समय पर सामने आती रही और तीव्र होती चली गई क्योंकि बिस्मार्क इस बात पर दृ ढ़ संकल्प रहा कि प्रशा को ऑस्ट्रिया के समान शक्तिशाली देश के रूप में प्रतिष्ठित कर दे और जर्मनी की समस्या का समाधान करते समय प्रशा के अधि ाकारों को प्रमुखता दे । दक्षिण में न सही तो कम से कम उत्तर और मध्य जर्मनी में यदि ऑस्ट्रिया प्रशा के परमोच्च शक्ति (च्तंउवनदज चवूमत) के रूप में मान्यता देने को तैयार हो तो बिस्मार्क ऑस्ट्रिया को सहयोग देने को तैयार था। किंतु यह भी स्पष्ट ही था कि प्रशा की ऐसी माँग को मान लेना ऑस्ट्रिया के लिए संभव नहीं था । फलतः दोनों के बीच शांतिपूर्ण या मैत्रीपूर्ण सह अस्तित्व भी संभव नहीं था ।

बिस्मार्क का यह अनुभव था कि ऑस्ट्रिया और प्रशा की यह प्रतिद्वंद्विता एक यूरोपीय संकट की सृष्टि कर सकती थी, विशेष रूप से फ्रांस के हस्तक्षेप की आशंका तो थी ही क्योंकि दक्षिण के धार्मिक प्रश्न के बहाने से फ्रांस हस्तक्षेप कर ही सकता था। ऐसी आपातकालीन अवस्था की संभावना को ध्यान में रखकर बिस्मार्क पहले से ही उसकी तैयारी कर चुका था ।

जब उन्होंने सेंट पीटर्सबर्ग में प्रशा के राजदूत का पद संभाला था, तो अपनी कुशलता से रूस की शुभकामना और मित्रता को प्राप्त कर लिया था, जिसका वे अपनी आवश्यकता के अनुसार फ्रांस के विरुद्ध उपयोग कर सके। यह उनका प्रथम सफल कूटनीतिक कार्य था, जो कालांतर में उनके लिए वास्तविक रूप से बहुत उपयोगीसिद्ध हुआ । क्रीमिया के

युद्ध में प्रशा की निरपेक्षता, सेंट पीटर्सबर्ग में उनका सफल दूत के रूप में कार्य तथा राजतंत्र में आस्था प्रकट करके रूसी सम्राट को संतुष्ट करना इन सभी कार्यों के फलस्वरूप बिस्मार्क के लिए रूसी मैत्री सुरक्षित रही, जिसका समय आने पर फ्रांस के विरुद्ध सफलपूर्वक उपयोग किया गया था।

ऑस्ट्रिया की प्रभुसत्ता कम करने में भी बिस्मार्क बहुत कुशल और चतुर रहे, जब सन् 1863 में ऑस्ट्रिया ने राज्यमण्डल को अपने ही स्वार्थ के लिए सुधारने का प्रयास किया, तब बिस्मार्क ने कुशलता से प्रशा को इस अधिवेशन में अनुपस्थित रखा। ऑस्ट्रिया अपनी स्वार्थपूर्ण नीति के कारण जर्मन समस्या का कोई समाध ाान नहीं कर पाया। फलतः दक्षिण जर्मनी, जो ऑस्ट्रिया का समर्थक था, उसके

प्रति आस्था खो बैठा और उसने इस वास्तविक में विश्वास करना शुरू किया कि जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण का अब एक ही उपाय रह गया है और वह है प्रशा के नेतृत्व में लघु जर्मनी (ॅउंसस ळमतउंदल) का संगठन करना । जब दक्षिण जर्मनी का मनोभाव इस प्रकार से परिवर्तित होता गया तब बिस्मार्क ने अविलंब उस परिस्थिति का लाभ उठाना चाहा। ऑस्ट्रिया भी दक्षिण में अपनी स्थिति पुनः स्थापित न कर सका क्योंकि ऑस्ट्रिया जर्मनी को आकर्षित करने के लिए कुछ नहीं दे सकता था । ऐसी स्थिति को देखकर बिस्मार्क ने तनिक भी विलंब न किया और राज्यमण्डल के सुधार के लिए ऐसा प्रस्ताव रखा जिससे उन्हें जन–समर्थन मिलने की आशा थी । इस प्रस्ताव में ऑस्ट्रिया और प्रशा के मध्‍ य सत्ता – विभक्त (क्पअपेपवद व िचवूमत) करने का सुझाव था ।

डेनमार्क के साथ युद्ध 1864 – सन् 1863 में श्लेसबिग हॉलस्टीन का प्रश्न फिर से उठा । इस प्रश्न ने जर्मनी के उदारवादी तथा कूटनीतिक दोनों पक्ष के नेताओं को ही आकर्षित किया क्योंकि दोनों दल इन दो डचियों को डेनमार्क के आधिपत्य से पृथक करके जर्मन राज्यों में मिला लेना चाहते थे। संघीय डाइट ने पहले से ही डेनमार्क के विरुद्ध कदम उठाने का निश्चय कर लिया था। सन् 1864 के प्रारंभ में प्रशा और डेनमार्क के मध्य संधि–वार्ता भी विफल हो चुकी थी। सन् 1863 में संयुक्त सेना डेनमार्क के विरुद्ध भेजी गई थी। प्रशा की सेना ने सन् 1864 में उनका अनुसरण किया और डेनमार्क के साथ युद्ध आरंभ हो गया।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

स्व–प्रगति की जाँच करें

1. बताइए जर्मनी में आधुनिक युग के उदय का क्या कारण था?
2. जर्मनी के एकीकरण हेतु कोई तीन बाधा लिखें।

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

277

पश्चिमी विश्व

}

छव्ज्म्

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

278

बिस्मार्क इस परिस्थिति की गंभीरता को समझते थे। उन्हें इंग्लैण्ड, फ्रांस, या रूस के हस्तक्षेप से महादेशीय संकट का भय था । इस विदेशी संकट के अतिरिक्त उन्हें आंतरिक शत्रुता का भी सामना करना था। प्रशा की डाइट (क्पमज) ने युद्ध के लिए अनुदान देने से मना कर दिया, अतः इस स्थिति में बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के साथ सहयोग की भावना और संबंध बनाए रखने में बहुत चतुरता, सावधानी और तत्परता से काम लिया, क्योंकि डेनमार्क के विरुद्ध युद्ध में ऑस्ट्रिया के सहयोग की बहुत आवश्यकता थी । ऑस्ट्रिया और प्रशा

के मध्य एक औपचारिक संधि हुई । इस लड़ाई में डेनमार्क की पराज्य हुई। डेनमार्क के राजा क्रिश्चियन को इन दो डचियों पर अपने आधिपत्य को छोड़ना पड़ा । बिस्मार्क परिस्थिति का लाभ उठाकर कुशलतापूर्वक श्लेसविग हॉलस्टीन की समस्या का समाधान करने में सफल रहे ।

इस युद्ध में (जो युद्ध आंशिक रूप में एक राष्ट्रीय युद्ध था) प्रशा की सफलता ने उसके नेतृत्व को भविष्य के राष्ट्रीय युद्ध लड़ने के लिए और दृढ़ आधार प्रदान किया। यह विश्वास भी दृढ़ हो गया कि जर्मनी का एकीकरण प्रशा के नेतृत्व में ही संभव था। प्रशा में प्रशा के नेतृत्व में ही संभव था ।

प्रशा में प्रगतिशील दल (च्तवहतमेपअम चंतजल) द्वारा निरंतर शत्रुता का दृ ष्टिकोण अपनाने पर भी उदारवादी नेताओं ने व्यक्तिगत स्तर पर बिस्मार्क की नीति का समर्थन करना शुरू कर दिया। डेनमार्क के साथ युद्ध और सन् 1866 के युद्ध के मध्य के काल में बिस्मार्क ने प्रशा के बाहर उदारवादी नेताओं से सम्पर्क रखा क्योंकि उनका यह अनुभव था कि अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उसकी आवश्यकता होगी।

जैसे ही डेनमार्क के साथ युद्ध शुरू हुआ, उस युद्ध की पृष्ठभूमि पर ही बिस्मार्क ऑस्ट्रिया व प्रशा की प्रतिद्वंद्विता के निर्णायक समाधान का प्रयास करने लगे । युद्ध के बाद सन् 1864 में यह निश्चय हुआ कि वे दो डचियाँ ऑस्टिया और प्रशा दोनों के अधिकार में रहें। इसका अर्थ स्पष्ट था अर्थात् किसी भी समय प्रशा इन दोनों ही डचियों को अपने ही अधिकार में लाने की चेष्टा करेगा तो तनाव उत्पन्न होगा और ऑस्ट्रिया तथा प्रशा के मध्य संघर्ष अनिवार्य हो जाएगा। बिस्मार्क को यह ज्ञात था कि ऐसी चेष्टा करने के पीछे जनता का समर्थन प्रशा को ही प्राप्त होगा क्योंकि प्रशा ने सदैव ही यह चाहा था कि उन दोनों डचियों को जर्मन–संघ में मिलाया जाए। बिस्मार्क स्वयं भी जर्मनी से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार करना तथा उन दो डचियों को जर्मन – संघ में मिलाना चाह रहे थे । यदि कार्य शांतिपूर्वक हो जाता तो बिस्मार्क के लिए सुविधा ही होती क्योंकि उसमें अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप का भय नहीं रहता। इसलिए यद्यपि प्रशा का राजा और मंत्रिमण्डल शीघ्र ही कुछ संकट उत्पन्न करके ऑस्ट्रिया के साथ इस मामले को समाप्त करना चाहते थे, बिस्मार्क ने ऐसा नहीं होने दिया और उनको ऐसा करने से निरुत्साहित किया।

ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध की प्रस्तुति – डेनिस युद्ध के बाद यह निश्चित किया गया था कि ऑस्ट्रिया हॉलस्टीन पर और प्रशा, श्लेसबिग पर शासन करेंगे और ऑस्ट्रिया ने प्रशा के सत्ताविभाजन की इस नीति को स्वीकार कर लिया था। अब यह परिस्थिति आने पर बिस्मार्क को अपनी कार्य–सिद्धि के उपयुक्त धूर्तता एवं चतुरता का आश्रय लेने में कोई बाधा नहीं रही। इस प्रकार यूरोपीय राष्ट्रव्यवस्था में बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया को हॉलस्टीन का उपहार देकर प्रसन्न किया और भविष्य के लिए जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। साथ ही इंग्लैण्ड व रूस को ऑस्ट्रिया के प्रति शंकालू रखा जैसे कि वे फ्रांस के नेपोलियन तृतीय के प्रति थे।

सन् 1865 के अंत तक बिस्मार्क जर्मन– एकीकरण के अंतिम चरण के लिए प्रस्तुत हो चुका था। गेस्टीन–सम्मेलन (ळेंजमपद ब्वदअमदजपवद) में सत्ता विभाजन और दो डचियों की प्रशासिनक व्यवस्था के विषय में बताया गया था। इस सम्मेलन के फलस्वरूप बिस्मार्क को ऑस्ट्रिया के साथ संघर्ष शुरू करने का अवसर प्राप्त हुआ। हालस्टीन में ऑस्ट्रिया के शासन के विरुद्ध प्रशा में बहुत तीव्र आलोचना प्रारंभ हो गई। फरवरी में प्रशा ने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध आरंभ करने का निर्णय लिया और दोनों डचियों को संघ में मिलाने का निश्चय किया। यूरोप में अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने के लिए बिस्मार्क ने फ्रांस के राजा नेपोलियन तृतीय से बियारिट्ज में साक्षात्कार किया। नेपालियन तृतीय ने बिस्मार्क को कोई वास्तविक सहायता देने की प्रतिज्ञा नहीं की

परंतु उसने राइन प्रांत में कुछ स्थान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। बाद में बिस्मार्क ने नेपोलियन को कोई भी सुविधाएँ नहीं दी, किंतु उस समय फ्रांस की तटस्थता प्राप्त करने के लिए वह नेपोलियन को कुछ प्रदेश देने के लिए राजी हो गया। इस प्रकार बिस्मार्क ने चतुराई से उसको प्रलोभन दिया और भविष्य मेँ युद्ध की हालत में ऑस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस की तटस्थता प्राप्त कर ली। इसके बाद बिस्मार्क ने इटली के साथ मैत्री – संबंध स्थापित किया । इटली ऑस्ट्रिया का शत्रु देश था। इस कारण इस मैत्री संबंध से बिस्मार्क को बहुत लाभ हुआ। रूस के साथ बिस्मार्क का समझौता तो पहले से ही था । इस प्रकार यूरोपीय वातावरण बिस्मार्क के अनुकूल हो गया। अब युद्ध के लिए देश के अंदर उन्हें जो कुछ करना पड़ा। उसमें विलियम ने संशय किया, परंतु युद्ध मंत्री रून (त्ववद) और मोल्टके (डवसजाम) ने बिस्मार्क की योजना का पूर्ण समर्थन किया। अब बिस्मार्क के लिए केवल साधारण जनता का समर्थन ही प्राप्त करना बाकी रह गया था । इसका प्रबंध भी उन्होंने कुशलता से तथा चतुरता से कर लिया। जर्मन राज्यमंडल की डाइट के अधिवेशन में बिस्मार्क ने प्रशा के राजा फ्रेडरिक की राजसत्ता का समर्थक होते

हुए भी यह घोषणा की कि भविष्य में जर्मन डाइट का निर्वाचन सार्वभौम मताधि ाकार पर आधारित होगा और सांविधानिक सुधार पर विचार–विमर्श वही संसद करेगी। इस घोषणा से सबको बहुत आश्चर्य हुआ किंतु इससे बिस्मार्क को उदारवादियों का समर्थन मिल गया। इससे जर्मन राज्यमंडल का सुधार करने का मार्ग सरल हो गया। डाइट के इस अधिवेशन में ही उन्होंने श्लेसविग हॉलस्टीन के प्रादेशिक लाभ के प्रसंग को उठाया। इन दोनों डचियों की समस्या के समाधान के माध्यम से ही उन्होंने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की योजना बनाई। इस युद्ध के द्वारा बिस्मार्क ने जर्मनी की सैनिक एवं कूटनीतिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन किया और वे प्रशा का नेतृत्व स्थापित करने में सफल हुए।

बिस्मार्क का विचार था कि सार्वभौम मताधिकार से रूढ़िवाद प्रभाव होने के बदले बढ़ेगा, क्योंकि शहरों के उदारवादी मध्य वर्ग के मतों का संतुलन राजभक्त किसानों के मतों के द्वारा हो जाएगा।

बिस्मार्क के सार्वभौम मताधिकार का प्रस्ताव संघीय संविधान (थ्मकमतंस ब्वद.

जपजनजपवद) को तोड़ने के लिए पर्याप्त था। बिस्मार्क ने विप्लववादी शक्ति को भी अपनी कार्य–प्रणाली में स्थान दिया। यह बात गौण राज्यों के उदारवादियों और रूढ़िवादियों दोनों के लिए ही बड़े आश्चर्य की थी। धीरे–धीरे बिस्मार्क ने प्रगतिशील दल के सदस्यों का पृथक्–पृथक् व्यक्तिगत समर्थन प्राप्त कर लिया। इतना समर्थन पाने के बाद भी देश के अंदर या बाहर कितनी वास्तविक सहायता मिलेगी, इसके बारे में बिस्मार्क को निश्चय नहीं था। फिर भी उन्होंने इटली की मित्रता और प्रशा की सामरिक शक्ति के बल पर ही निर्भर करके जर्मन राज्यमण्डल को भंग करने का निश्चय कर लिया और युद्ध की घोषणा कर दी।

मध्यम एवं छोटे राज्यों के लिए यह बहुत कठिन परिस्थिति थी । उत्तर व मध्य जर्मनी के बहुत छोटे राज्यों ने पहले से ही प्रशा के साथ सामरिक उपसंधियाँ कर ली थी। उनके लिए दो ही विकल्प थे, प्रशा के पक्ष का समर्थन या तटस्थ रहना । दक्षिण राज्यों का झुकाव अभी तक ऑस्ट्रिया के प्रति था । परंतु दक्षिण के जन आंदोलन की सामान्य प्रवृत्ति ऑस्ट्रिया के पक्ष में नहीं थी क्योंकि ऑस्ट्रिया उनकी आशा–आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए संघीय संविधान की अधीनता स्वीकार करने की शिक्षा देने के सिवाय और कुछ नहीं दे सकता था । संघीय संविधान पहले से ही अव्यावहारिक प्रमाणित हो चुका था और श्लेसबिग हॉलस्टीन की अस्थायी व्यवस्था की अवहेलना करके ऑस्ट्रिया स्वयं भी संघीय संविधान की व्यर्थता प्रमाणित कर चुका था । (1865) । वियना और बर्लिन के मध्य कूटनीतिक सम्पर्क टूट चुका था। प्रशा की सेना हॉलस्टीन के अंदर प्रवेश कर चुकी थी । लक्समबर्ग, मैकलेनबर्ग और हैस – कैसल ने विरोध किया, दक्षिण के बेडन, बबेरिया और बुर्टमबर्ग राज्यों ने भी प्रशा का साथ नहीं दिया। प्रशा ने उनकों पराजित किया और ऑस्ट्रिया को सैडोवा के निर्णायक युद्ध में पराजित किया । प्रशा और ऑस्ट्रिया की परमोच्च शक्ति बनने की प्रतियोगिता समाप्त हो गई। फ्रांस और इंग्लैंड के हस्तक्षेप के भय के कारण से बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया और दक्षिणी राज्यों के साथ एक समझौता किया, जिसे प्राग की संधि में अंतिम रूप दिया गया। इस प्रकार उत्तर जर्मनी का एकीकरण पूरा हुआ।

पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
279
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
280

युवराज विलियम प्रथम तथा बिस्मार्क ने पराजित दक्षिणी राज्यों से बलपूर्वक कोई माँग नहीं की। वे समझते थे कि उससे उनके पराज्य के अपमान के साथ

प्रशा के विरुद्ध और भी विद्वेष की वृद्धि होगी जो आगे चलकर एकीकरण के प्रतिकूल सिद्ध होगी । इसलिए बुद्धिमानी इसी में थी कि उत्तर जर्मनी का एकीकरण जितना हुआ हैं, फिलहाल उसी को क्षेत्रीय सीमा मान लिया जाए। इससे यही होगा कि समय की प्रगति के साथ दक्षिणी राज्य राष्ट्रीय आदर्श और स्वार्थ को ध्यान में रखकर धीरे–धीरे अपने आप ही उत्तर जर्मन संघ के साथ एकीकरण चाहेंगे और आश्यक होने पर फ्रांस के विरुद्ध उत्तर जर्मनी को सहायता भी देंगे। यही कारण था कि बैठन, बवेरिया, बुर्टम वर्ग से केवल क्षतिपूर्ति की राशि ली गई किंतु उनकी कोई भूमि उनसे नहीं ली गई । हैस – कैसल और हैलोवर के शासकों को सिंहासन च्युत किया गया। उनके राज्यों, श्लेस बि– हॉस्टीन और स्वतंत्र शहर फ्रैंकफर्ट को प्रशा में मिला दिया गया। इस प्रकार उत्तर जर्मनी के राज्यों को तो बल–प्रयोग से मिलाया गया परंतु दक्षिण के राज्यों को नहीं मिलाया गया । यह भी बिस्मार्क की एक सफल कूटनीतिक चाल थी। ऑस्ट्रिया को बेनेशिया इटली को देना पड़ा। इसके अतिरिक्त जर्मन मामलों में कुछ कहने का अधिकार भी ऑस्ट्रिया को खोना पड़ा।

ऑस्ट्रिया–प्रशा के युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी को पहली बार एक अविच्छिन्न सीमा रेखा मिली, जो हेमेल से मेंस (डंपदे) नहीं तक फैली हुई थी। बिस्मार्क को अब दक्षिण से फ्रांसीसी प्रभाव को दूर करने का कार्य पूरा करना था, जिससे जर्मनी से राष्ट्र–विरोधी तत्व जड़ से ही खत्म हो जाए।

सेडोवा के युद्ध के परिणाम (1866) – सेडोवा के युद्ध के बाद हैस–डर्मस्टेडाट, बैडन बवेरिया, बुर्टम्बर्ग आदि राज्यों ने प्रशा के साथ संधि कर ली थी जिससे यह तय हुआ था कि विदेशी शक्तियों

के

में

युद्ध होने से उनकी सैनिक शक्ति प्रशा के आदेशाधीन रहेगी। इस प्रसंग में यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि दक्षिणी राज्यों के मन में ऑस्ट्रिया का जो स्वरूप था, वह सेडोवा के युद्ध में प्रशा की नेतृत्व प्रतिभा और सैनिक कुशलता को देखकर बदल गया । दक्षिणी राज्यों पर उत्तर के राष्ट्रवाद का भी प्रभाव लड़ना शुरू हो गया। जर्मनी में ऑस्ट्रिया की प्रतिष्ठा तथा बृहत – जर्मनी का स्वप्न भी सेडोवा के साथ ही नष्ट हो गया था। इसके अतिरिक्त सेडोवा के युद्ध में ऑस्ट्रिया की हार का अर्थ था, जर्मनी के रूढ़िवादी धार्मिक संप्रदाय एवं प्रतिक्रियावादियों की जर्मनी की राष्ट्रीय जन–शक्ति के हाथों हार। इससे जिस लोकप्रिय राष्ट्रीय शक्ति का उदय हुआ, बिस्मार्क उसको अपने अपूर्ण कार्य में (फ्रांस से) युद्ध प्रयोग कर सकते थे। ऑस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध के परिणामस्वरूप जर्मनी का सांविधानिक संघर्ष समाप्त हो गया, पुरानी डाइट को भंग कर दिया गया। नए निर्वाचन के युद्ध–विरोधी प्रगतिशील दल की पूर्ण पराज्य हुई। इस हार के पीछे तत्कालीन देशभक्ति से अनुप्राणित वातावरण ही था । नवनिर्वाचित डाइट में बिस्मार्क ने स्वयं पूर्ववर्ती डाइट द्वारा युद्धकालीन

सामरिक अनुदान अस्वीकृत करने की क्रिया के विरुद्ध क्षतिपूर्ति माँगना का प्रस्ताव रखा क्योंकि युद्धकाल में सरकार को अपनी ओर से ही युद्ध के व्यय का भार वहन करना पड़ा था। इसमें सरकार की जीत हुई। इस जीत ने तथा सार्वभौम मताधिकार द्वारा संसद गठन करने के प्रस्ताव ने बिस्मार्क को राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने का एक अवसर प्रदान किया । पुराना रूढ़िवादी दल अब दो दलों में विभक्त हो गया जिससे एक स्वतंत्र रूढ़िवादी दल (थ्तमम ब्वदेमतअं. जपअम च्तंजल) का उदय हुआ। यह दल बिस्मार्क का समर्थक बन गया परंतु सार्वभौम मताधिकार देने हेनोवर, हैस कैसल के शासकों को पदच्युति और राष्ट्रीय जन–आंदोलनकारी नेताओं के साथ समझौता करने के कारण पुराना रूढ़िवादी दल बिस्मार्क का आलोचक ही रहा ।

–

बिस्मार्क तथा राष्ट्रीय उदारवादी दल इस नई परिस्थिति ने प्रगतिशील दल को भी बहुत प्रभावित किया। पहले यही दल बिस्मार्क का विरोध करता था, किंतु अब इस दल के अधिकांश सदस्य बिस्मार्क की नीति तथा क्षतिपूर्ति के प्रस्ताव का समर्थन करने लगे। उन्होंने प्रशा के उदारवादियों से मिलकर राष्ट्रीय उदारवादी दल (छंजपवदंस स्पइमतंस च्तंजल) का निर्माण किया । इन्हीं की सहायता तथा समर्थन से भविष्य के जर्मन साम्राज्य की स्थापना हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में दो विचारधाराओं का उदय हुआ राजनीतिक नीतिवाद तथा राष्ट्रीय आदर्श (छंजपवदंस पकमंसे) जर्मनी ने, जो अब तक इस द्विविधा (क्पसमउउं) में उलझा हुआ था, अंत में राष्ट्रीय आदर्श को ही चुन लिया ।
इसी राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में बिस्मार्क उत्तर जर्मन संघ के साथ दक्षिण जर्मनी के विलय की युक्ति खोज रहे थे। फलतः इसी का परिणाम फ्रांस व प्रशा के मध्य युद्ध हुआ जो जर्मनी के एकीकरण के इतिहास का अंतिम चरण था।

फ्रांस– प्रशा का युद्ध – 1870 फ्रांस– प्रशा का युद्ध मूलभूत कारण यह था कि एक ओर प्रशा अपने नए उपलब्ध साम्राज्य और शक्ति को सुदृढ़ करना चाहता था, दूसरी ओर फ्रांस को भय था कि प्रशा की शक्ति या प्रभाव में और अधिक वृद्धि न हो, जिससे उसका अपना स्वार्थ सुरक्षा तथा शक्ति की हानि न हो । फ्रांस को यह युद्ध अपनी अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सम्मान की पुनः प्रतिष्ठा के लिए लड़ना पड़ा । नेपोलयन तृतीय को अपना आत्मसम्मान व प्रजा की आस्था प्राप्त करने के लिए यह युद्ध लड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। इस प्रकार इस युद्ध के आरंभ में प्रशा और फ्रांस दोनों का ही आंशिक दायित्व रहा। यद्यपि यह बात भी सत्य है कि अंत तक वास्तविक रूप में युद्ध शुरू करने का उत्तरदायित्व बिस्मार्क का ही था क्योंकि उपयुक्त परिस्थिति का शीघ्र अपनी बुद्धि, दूरदर्शिता और कौशल से लाभ उठाकर अपने लक्ष्य की पूर्ति करने का श्रेय उन्हीं को है।
होहेनजॉलर्न का प्रार्थी– स्पेन के रिक्त राजसिंहासन पर होहेनजॉलर्न (भ्वीमद्रवससमतद) के प्रार्थी को प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव ही फ्रांस और प्रशा

के युद्ध का कारण बना। सन् 1868 में स्पेन में रानी इसेबला द्वितीय के शासनकाल में उनके विरुद्ध एक विद्रोह हुआ, जिसके कारण इसेबला निष्कासित हुई थी। अब स्पेन के सेनापतियों ने जो इस विद्रोह के मूल में थे, प्रशा के राजा के एक संबंधी होहेनजॉलर्न सिगमेरिंजन (भ्वीमतद–ररवससमदतदै पदहउंतपदहमद) के लियोपोल्ड का नाम सिंहासन के लिए प्रस्तुत किया । लियोपोल्ड ने बहुत दुविधा के बाद स्पेन का राजा बनने की स्वीकृति इस शर्म पर दी कि यदि स्पेन की संसद के निर्वाचन में निर्वाचित होंगे तभी वे राजपद को स्वीकार करेंगे (1870)।

लियोपोल्ड की स्वीकृति मिलने के साथ ही फ्रांसीसी सरकार ने इस प्रस्ताव का तीव्र विरोध किया और यह माँग की कि लियोपोल्ड अपने नाम को वापस ले ले। लियोपोल्ड का नाम वापस होने के साथ ही यह अध्याय समाप्त हो जाना चाहिए था, किंतु हुआ नहीं। पेरिस में दल युद्ध का समर्थक दल था, जिसका नेतृत्व कर रहे थे, विदेश मंत्री ग्रेमांट। यह दल इससे संतुष्ट नहीं हुआ, वे प्रशा द्वारा फ्रांस के अपमान का समुचित उत्तर देना चाहते थे। यह प्रशा की सबके समक्ष अपमानित करके ही हो सकता था।

ऐम्स तार– ग्रेमांट ने प्रशा के फ्रांसीसी राजदूत बैनेडेटी (ठमदमकमजजप) को इस आशय को तार भेजा कि वह शीघ्र ही प्रशा के राजा से लियोपोल्ड की उम्मीदवारी के लिए एक क्षमापात्र माँगे जिसमें यह भी निर्दिष्ट किया हुआ हो कि भविष्य में भी कोई होहेनजॉलर्न प्रार्थी स्पेन के सिंहासन पर दावा नहीं करेगा। इस समय प्रशा के राजा विलियम चतुर्थ ऐम्स में थे। बैनेडेटी (ठमदमकमजजप) उनसे मिला और एक साक्षात्कार के लिए उनको राजी कराना चाहा । विलियम चतुर्थ उसी समय समझ गए थे कि यह कोई कूटनीतिक चाल थी और इससे उन्हें भय दिखाकर राजी करने की चेष्टा की जा रही थी। उन्होंने फ्रांसीसी माँग को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया तथा बर्लिन में बिस्मार्क को इस घटना को पूरे विवरण के साथ एक तार भेज दिया जो प्रसिद्ध ऐम्स तार था। अब बिस्मार्क को इस तार के कारण फ्रांस के साथ अविलंब लड़ाई करने का बहाना मिल गया, जिसके लिए वे बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे । बिस्मार्क ने उस तार को अविलंब प्रेस में छापने को दे दिया। उन्होंने इस तार को ऐसे संक्षिप्त रूप में प्रकाशित करवाया जिसमें फ्रांस को जर्मनी का विरोधी व अपमानकर्ता के रूप में दर्शाया गया । स्पष्ट है कि बिस्मार्क ने फ्रांस को उत्तेजित करने के लिए ही ऐसा किया था क्योंकि उन्हें लड़ने के लिए परिस्थिति तैयार करनी थी। फलस्वरूप पेरिस में इसकी प्रतिक्रिया बिजली की तरह ही हुई । ऐम्स तार के प्रकाशन के साथ – साथ ही प्रेस एवं जनता ने घोषणा की कि फ्रांस की अत्यधिक मानहानि हुई है। फ्रांसीसी सरकार ने भी इस बात को अनुभव किया और युद्ध घोषित करने का निर्णय लिया।

उघर बिस्मार्क ने सब तैयारी कर रखी थी। सन् 1866 के युद्ध के बाद ही उन्होंने दक्षिणी राज्यों की प्रशा विरोधी और ऑस्ट्रिया समर्थक मनोवृत्ति को परिवर्तित करने की एक सफल चेष्टा की थी। उन्होंने नेपोलियन तृतीय (फ्रांस के राजा)

की लोभी मनोवृत्ति के बारे में उनको यह बताकर अवगत करा दिया था कि नेपोलियन तृतीय राइन प्रांत पर अपना अधिकार करने को उत्सुक है। इस तथ्य से दक्षिण राज्यों को एक सदमा – सा लगा। बिस्मार्क के इस काम से यह लाभ हुआ कि भविष्य में अब फ्रांस के विरुद्ध इन राज्यों की सहायता स्वाभाविक रूप से और स्वतः ही प्राप्त करने की आशा उज्ज्वल हुई। इसके अतिरिक्त एक ओर उत्तर जर्मनी के देश प्रेम तथा प्रशा के सफल नेतृत्व एवं सामरिक सफलताओं तथा दूसरी ओर ऑस्ट्रिया व फ्रांस की स्वार्थी और लोभी मनोवृत्ति को देखते हुए दक्षिण धीरे–धीरे उत्तर के

पश्चिमी विश्व

लक्ष्य को ही अपना समझने लगा। फलतः नेपोलियन तृतीय की यह आशा पूरी तरह व्यर्थ हो गई कि इस युद्ध में दक्षिण जर्मनी फ्रांस की सहायता करेगा।
फ्रांस– प्रशा युद्ध के आरंभ से ही प्रशा सामरिक क्षेत्र में अग्रगामी था, क्योंकि रूस और मोल्टके के निर्देशन और निरीक्षण से प्रशा की सेना बहुत प्रशिक्षित और दक्ष हो गई थी। इसके अतिरिक्त सन् 1866 के बाद जिन राज्यों ने प्रशा के साथ सामरिक संधि की थी उसे भी प्रशा को बहुत सामरिक लाभ हुआ । विशेषतया दक्षिणी राज्यों की सामरिक संधियों से बिस्मार्क का दक्षिण में पूर्ण नियंत्रण रहा। अंत में सन् 1870 में सीडन ‌ैमकंद) में फ्रांस की अंतिम हार हुई सीडन के युद्ध का महत्व – सीडन में फ्रांस की हार ने यूरोप में जर्मनी के उत्कर्ष की नींव रखी। इससे जर्मनी की सामरिक तथा राजनीतिक श्रेष्ठता यूरोप के सामने प्रत्यक्षतः स्थापित हो गई और यही जर्मन श्रेष्ठता उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में एक प्रधान राजनीतिक तत्व बनकर उपस्थित हुई ।
सन् 1870 में युद्ध समाप्त हुआ। वर्सायई में एक प्राथमिक संधि के बाद सन् 1875 में फ्रैंकफर्ट में अंतिम संधि हुई। फ्रांस को जर्मनी की क्षतिपूर्ति और एलसास (।सेंबम) तथा लोरेन (स्वततंपदम) के पूर्वी भाग देकर संधि करनी पड़ी।यह महान विजय जर्मनी के उत्तर–दक्षिणी प्रांतों की सम्मिलित चेष्टा औरराष ट्रीयता की महान – प्रेरणा का फल थी। अब सारे क्षेत्र में यही भावना आई कि इस सामरिक सम्मेलन को एक स्थायी नागरिक रूप अवश्य देना चाहिए।

इकाई.14

इस भावना से प्रेरित होकर दक्षिणी राज्यों की सरकारों ने प्रशा के साथ एक समझौता किया, जिससे दक्षिणी राज्यों ने उत्तर जर्मन संघ में प्रवेश किया। यह भी तय हुआ कि इस संपूर्ण संघ को जर्मन साम्राज्य का नाम दिया जाए। प्रशा के राजा इसके प्रधान होंगे तथा उनकी जर्मनी के सम्राट की उपाधि प्रदान की जाएगी।
18 जनवरी, 1871 को इस व्यवस्था को विश्व के सामने एक विशेष समारोह के माध्यम से घोषित किया गया। इसी समारोह में विलियम प्रथम को, जो अपने भाई फ्रेंडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु के बाद राजा बने थे, जर्मन सम्राट की उपाधि प्रदान गया तथा उन्हें चांसलर के पद पर नियुक्त किया गया ।
निष्कर्ष– उपर्युक्त विवेचन से उभरकर आने वाली मुख्य बातें इस प्रकार हैं–

जर्मनी में उदारवादी आंदोलन की असफलता का एक कारण स्पष्ट है कि सन् 1850 के बाद धीरे–धीरे जर्मनी में उदारवाद के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना अधिक शक्तिशाली होती चली गई। इसका कारण भावी युद्धों की संभावना थी। जब उदारवादी दल की कोई भी योजना व आंदोलन सफल न हो सका तब एकीकरण के अंतिम चरण में राष्ट्रीय उदारवादी दल का जन्म हुआ। इस दल के नाम से ही जर्मन जनमानस का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अर्थात् पहले राष्ट्रीयता का स्थान, बाद में उदारवाद का था। इसी राष्ट्रीयता के बल पर बिस्मार्क ने एकीकरण की दिशा में सफलता की नींव रखी।

सन् 1848 में फ्रैंकफर्ट संसद में दो नारे प्रमुख थे–

एकता

उदारवादियों का स्वतंत्रता के प्रति अधिक रूझान था, किंतु बार–बार उदारवादियों की सफलता के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वार्थ की पूर्ति के लिए स्वतंत्रता के स्थान पर एकता के आदर्श को ही धीरे–धीरे अधिक महत्व दिया जाने लगा। इस संदर्भ में यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि इसका अर्थ यह नहीं है कि उदारवाद पूर्णतया समाप्त हो गया । उदारवाद का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ। इसका प्रमाण भविष्य में प्रगतिवादी दल (च्तवहतमेपअम चंतजल) और उदारवादी दल के साथ बिस्मार्क के विरोध में ही मिलता है । उदारवादी भी जर्मन एकीकरण को सफल बनाने के लिए एकता की आवश्यकता समझ रहे थे – फलतः बैनिगसन तथा मिकेल ने भी जो नात्सनियाल फेरैन के उदारवादी नेता तथा समर्थक थे– बिस्मार्क का एकीकरण से पूर्व व बाद में भी समर्थन किया। जर्मनी का एकीकरण तो हो गया लेकिन इसका निर्माण अभी शेष था।

नात्सनियाल फरेन की स्थापना 1859 के सितम्बर के महीने में हुई थी । जर्मनी के उदारवाद को प्रोत्साहित करने में इस संस्था का एक महत्वूपर्ण योगदान रहा, हालांकि अंत में इस संस्था के प्रयत्न निष्फल रहे फिर भी सन् 1859–1868 के काल में इस संस्था ने जर्मनी के एकीकरण में एक उल्लेखनीय भाग लिया । इसकी विचारधारा तथा आदर्शों से इटली की सोसाइटी नात्सनियाल इटालियाना को जिस संस्था ने इटली के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त करने में पर्याप्त सहायता दी थी– बहुत प्रेरणा मिली थी। जर्मनी की नात्सनियाल फेरैन की स्थापना मुख्यतः उत्तर जर्मनी के उदारवादियों ने ही की थी।

यह संस्था जर्मनी की प्रथम राजनीतिक संस्था थी । जर्मनी के बिखरे हुए राज्य की सीमा को तोड़कर समस्त उदारवादियों व गणतंत्रवादियों को एकत्रित और संघटित करके इस संस्था ने एक राष्ट्रीय दल बनाना चाहा । इसका सामान्य लक्ष्य समग्र सामरिक तथा गणतांत्रिक शक्तियों का केंद्रीकरण करना था । यह एक प्रतिनिधिमूलक संसद की प्रतिष्ठा करना चाहती थी जो विदेशियों के विरुद्ध जर्मनी के हितों की रक्षा कर सके। कुछ स्थानीय शासन के अधिकार प्राप्त करना तथा गैर–कानूनी नौकरशाही व्यवस्था व पुलिस राज

सुधार करना भी इस संस्था के उद्देश्य थे।

संदर्भ सूची

1. " घिश्व इतिहास" – अरुण कुमार

2. "History of the World" – अरजुन देव (NCERT पुस्तक)

3. " घिश्व इतिहास का सं क्षप्त अध्ययन" – राम स्वरूप शुक्ल

4. "World History for UPSC" – नॉर्मन लो (Norman Lowe)

5. " घिश्व इतिहास के प्रमुख प्रश्न" – बालाजी पब्लिकेशन

MATS UNIVERSITY

MATS CENTER FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS : Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 M : 9109951184, 9755199381 Toll Free : 1800 123 819999

eMail : admissions@matsuniversity.ac.in Website : www.matsodl.com